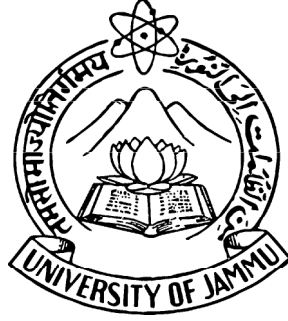


Directorate of Distance Education

**UNIVERSITY OF JAMMU
JAMMU**



SELF LEARNING MATERIAL B. A. VI th SEMESTER

SUBJECT :- SANSKRIT

UNIT : I to V

COURSE NO. : SA-601

LESSON NO. 1 to 27

PROF. DARSHANA SHARMA

COURSE CO-ORDINATOR

<http://www.distanceeducationju.in>

Printed and Published on behalf of the Directorate of Distance Education,
University of Jammu, Jammu by the Director, DDE, University of Jammu,
Jammu

SANSKRIT COURSE: SA-601

Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu 2018

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DDE, University of Jammu.
- The script writer shall be responsible for the lesson / script submitted to the DDE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

Printed by : Guru Printing Press /2018 /

**MODEL TEST PAPER
(SANSKRIT)**

B.A. Semester-VI Examination

Total No. of Questions – 06

Time Allowed : 03 hrs

Maximum Marks - 80

प्रश्न 1 निम्नलिखित में से किन्हीं दो श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए। 15 अंक

- (क) तमुवाच हृशीकेशः प्रहसान्नेव भारत ।
सेनयोरुभयेर्मध्ये विशीदन्तमिदं वचः ॥
- (ख) कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गतोऽश्वत्त्वकर्मणि ॥
- (ग) दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनं जय
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपनाः फल हेतवः ॥
- (घ) तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत् मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

प्रश्न 2 किसी एक प्रश्न का उत्तर दीजिए। 15 अंक

- (क) वेदाङ्ग का अर्थ स्पष्ट करते हुए शिक्षा वेदाङ्ग व छन्दों का सामान्य परिचय दीजिये।
- (ख) वेदाङ्ग निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय सारगर्भित निबन्ध लिखें तथा व्याकरण की उपयोगिता पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 3 किसी एक प्रश्न का उत्तर दीजिए। 15 अंक

- (क) भाषा विज्ञान की परिभाषा एवं महत्त्व बताएं।
- (ख) भाषा के विविध रूपों बोली, परिनिष्ठित तथा राष्ट्रभाषा पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 4 किसी एक प्रश्न का उत्तर दीजिए। 15 अंक

- (क) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताएँ बताते हुए वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत में अन्तर स्पष्ट करें।
- (ख) आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 5 (भाग क)

10 अंक

निम्नलिखित में से किसी एक निबन्ध को संस्कृत में लिखें। (150 शब्दों में)

1. संस्कृत भाषायाः महत्त्वम्
2. गीताया महत्त्वम्
3. संगणक क्रान्ति
4. विद्याया महत्त्वम्

(भाग-ख)

10 अंक

निम्नलिखित सभी बहुविकल्पीय प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

1. वेदों की संख्या कितनी है ?
4 / 3 / 2
2. कर्मकाण्ड से सम्बन्धित वेद हैं ?
ऋग्वेद / यजुर्वेद / सामवेद
3. वेदाङ्ग कितने हैं ?
6 / 4 / 3
4. शुल्ब का अर्थ क्या होता है ?
कर्म / ऊह / रस्सी
5. भाषा शब्द संस्कृत की कौन सी धातु से बना है ?
वद् / वच् / भाष् धातु
6. किसका क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत होता है ?
भाषा / बोली / केवल बोली
7. टकसाली भाषा किसे कहते हैं –
परिनिष्ठित भाषा / उपबोली / राजभाषा
8. बोली का क्षेत्र होता है।
सीमित / असीमित / अधिक विस्तृत
9. पालि में वचनों की संख्या है।
दो / तीन / एक
10. 'प्रथम प्राकृत' का दूसरा नाम है।
पालि / अपभ्रंश / वैदिक

SYLLABUS

SANSKRIT

B. A. Semester- 6th

Course No. : SA-601

Unit - I	–	श्रीमद्भगवद्गीता का दूसरा अध्याय (सप्रसङ्ग व्याख्या एवं भाव स्पष्ट विवेचन)	15
Unit - II	–	षड्वेदांगों का सामान्य परिचय 1. शिक्षा, 2. कल्प 3. व्याकरण 4. निरुक्त 5. ज्योतिष् 6. छन्द	
Unit - III	–	भाषा विज्ञान की परिभाषा एवं महत्व – भाषा की परिभाषा एवं विशेषताएं – भाषा के विविध रूप, बोली, परिनिष्ठित भाषा, साहित्यिक भाषा, राष्ट्रभाषा	15
Unit - IV	–	प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की विशेषताएं– वैदिक संस्कृत, लौकित संस्कृत – मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं – पालि, प्राकृत की विशेषताएं। – आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास।	
Unit - V	–	(भाग क) निबन्ध (संस्कृत 150 शब्दों में) – संस्कृत भाषायाः महत्त्वम्। – गीतायाः महत्त्वम्। – विद्यायाः महत्त्वम्।	15

- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
- परोपकाराय संता विभूतयः।
- संगणक क्रांति।

Unit - VI (भाग ख) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Question)

10

BOOKS RECOMMENDED

- 1 श्री मद्भगवद्गीता – गीताप्रेस गोरखपुर ।
- 2 श्री मद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय) –सम्पादक–डा० कर्ण सिंह, प्रकाशक–साहित्य पुस्तकालय भण्डार मेरठ ।
- 3 वैदिक साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय ।
- 4 भाषा–विज्ञान–डा० भोला नाथ तिवारी या कर्ण सिंह, ।
- 5 संस्कृत निबन्ध शतकम्–डा० कपिल द्विवेदी।
- 6 प्रस्तावरत्नाकर–चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसि।
- 7 बृहद् अनुवादचन्द्रिका–डा० कपिल द्विवेदी।

NOTE FOR PAPER SETTER

- A. There will be cent percent choice for the candidates in Unit 3rd, 4th and 5th (भाग क)
- B. 20 Marks out of 100 marks be reserved for internal assessment
Written Assignment 10 Marks each

SANSKRIT COURSE: SA-601

CONTENTS

LESSON NO.	TITLE	PAGE NO.
1-7	श्री मद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय (सप्रसङ्ग व्याख्या एवं भाव-स्पष्ट विवेचन)	1-55
8-10	षड्वेदांगों का सामान्य परिचय	56-88
11.	भाषा-विज्ञान की परिभाषा एवं महत्त्व	89-97
12.	भाषा की परिभाषा एवं विशेषताएँ	98-104
13.	भाषा के विविध रूप	105-111
14.	भाषा और बोली	112-118
15.	प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताएँ	119-124
16.	भारतीय आर्यभाषा की विशेषताएँ	125-132
17.	मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (पालि)	133-141
18.	मध्यकालीन आर्यभाषा (प्राकृत)	142-154
19.	आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ	155-165
20.	संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्	166-168
21.	विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् / विद्यायाः महत्त्वम्	169-171
22.	श्रीमद्भगवद्गीतायः महत्त्वम् / मम प्रिय पुस्तकम्	172-174
23	यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः	175-178
24	परोपकाराय सतां विभूतयः	179-181
25	संगणक क्रांति	182-183
26	बहुविकल्पीय प्रश्न (भाग क)	184-194
27	बहुविकल्पीय प्रश्न (भाग ख)	195-200

श्री मद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय
(सप्रसङ्ग व्याख्या एवं भाव-स्पष्ट विवेचन)

- 1.1 शीर्षक
- 1.2 प्रस्तावना
- 1.3 उद्देश्य
- 1.4 विषय सामग्री
- 1.5 सारांश
- 1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 1.7 सहायक ग्रन्थ

1.1 शीर्षक

श्री मद्भगवद्गीता-द्वितीय अध्याय, श्लोक संख्या 1-7

1.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के श्लोक 1 से 7 पर्यन्त प्रत्येक श्लोक का अन्वय, शब्दार्थ, अनुवाद एवं भावार्थ को स्पष्ट किया गया है।

1.3 उद्देश्य

- ❖ पाठकों को भगवद्गीता के मूलभूत सिद्धान्तों से अवगत कराना।
- ❖ युद्धभूमि में स्थित अर्जुन के माध्यम से विषम परिस्थितियों में भी कर्तव्यपरायणता का बोध कराना।
- ❖ भगवद्गीता के कर्म-सिद्धान्त से पाठकों को परिचित करवाना।

1.4 विषय सामग्री

श्री मद्भगवद्गीता साक्षात् भगवान की दिव्य वाणी है। इस की महिमा अपार है, अपरिमित है। इतिहास-पुराणों में तथा लौकिक काव्यों में, स्वदेशी-विदेशी अनेकानेक भाषाओं में, अनेक भाष्यों प्रवचन मालाओं में इसकी आज तक जितनी महिमा गायी गई है उसे एकत्र कर लिया जाये तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि इसकी महिमा इतनी ही है। गीता एक अथाह सागर के समान है जो जितना तन्मय, एकाग्र होकर जितनी गहरी डुबकी इस सागर में लगाता है वह उतने ही ज्ञान रूपी अमृत का पान करके इस जीवन में चिन्ता मुक्त होकर आनन्द तथा परलोक में गति प्राप्त करता है। गीता में समस्त वेद शास्त्रों का सार समाहित है। छोटे से मनुष्य जीवन में सभी शास्त्रों का अध्ययन मनन चिन्तन असम्भव है, किन्तु एक मात्र गीता के ज्ञान के दिव्य प्रकाश से मनुष्य के लिये कुछ भी अज्ञात नहीं रहता। इसी लिए कहा गया है :-

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।

या स्वयं पद्यनाभस्यमुखपद्यमाद्विनीःसृता।।

अर्थात् एक केवल गीता ही अच्छी प्रकार समझ लेनी चाहिये अन्य शास्त्रों की फिर कोई आवश्यकता नहीं रहती। यह गीता भगवान् ने स्वयं अपने मुख से कही है। महाभारत में महर्षि वेद व्यास तथा आज गीता के अनेक भाष्यों व्याख्याओं से हमारे जीवन में गीता की उपयोगिता स्वयं सिद्ध हो जाती है। गीता का कोई भी शब्द निरर्थक या अनुपयोगी नहीं है।

संसार में सभी प्राणी सुख की कामना करते हैं। सुख प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के उपाय-प्रयत्न करते हैं। किन्तु सभी को सदा सुख की प्राप्ति नहीं होती। सुख दुःख के अनेक अवसर जीवन में आते हैं। इस संसार के भौतिक मोह जाल में फंस कर जीव अज्ञानवश कर्म करता है और दुःख अनुभव करता है। मोह पक्षपात लोभ आदि के कारण कर्तव्य-अकर्तव्य में भेद न कर पाने के कारण ही असफलता दुःख को जन्म देती है। कर्तव्य तथा अकर्तव्य का उपदेश देना सभी शास्त्रों का उद्देश्य है। शास्त्रविधि का त्याग करके मनमाने ढंग से कर्म करने पर सफलता असम्भव है तथा सफलता न मिलने पर दुःख अवश्यम्यभावी है। गन्तव्य (लक्ष्य) तथा गन्तव्य तक पहुंचने के मार्ग का ज्ञान होने पर ही मनुष्य लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। अन्यथा इस संसार की भूल भुलैया में वह जन्म-जन्मान्तर तक भटकता हुआ निरन्तर दुःख अनुभव करता रहता है। श्री मद्भगवद्गीता में इसी बात को स्पष्ट रूप से कहा गया है।

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।

न सः सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

अतः हमें इस जीवन में सुख-आनन्द की प्राप्ति तथा जीवन के अन्त में सद्गति (मुक्ति) की प्राप्ति के लिये शास्त्र-विधि का पालन करना चाहिये। गीता सभी शास्त्रों का सार है अतः दैनिक जीवन में गीता के आदेशों उपदेशों की उपयोगिता के विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

श्री मद्भगवद्गीता निष्क्रिय होकर संन्यास बनवास का उपदेश नहीं देती, अपितु मोह, स्वार्थ पक्षपात ममता के त्याग का उपदेश देती है, कर्म करते हुए, कर्तव्यपालन करते हुए भगवान को स्मरण करने का उपदेश देती है। इस प्रकार कर्तव्यपालन भगवान का स्मरण निरन्तर करते रहने पर मनुष्य का आचरण-व्यवहार भी शुद्ध बना रहेगा तथा वह बुराई से दूर रहकर दुःख पश्चाताप से भी मुक्त रह सकेगा। श्रीमद्भगवद्गीता हिंसा का उपदेश नहीं देती। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार अवश्य किया था। किन्तु हमें युद्ध और हिंसा में अन्तर को समझना चाहिये। अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार करने पर भी श्रीकृष्ण अर्जुन को उसका कर्तव्य याद दिलाते हैं। उस युद्ध में अर्जुन का अपना कोई स्वार्थ नहीं था। उसे तो अपने धर्म का पालन करना था, भगवान की आज्ञा का पालन करना था, सत्य धर्म की स्थापना करनी थी, अनाचार-असत्य का उन्मूलन करना था। स्वार्थ के लिये, वैरभावना के वशीभूत होकर हिंसा करना पाप है। दण्डनीय-निन्दनीय है किन्तु सत्य के विशालहित के लिये युद्ध करना धर्म है, कर्तव्य है अतः वह हिंसा नहीं, पाप नहीं। एक सैनिक युद्ध में अनेक शत्रुओं को मारता है किन्तु उसमें उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। युद्ध करना उसका कर्तव्य है अतः वह हिंसा नहीं, पाप नहीं। स्वार्थ के लिये किसी भी जीव की हिंसा करना, पीड़ा-कष्ट पहुंचाना पाप है अनाचार है, दुष्कर्म है। हमें अपने दैनिक जीवन में इस तथ्य इस सत्य को सदा स्मरण करके आचरण करना चाहिए।

श्री मद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने आचरण करने योग्य दिव्यगुणों तथा आचरण न करने योग्य आसुरी वृत्तियों का उपदेश अर्जुन को दिया था। हमें भी अपने दैनिक जीवन में निर्भयता, आत्म शुद्धि, आध्यात्मिक ज्ञान का अनुशीलन, दान, आत्म संयम, यज्ञ (परोपकार) परायणता वेदाध्ययन, तपस्या (परिश्रम-कर्म), सरलता, अहिंसा, सत्यता क्रोधविहीनता, त्याग, शान्ति, दूसरों के दोष ढूंढने में अरुचि, समस्त जीवों पर दया, लोभ विहीनता, भद्रता, लज्जा, क्षमा, संकल्प, धैर्य पवित्रता, ईर्ष्या तथा मान की अभिलाषा से मुक्ति – इन दिव्यगुणों का आश्रय लेना चाहिये तथा अहंकार, आडम्बर, अभिमान क्रोध, कठोरता अज्ञान का त्याग करना चाहिये। इस संसार के सभी चेतनाशील जीव यदि गीता के इन उपदेशों का पूरी निष्ठा से पालन करें तो संसार में सर्वत्र सुख-आनन्द का साम्राज्य होगा तथा दुःख, शोक, पश्चाताप का कहीं अस्तित्व (नामो-निशान) न होगा।

श्री मद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय का नाम 'सांख्य योग' है। सांख्य शब्द का अर्थ है 'ज्ञान' और योग शब्द का अर्थ है 'कर्म'। ज्ञान और कर्म पर संयुक्त रूप से अथवा पृथक् रूप से चर्चा होने के कारण इस अध्याय का नाम सांख्य-योग रखा गया है।

पहले अध्याय में गीतोपदेश की प्रस्तावना के रूप में दोनों सेनाओं के महारथियों का और शंखध्वनि का वर्णन कर के अर्जुन का रथ दोनों सेनाओं के बीच खड़ा करने की बात कही गयी, उसके बाद दोनों सेनाओं में स्थित स्वजन

समुदाय (सगे-सम्बन्धियों) को देखकर शोक और मोह के कारण युद्ध से अर्जुन के निवृत्त हो जाने (पीछे हट जाने) और शस्त्र-अस्त्रों को छोड़कर विषाद करते हुए बैठ जाने की बात कहकर प्रथम अध्याय की समाप्ति की गयी। ऐसी स्थिति में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से क्या बातें कहीं और किस प्रकार अर्जुन को युद्ध के लिये फिर से तैयार किया यह सब धृतराष्ट्र को बतलाने के लिये संजय अर्जुन की मनः स्थिति का वर्णन करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय का आरम्भ करते हैं :-

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥

अन्वयः— तथा कृपया—आविष्टम्, अश्रुपूर्ण—आकुल— ईक्षणम्, विषीदन्तम् तम् मधुसूदनः इदम् वाक्यम् उवाच ।
शब्दार्थ :- तथा उसका प्रकार से, कृपया—करुणा से, आविष्टम्—व्याप्त चित्तवाले, अश्रुपूर्ण—आंसुओं से पूर्ण, आकुल—व्याकुल ।

ईक्षणम्—आंखों वाले, विषीदन्तम्—विषादयुक्त—शोकपूर्ण चित्तवाले, तम्—उस (अर्जुन) को, मधुसूदनः— मधुनामक राक्षस का नाश करने वाले (श्री कृष्ण) ने, इदं—यह, वाक्यम्—वचन, उवाच—कहे ।

अनुवाद :- उस प्रकार करुणा से व्याप्त और आंसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल आंखों वाले विषाद युक्त चित्तवाले उस अर्जुन के प्रति भगवान् मधुसूदन ने यह वचन कहा ।

भावार्थ :- इस श्लोक में युद्ध में अपने सगे-सम्बन्धियों को देखकर तथा युद्ध से होने वाले विनाश का अनुमान लगाकर क्षुब्ध अर्जुन की मनोदशा का उपयुक्त विशेषणों के द्वारा बड़ा ही मार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित किया गया है किन्तु समाज के विशाल हित के लिये अत्याचार व अत्याचारियों का अन्त करने के लिये युद्ध करना आवश्यक भी था । इस श्लोक में 'मधुसूदन' पद विशेष महत्वपूर्ण है । भगवान श्री कृष्ण ने अत्याचारी—दुराचारी 'मधु' नामक असुर का नाश किया था इस कारण उनका नाम मधुसूदन पड़ा । वे मधुसूदन श्री कृष्ण ही युद्ध से मुंह मोड़े हुए अर्जुन को अपने वचनों से युद्ध करने के लिये उत्साहित कर रहे हैं । इसमें धृतराष्ट्र के लिये चेतावनी भी है क्योंकि दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र भी 'मधु' के समान अत्याचारी हैं तथा अत्याचारियों का नाश करना श्री कृष्ण का धर्म है अतः दुर्योधन आदि का अन्त भी निश्चित है ।

श्री भगवान् उवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ 2 ॥

अन्वय :- अर्जुन, अनार्यजुष्टम्, अस्वर्ग्यम्, अकीर्तिकरम्, इदं कश्मलम्, विषमे, कुतः, त्वा, समुपस्थितम् ।
शब्दार्थ :- अनार्यजुष्टम्, अनार्य = जो श्रेष्ठन हो = नीच लोग, जुष्टम् = उपयुक्त योग्य । अस्वर्ग्यम् = स्वर्गप्राप्ति

न करवाने वाला, अकीर्तिकरम् = अपयश देने वाला, इदम् = यह कश्मलम् = मोह (मोहजनित शोक, कातरता) विषमे = विषम = अनुपयुक्त स्थल में, कुतः = कहां से, त्वा = तुममें, समुपस्थितम् = उत्पन्न = उपस्थित हो गया है।

अनुवाद : श्री भगवान बोले – हे अर्जुन ! अनुपयुक्त स्थान पर, श्रेष्ठ पुरुषों के लिये अनुपयुक्त, स्वर्गप्राप्ति में बाधक तथा अपयश देने वाला यह मोह तुम्हें कहां से प्राप्त हुआ ?

भावार्थ :- सामान्य परिस्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति अवस्था तथा परिस्थिति के अनुरूप अलग-अलग भावों से प्रभावित होता है किन्तु निर्णायक अवसरों पर समस्त मानसिक दुर्बलताओं को त्याग कर दृढ़तापूर्वक चुनौतियों का सामना करने पर ही सफलता – विजय प्राप्त होती है। अर्जुन तो सामान्य प्राणी नहीं था तथा युद्धारम्भ से ठीक पहले रणस्थली में अर्जुन का उस प्रकार का व्यवहार सर्वथा उसके व्यक्तित्व तथा परिस्थितियों के विपरीत था। अर्जुन को उसकी सामर्थ्य की याद दिलाने के लिये तथा उसकी दुर्बलता के घातक परिणामों के प्रति उसे सचेत करने के लिए श्रीकृष्ण के ये वचन महत्वपूर्ण हैं।

**क्लैव्यं मास्मगमः पार्थनैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥ ३ ।**

अन्वय :- पार्थ क्लैव्यम् मा स्म गमः, एतत् त्वयि न उपपद्यते। परन्तप ! क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ।

शब्दार्थ :- पार्थ त्र पृथा = कुन्ती, कुन्तीपुत्र पार्थ, क्लैव्यम् = नपुंसकता = नामर्दी को, मा = मत, गमः = प्राप्त हो, एतत् = यह नपुंसकता उपपद्यते = शौभा देती। परन्तप-परायों को = शत्रुओं को तपाने वाला, हृदयदौर्बल्यम् = मानसिक दुर्बलता, त्यक्त्वा = त्याग कर उत्तिष्ठ = उठो।

अनुवाद :- हे पार्थ ! इस प्रकार की नपुंसकता का प्रदर्शन मत करो। यह तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं है। अपने हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता का त्याग कर के उठो, तुम शत्रुओं को तपाने वाले बनो।

भावार्थ : अर्जुन कोई साधारण प्राणी नहीं था। वह महान् योद्धा था। उसका नाम सुनकर ही शत्रु भयभीत हो जाते थे। सामयिक तौर पर उत्पन्न दुर्बलता के निराकरण के लिये भगवान् श्रीकृष्ण उसे उसकी सामर्थ्य का स्मरण कराते हुए कहते हैं किन्तु पृथा के पुत्र पृथा (कुन्ती) एक वीर क्षत्राणी है अतः एक क्षत्राणी का पुत्र इस प्रकार युद्ध से विमुख नहीं हो सकता जब श्री कृष्ण कौरवों के पाण्डवों की सन्धि का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर गये थे तथा असफल होकर लौटते समय कुन्ती ने श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को सन्देश देकर युद्ध के लिये उत्साहित किया था। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को 'पार्थ' नाम से सम्बोधित करके कुन्ती के उसी सन्देश की याद दिलाई है।

**अर्जुन उवाच
कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥४॥**

अन्वय :- (हे) मधुसूदन ! संख्ये कथम्, अहं भीष्मम् द्रोणं च इषुभिः प्रतियोत्स्यामि! (हे) अरिसूदन (तौ) पूजा हौं।

शब्दार्थ :- संख्ये – युद्धभूमि में, कथम्–किस प्रकार, भीष्मम् = भीष्म को, द्रोणम् –द्रोणाचार्य को, इषुभिः = बाणों से प्रतियोत्स्यामि – पलट वार करूंगा। अरिसूदन = शत्रुओं का नाश करने वाले (हे श्री कृष्ण) पूजा हौं = पूजनीय हैं।

अनुवाद :- अर्जुन बोले–हे मधुसूदन! (हे कृष्ण) मैं किस प्रकार युद्ध–भूमि में, बाणों से पितामह भीष्म तथा गुरु द्रोणाचार्य के विरुद्ध पलट कर वार (युद्ध) करूंगा ? क्योंकि वे दोनों तो पूजनीय हैं।

भावार्थ :- इस श्लोक में अर्जुन ने श्री कृष्ण को मधु सूदन व अरिसूदन कह कर सम्बोधित किया है। मधु नाम के असुर का नाश करने के कारण श्री कृष्ण को मधु सूदन कहते हैं तथा वैरियों का नाश करने के कारण वे अरिसूदन कहलाते हैं। इन दोनों नामों से सम्बोधित करते हुए इस श्लोक में 'कथम्' पद का प्रयोग करके अर्जुन ने आश्चर्य का भाव प्रकट किया है। अभिप्राय यह है कि आप मुझे जिन भीष्म और द्रोण आदि के साथ युद्ध करने के लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं अपितु वे दोनों तो मेरे लिये पूजनीय हैं। आप अपने सिद्धान्तों, स्वाभाविक गुणों के विरुद्ध मुझे गुरुजनों के साथ युद्ध करने के लिये कैसे कह रहे हैं, यह घोर पाप कर्म मैं कैसे कर सकूंगा। जिन गुरुजनों का शब्दों से भी अपमान करना महान् पाप बतलाया गया है उन पर तीक्ष्ण वाणों का प्रहार मैं कैसे कर सकता हूँ।

गुरुनहत्वा हि महानुभावाच्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके

हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैवभूजीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ।।

अन्वय :- हि महानुभावान् गुरुन् अहत्वा इह लोके भैक्ष्यम् अपि भोक्तुम् श्रेयः। गुरु न् हत्वा इह एव रुधिर प्रदिग्धान् अर्थकामान् भोगान् भुजीय।

शब्दार्थ :- हि– इसलिये निश्चय ही, महानुभावान् महानुभाव, गुरु न् = गुरुजनों को अहत्वा = न मारकर इह लोके = इस संसार में, भैक्ष्यम्–भिक्षा का अन्न खाना अपि = भी, श्रेयः = श्रेयस्कर, बेहतर समझता हूँ। गुरुन् = गुरु = पूज्यजनों को, हत्वा = मारकर, इह – यहां इसलोक में एव = ही, रुधिर प्रदिग्धान् = रक्त से सने हुए अर्थकामान् = अर्थ और काम रूप भोगान् = भोगों को भुजीय = भोगना पड़ेगा।

अनुवाद :- इसलिए इन महानुभाव गुरुजनों को न मारकर मैं इस लोक में भिक्षा का अन्न खाना ही कल्याणकारी समझता हूँ क्योंकि गुरुजनों को मार कर भी इस लोक में उनके रक्त से सने हुए अर्थ (धन) और काम रूप भोगों को ही तो भोगना पड़ेगा।

भावार्थ :- दुर्योधन की सेना में द्रोणाचार्य कृपाचार्य आदि अर्जुन के आचार्य तथा भूरिश्रवा शल्य भीष्म सोमदत्त आदि गुरुजन् थे जिनके मन में पाण्डवों के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी अपि उनके भाव बहुत उदात्त–श्रेष्ठ थे। अर्जुन के कहने का तात्पर्य यह है कि गुरुजनों को मारना सर्वथा अनुचित है उनको मारने से मिलेगा भी क्या? न तो मुक्ति

मिलेगी और न ही धर्म की सिद्धि होगी, केवल गुरुजनों के रक्त से रंजित धन और राज्य प्राप्त होंगे। जिनका मूल्य गुरुजनों की महानता के सामने कुछ नहीं। यद्यपि क्षत्रियों के लिये भिक्षा के अन्न से निर्वाह करना निन्द्य कहा गया है तथापि अर्जुन का कहना है कि गुरुजनों का वध करके राज्य भोगने की अपेक्षा वह निन्दनीय कर्म भी कहीं बेहतर है।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्धा जयेम यदिवा नो जयेयुः।

यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

अन्वय :- कतरन् नः गरीयो एतत् च न विद्मः, यद् वा (वयम्) जयेम, यदि वा (ते) नः, जयेयुः। यान् एव हत्वा न जिजीविषामः, ते धार्तराष्ट्राः प्रमुखे अवस्थिताः।

शब्दार्थ :- कतरन् = कौन सा, नः = हम में से, गरीयो = भारी-श्रेष्ठ है एतत् = यह, च = और, न = नहीं, विद्मः = जानते यद् = जो, वा = संभव है, यदिवा = यह भी संभव है, नः = हमे जयेयुः = जीत लें, यान् = जिन्हे, एव=ही, हत्वा = मार कर न = नहीं, जिजीविषामः = जीवित रहना चाहते, ते = वे धार्तराष्ट्राः = धृतराष्ट्र के पुत्र, प्रमुखे = प्रमुख है जिनमें अवस्थिताः = उपस्थित हैं।

अनुवाद :- फिर हम यह भी तो नहीं जानते कि हम लोगों में किसका पलड़ा भारी है, हम उनपर विजय पा लेंगे अथवा वे ही हमें जीत लेंगे। जिन लोगों को मारकर हम जीना नहीं चाहते वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने खड़े हैं।

भावार्थ :- इस श्लोक में अर्जुन ने यह भाव दिखलाया है कि हमारे लिये क्या करना श्रेष्ठ है – युद्ध करना या युद्ध न करना! युद्ध करना तो क्षत्रिय का धर्ममाना गया है युद्ध में शत्रु नाश तो उचित है किन्तु कुलनाश को महान् दोष भी बतलाया गया है यदि हम युद्ध जीत भी लेंगे तो यह जीत अपने ही भाइयों को मारकर प्राप्त होगी और अपने भाइयों को मार कर हम जीना नहीं चाहते। इस लिये हम यह निर्णय नहीं कर पा रहे हैं कि हमारे लिये क्या करना उचित है।

इस प्रकार कर्तव्य का निर्णय करने में अपनी असमर्थता प्रकट करने के बाद अब अर्जुन भगवान् की शरण ग्रहण करके अपना निश्चित कर्तव्य बतलाने के लिये प्रार्थना करते हैं:

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः

पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ चेताः।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहितन्मे

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

अन्वय :- कार्यण्यदोषोपहतस्वभावः, धर्मसंमूढचेताः त्वाम् पृच्छामि, यत् श्रेयः स्यात्, तत्, मे, ब्रूहि, अहं ते शिष्यः, त्वाम् प्रपन्नम् माम् शाधि।

शब्दार्थ :- कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः = अज्ञानजनित कायरता के दोष से ग्रस्त स्वभाव वाला, धर्मसंमूढचेताः कर्तव्य के विषय में निर्णय न कर सकने वाला, त्वाम् तुम्हें, पृच्छामि = पूछ रहा हूँ, यत् = जो, श्रेयः श्रेयस्कर स्यात् . हो, तत् = वह, मे = मुझे, ब्रूहि = कहो, अहं = मैं, ते = तुम्हारा, शिष्यः = शिष्य, त्वाम् = तुम्हारी प्रपन्नः = शरण में आया हूँ, माम् = मुझे, शाधि-शिक्षा = उपदेश दो।

अनुवाद :- अज्ञान-जनित कायरता के दोष से मेरा स्वभाव ढक गया है तथा धर्म के विषय में मेरा चित्त मोहित हो गया है। मैं तुम से पूछता हूँ, जो मेरे लिये कल्याण कारी हो वह निश्चय करके मुझे बताओ। मैं तुम्हारा शिष्य हूँ, अपनी शरण में आये हुए मुझ को उपदेश दो।

भावार्थ :- अर्जुन महान शूरवीर था तथा अपने युद्ध कौशल से महानतम् शत्रु तथा विशाल सेना को नष्ट करने में समर्थ था किन्तु इस रणभूमि में उस के समक्ष उसके शत्रु नहीं अपितु गुरुजन पूज्य जन तथा वन्धुबाध्व खड़े थे। युद्ध के परिणाम की संभावना तथा अपने कर्तव्य के विषय में वह 'किंकर्तव्य विमूढ' हो गया है। इस स्थिति में उसके लिये क्या कर्तव्य है यह जानने के लिए वह भगवान् श्री कृष्ण की शरण में जाता है उनको गुरु मान कर उन की आज्ञा का पालन करके ही वह अपने कर्तव्य को भलीभांति निभा सकता है। यद्यपि श्री कृष्ण उस के सखा थे तथा आवश्यकता पड़ने पर वे अर्जुन को उपयोगी सलाह भी देते थे। किन्तु इस समय एक मित्र की सलाह नहीं एक गुरु के स्पष्ट आदेश-उपदेश की आवश्यकता थी क्योंकि मित्र की सलाह को मानने में बाध्यता नहीं होती जबकि गुरु की आज्ञा का पालन अनिवार्य होता है। साथ ही आज्ञा पालन में किसी दोष, पाप बोध का भी अभाव होता है इसीलिये अर्जुन श्री कृष्ण का शिष्यत्व स्वीकार कर के उनके स्पष्ट आदेश की कामना करता है।

1.5 सारांश

प्रस्तुत पाठ में यह बतलाया गया है कि युद्ध भूमि में अपने सम्मुख सगे-सम्बन्धियों को देखकर और युद्ध से होने वाले विनाश का अनुमान कर अर्जुन भावुक हो जाता है, और युद्ध न करने का निश्चय करता है। तब भगवान् श्री कृष्ण, जो अर्जुन के सारथि भी बने हुये हैं, वह उसे समझाते हैं कि युद्धभूमि में तुम्हारा इस तरह का व्यवहार उचित नहीं है, क्योंकि यह श्रेष्ठ पुरुषों के करने योग्य है। इस प्रकार के व्यवहार से तुम्हें अपयश ही प्राप्त होगा। अतः तुम अपने हृदय की इस दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के लिए खड़े हो जाओ। इसके प्रत्युत्तर में अर्जुन कहता है कि मैं पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य जैसे पूजनीय लोगों पर बाण चलाने की अपेक्षा भीख माँगकर अपना जीवन निर्वाह कर लूंगा, परन्तु इनके खून से रंगे हुए धन और काम रूपी भोग नहीं भोगूंगा। इसके अतिरिक्त हमें यह भी नहीं पता कि युद्ध भूमि में हम जीतेंगे अथवा वो जीतेंगे। इसलिए मैं आपकी शरण में आया हूँ, जो मेरे लिये कल्याणकारी मार्ग हो, वह मुझे बताइये।

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

1. कुतस्त्वा कश्मलमिदं कीर्तिकरमर्जुन ॥
2. कथं भीष्महं पूजाहविरिसूदन ॥
3. गुरुनहत्वा हि भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥
4. कार्पण्यदोषो मां त्वां प्रपन्नम् ॥

लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न

1. रणभूमि में अर्जुन की मनोदशा का वर्णन कीजिये।
2. भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन की दुर्बलता के विषय में क्या कहा।
3. द्वितीय अध्याय के प्रथम श्लोक में 'मधुसूदन' विशेषण का प्रयोग करके संजय क्या सन्देश देना चाहते हैं?
4. युद्ध न करने के लिये अर्जुन क्या तर्क देता है?
5. अर्जुन ने श्री कृष्ण का शिष्यत्व क्यों स्वीकार किया ?
6. भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को किन-किन नामों से सम्बोधित करते हैं ?
7. 'पार्थ' तथा परन्तप नामों से सम्बोधन में निहित भावों को स्पष्ट कीजिये।
8. शब्दार्थ लिखिये – महानुभावान्, कश्मलम्, विषीदन्तम्, अनार्यजुष्टम्, क्लैव्यम्, संख्ये, इषुभिः, भैक्ष्यम्, रुधिरप्रदिग्धान् गरीयो, जिजीविषामः, शाधिमाम्।

1.7 सहायक ग्रन्थ

1. श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व विवेचनी – गीताप्रेस, गोरखपुर।
3. गीता रहस्य – बाल गंगाधर तिलक।
4. श्रीमद्भगवद्गीता – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
5. श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय), साहित्य भण्डार, मेरठ।



श्री मद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय
(सप्रसङ्ग व्याख्या एवं भाव-स्पष्ट विवेचन)

- 2.1 शीर्षक
- 2.2 प्रस्तावना
- 2.3 उद्देश्य
- 2.4 विषय सामग्री
- 2.5 सारांश
- 2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 2.7 सहायक ग्रन्थ

2.1 शीर्षक

श्री मद्भगवद्गीता-द्वितीय अध्याय, श्लोक संख्या 8-14

2.2 प्रस्तावना

महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित 'महाभारत' के 'भीष्मपर्व' के अन्तर्गत 'श्रीमद्भगवद्गीता' का स्थान है। श्री मद्भगवद्गीता में 18 अध्याय हैं। जम्मू विश्वविद्यालय के स्नातक पाठ्यक्रम में इसका द्वितीय अध्याय निर्धारित है। प्रस्तुत पाठ में द्वितीय अध्याय के श्लोक संख्या 8 से 14 पर्यन्त प्रत्येक श्लोक का अन्वय, शब्दार्थ, अनुवाद एवं भावार्थ को स्पष्ट किया गया है।

2.3 उद्देश्य

- ❖ पाठकों को भगवद्गीता के अनुसार आत्मस्वरूप से परिचित कराना।
- ❖ पाठकों को भगवद्गीता के मूलभूत सिद्धान्तों से अवगत कराना।

- ❖ युद्धभूमि में स्थित अर्जुन के माध्यम से विषम परिस्थितियों में भी कर्तव्यपरायणता का बोध कराना।
- ❖ भगवद्गीता के कर्म-सिद्धान्त से पाठकों को परिचित करवाना।

2.4 विषय सामग्री

पिछले पाठ में अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण का शिष्यत्व स्वीकार करके उनसे स्पष्ट उपदेश देने का आग्रह किया था। अर्जुन उस आग्रह का हेतु बतलाते हुए अपने विचारों को इस प्रकार प्रकट करते हैं:-

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्यात्
यच्छोकमुच्छोषण मिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥४॥

अन्वय :- हि भूमौ असपत्नम् ऋद्धम् राज्यम् च सुराणाम् आधिपत्यम् अवाप्य अपि (तत्) न प्रपश्यामि यत् मम इन्द्रियाणाम् अच्छोषणम् शोकम् अपनुयात्।

शब्दार्थ : हि = क्योंकि, भूमौ = भूमि पर, असपत्नम् = निष्कण्टक (और) ऋद्धम् = समृद्धिशाली, राज्यम् = राज्य को, च = और, सुराणाम् = देवताओं के, आधिपत्यम् = स्वामित्व को, अवाप्य = प्राप्त करके, अपि = भी, न = नहीं, प्रपश्यामि = देख रहा हूँ, यत् = जो मम = मेरी, इन्द्रियाणाम् = इन्द्रियों को, अच्छोषणम् = सुखा देने वाले, शोकम् = शोक को, अपनुयात् = दूर कर सके।

भावार्थ : अर्जुन भगवान् श्री कृष्ण से यह कह रहा है कि हे प्रभु मैं आपका शिष्यत्व स्वीकरण कर चुका हूँ आप मुझे युद्ध के लिए कह रहे हैं परन्तु मेरी एक शंका है कि मैं पृथ्वी पर निष्कण्टक और समृद्धिशाली राज्य को और देवताओं के स्वामित्व को पाकर भी वह नहीं देखा रहा हूँ, जो मेरी इन्द्रियों को सुखाने वाले शोक को दूर कर सके। अर्थात् इन अपने स्वजनों को मारकर भी मैं कभी सुखी नहीं रह पाऊंगा।

संजय उवाच
एवमुक्त्वा हृषिकेशं गुडाकेशः परन्तपः।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वातूष्णीं बभूव ह ॥५॥

अन्वय :- परन्तप, गुडाकेशं हृषिकेशम्, गोविन्दम् एवम्, उक्त्वा, न योत्स्ये, इति उक्त्वा, तूष्णीम् बभूव।
शब्दार्थ :- परन्तप = शत्रुओं को तपाने वाला, गुडाकेशः = निद्रा को जिसने जीत लिया है (अर्जुन) हृषिकेश गोविन्दम् = हृषिकेश गोविन्द = श्री कृष्ण से, एवम् = ऐसा, उक्त्वा = कह कर, न योत्स्ये = युद्ध नहीं करूंगा, इति = यह, उक्त्वा = कहकर, तूष्णीम् = चुप, बभूव = चुप हो गया।

अनुवाद :- संजय बोले, हे राजन्! निद्रा को जीतने वाले अर्जुन अन्तर्यामी श्री कृष्ण से इस प्रकार अपनी बात कह कर श्रीगोविन्द से "मैं युद्ध नहीं करूंगा" यह बात स्पष्ट कहकर चुप हो गये।

भावार्थ :- इस श्लोक में संजय ने धृतराष्ट्र से यह कहा है कि इस प्रकार से भगवान का शरणागत होकर शिक्षा देने के लिये उन से प्रार्थना करके और अपने विचार प्रकट करके अर्जुन यह कहकर कि "मैं युद्ध नहीं करूंगा" चुप हो गये। कहने का तात्पर्य यह है कि श्री कृष्ण से प्रेरणा पाकर भी अर्जुन युद्ध न करने के अपने निश्चय पर अटल बना रहा।

इस प्रकार अर्जुन के चुप हो जाने पर भगवान श्री कृष्ण ने क्या किया, इसका विवरण देते हुए संजय कहते हैं:-

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।

सेनयोरुभयेर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

अन्वय :- भारत, हृषीकेशः, उभयोः, सेनयोः, मध्ये, विषीदन्तम् तम् (अर्जुनम्) प्रहसन्निव इदं वचः उवाच ।

शब्दार्थ :- भारत – हे भरतवंशी (धृतराष्ट्र) हृषीकेशः = श्री कृष्ण ने, उभयोः = दोनों, सेनयोः = सेनाओं के, मध्ये = बीच में, विषीदन्तम् = विषादग्रस्त, तम्-उसको = अर्जुन को, प्रहसन्निव-मानो हंसते हुए उवाच = कहा।

अनुवाद : हे भारत ! (धृतराष्ट्र) तव श्री कृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में अत्यन्त दुःखित अर्जुन से मानो हंसते हुए ये वाक्य कहे।

भावार्थ : पहले तो अर्जुन से बड़े साहस के साथ दोनों सेनाओं के बीच अपने रथ को ले जाने के लिये श्री कृष्ण को कहा तथा स्वजन समुदाय को देखते ही मोहवश व्याकुल भी हो गये। अर्जुन की इस दशा को देखकर भगवान श्री कृष्ण अर्जुन की स्थिति पर हंसते हुए कहने लगे। आश्चर्य की बात यह है कि एक ओर अर्जुन श्री कृष्ण की शरण में आकर उनका शिष्यत्व स्वीकार करके उपदेश देने की प्रार्थना करता है वहीं दूसरी ओर उनके उपदेश को सुनने से पहले ही 'मैं युद्ध नहीं करूंगा' कह कर अपना निर्णय भी सुना देता है। इस प्रकार के परस्पर विरोधी वचनों से अर्जुन की मनः स्थिति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अर्जुन की इसी मनः स्थिति पर मानो हंसते हुए श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा।

उपर्युक्त प्रकार से चिन्ताग्रस्त अर्जुन ने जब भगवान् के शरण होकर अपने महान् शोक की निवृत्ति का उपाय पूछा और कहा कि इस लोक और परलोक का राज्य सुख भी इस शोक की निवृत्ति का उपाय नहीं है, तब अर्जुन को उपदेश का अधिकारी समझकर उसके शोक और मोह को सदा के लिये नष्ट करने के लिये सांख्य योग के विवेचन द्वारा अर्जुन के अज्ञान का नाश तथा कर्म का उपदेश देते हुए भगवान श्री कृष्ण ने कहा :-

श्री भगवान् उवाच
अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्चभाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानु शोचन्तिपण्डिताः ॥११॥

अन्वय :- अशोच्यान् अनु-अशोचः त्वम् च प्रज्ञावादान् भाष से, पण्डिताः गत-असून्, अगत-असून् च न अनुशोचन्ति ।

शब्दार्थ :- अशोच्यान् = शोक के लिये अयोग्य लोगों के लिये, अनु-अशोचः बार-बार शोक कर रहे हो। च = और, प्रज्ञावादान् = पण्डितों की तरह, भाष से-बोल रहे हो, पण्डिताः ज्ञानी-बुद्धिमान लोग, गत असून् = मृत लोगों के लिये, अगत असून् = जीवित लोगों के लिये, न = नहीं अनुशोचन्ति = शोक करते।

सरलार्थ :- भगवान् श्री कृष्ण ने कहा – हे अर्जुन तुम शोक न करने योग्य मनुष्यों के लिये शोक कर रहे हो और पण्डितों जैसे वचन भी बोल रहे हो, परन्तु जिन के प्राण चले गये हैं उनके लिये तथा जिन के प्राण नहीं गये हैं उनके लिये पण्डित जन शोक नहीं करते।

भावार्थ :- पण्डित अर्थात् ज्ञानी व्यक्ति के लिये इस जीवन में एक मात्र ज्ञातव्य, प्राप्तव्य वस्तु ब्रह्माप्ति ही है। वही एक मात्र सत्य है, जगत् के अन्य सभी पदार्थ नश्वर हैं मिथ्या हैं। श्रुति भी कहती है "ब्रह्मा सत्यं जगन्मिथ्या"। वह ब्रह्मा ही सर्वव्यापक है, आत्मा के रूप में सभी जीवों में व्याप्त है। उसका कभी किसी प्रकार भी नाश नहीं हो सकता। अर्जुन को भ्रम था कि युद्ध में कुल का नाश हो जाने से मरे हुए पितरों को पिण्डदान न हो सकेगा तथा वे नरक को प्राप्त होंगे तथा वह अपने सामने खड़े जीवित बन्धु वान्धवों की भी चिन्ता कर रहा था कि इनके बिना हम राज्य तथा अन्य भोगों को कैसे भोगेंगे। इस प्रकार की उसकी दोनों ही चिन्तायें व्यर्थ थीं वह दूरदर्शी ज्ञानी होने का दावा तो कर रहा था किन्तु उसके तर्क 'ज्ञान' की कसौटी पर खरे नहीं थे, नश्वर वस्तु का नाश तो निश्चित है अतः उसकी चिन्ता करना उचित नहीं। भगवान् श्री कृष्ण साक्षात् भगवान् हैं क्योंकि वे त्रिकालदर्शी हैं। वे कुरुक्षेत्र के युद्ध का परिणाम भी जानते थे। अपने अपने कर्मानुसार जिन लोगों का मृत्युकाल उपस्थित था वे ही लोग उस रणभूमि में एकत्रित हुए थे। श्री भगवान् ने सबका मृत्युकाल उपस्थित जानकर भी उनकी मृत्यु के माध्यम से उन की मुक्ति की व्यवस्था की थी उन्होंने स्वयं अस्त्र शस्त्र धारण नहीं किये थे अर्थात् वे किसी की मृत्यु का कारण नहीं बने थे। विष्णु पुराण में 'भगवान्' की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:-

उत्पत्तिं प्रलयचैव भूतानामगतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

अर्थात् : जो भूतों (जीवों) की उत्पत्ति, प्रलय (विनाश), इस लोक में आगमन, परलोक में गति (गमन), विद्या तथा अविद्या सब कुछ जानते हैं वही भगवान् हैं अर्थात् संसार की सृष्टि स्थिति और प्रलय के कर्ता को भगवान् कहते हैं। वे ही भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश दे रहे हैं।

**नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥12॥**

अन्वयः अहम्, जातु, नतु आसम्, त्वम् न, इमे, जनाधिपाः न, तु, न, अतः परं च, सर्वे वयम्, न भविष्यामः, च एव, न।

शब्दार्थ : अहम् = मैं, जातु = कभी, न तु आसम् = विद्यमान नहीं था, त्वम् न = तुम नहीं थे, इमे = ये सब, जनाधिपाः = राजा लोग, न = नहीं थे, तु न = ऐसा नहीं है, अतः परं च = और इस (जन्म) के बाद, सर्वे वयम् = हम सब, न भविष्यामः = नहीं होंगे, च एव न = और ऐसा भी नहीं है।

सरलार्थ :- न तो ऐसा है कि मैं किसी काल में नहीं था या तुम नहीं थे या ये राजा लोग नहीं थे। और ऐसा भी नहीं है कि इस से आगे (भविष्य में) हम सब नहीं रहेंगे।

भावार्थ :- भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि जिन भीष्मादि स्वजनों के लिये तुम शोक कर रहे हो उनके लिये शोक करना उचित नहीं है। क्यों उचित नहीं है इस शंका का समाधान करते हुए भगवान् ने आत्मरूप से सबकी नित्यता सिद्ध करके यह भाव दिखलाया है कि तुम जिन के नाश की आशंका कर रहे हो, उन सबका या तुम्हारा या हमारा किसी भी काल में अभाव नहीं था। वर्तमान शरीरों की उत्पत्ति से पहले भी हम सब थे और बाद में भी रहेंगे। शरीरों के नाश से आत्मा का नाश नहीं होता, अतएव नाश की आशंका से इन सब के लिये शोक करना उचित नहीं है।

इस प्रकार आत्मा की नित्यता का प्रतिपादन करके अब उसकी निर्विकारता का प्रतिपादन करते हुए भगवान् श्री कृष्ण आत्मा के लिये शोक को अनुचित सिद्ध करते हैं :

**देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥13॥**

अन्वय :- यथा, देहिनः, अस्मिन्, देहे, कौमारम्, यौवनम्, जरा, तथा, देहान्तर प्राप्तिः, तत्र, धीरः, न, मुह्यति।

शब्दार्थ :- यथा = जिस प्रकार से, देहिनः = देह धारी जीव की, अस्मिन् = इस, देहे = शरीर में, कौमारम् = बचपन, यौवनम् = युवावस्था, जरा = बुढ़ापा, तथा = उसी प्रकार से, उसी क्रम से, देहान्तर प्राप्ति = अन्य शरीर की प्राप्ति, तत्र = उस (परिवर्तन) के लिये = उस अवस्था के लिये, धीरः = ज्ञानी व्यक्ति, न मुह्यति = मोह को प्राप्त नहीं होता।

सरलार्थ :- जैसे जीवात्मा की इस देह में बचपन, युवावस्था तथा बुढ़ापे की अवस्थायें होती हैं उसी प्रकार अन्य शरीर का ग्रहण भी उस जीवात्मा के लिये एक अवस्था है। उस विषय में ज्ञानी व्यक्ति मोह ग्रस्त नहीं होता।

भावार्थ :- आत्मा को विकारी मान कर एक शरीर से दूसरे शरीर में जाते आते समय उसे कष्ट होने की आशंका से अज्ञानी लोग जो शोक किया कहते हैं, उसको भगवान ने अनुचित बतलाया है।

अवस्था परिवर्तन का आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जैसे बचपन से युवा होने पर कोई पीड़ा या कष्ट अनुभव नहीं होता उसी प्रकार देहान्तरप्राप्ति भी एक सहज परिवर्तनमात्र है उसका विनाश नहीं है। मोक्ष प्राप्ति तक प्रत्येक जीवात्मा को शरीरान्तर प्राप्त होता रहता है। आत्मा की नित्यता तथा पुर्नजन्म हिन्दूधर्म के दो प्रधान सिद्धान्त हैं। हिन्दू-शास्त्रों में जीवात्मा के अनुष्ठित कर्मों के अनुसार स्वर्गादि-भोग की व्यवस्था है किन्तु वह अनन्त काल के लिये नहीं। जिस कर्म विशेष के फलस्वरूप जीवात्मा को स्वर्गादि का लाभ होता है उस कर्मफल का भोग समाप्त होने पर उसे पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ता है। निर्वाण-मुक्ति या भगवत् प्राप्ति जब तक नहीं होती तब तक जीवात्मा के इस जन्म-मृत्यु-प्रवाह की निवृत्ति नहीं होती। अतः ज्ञानी लोग देहान्तर प्राप्ति के लिये शोक नहीं करते।

इस उपर्युक्त श्लोक में श्री कृष्ण ने आत्मा की नित्यता और निर्विकारता का प्रतिपादन कर के उसके लिये शोक करना अनुचित सिद्ध किया है। उसे सुन कर जिज्ञासा होती है कि आत्मा नित्य (अविनाशी) और निर्विकार हो तो भी बन्धु-बान्धव आदि के साथ होने वाले संयोग-वियोगादि से सुख दुःख आदि का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, अतः कोई शोक किये बिना कैसे रह सकता है। इस पर भगवान् सब प्रकार के संयोग वियोग आदि को अनित्य बतला कर उसे सहन करने की आज्ञा देते हैं:-

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुख दुःखदाः।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥14॥

अन्वय :- कौन्तेय! मात्रास्पर्शाः, तु, शीत-उष्ण - सुख दुःखदाः, आगम-अपायिनः, अनित्याः, भारत!, तान्, तितिक्षस्व।

शब्दार्थ :- कौन्तेय = हे कुन्ती पुत्र, मात्रा स्पर्शाः = इन्द्रियों और उनके विषयों के संस्पर्श, तु = निश्चय ही, शीत-उष्ण = सर्दी-गर्मी, सुख-दुःखदाः = सुख दुःख देने वाले हैं। आगम-अपायिनः = आने वाले, चले जाने वाले, अनित्याः = सदा न रहने वाले (अनित्य), भारत = अर्जुन का सम्बोधन तान् = उनकी, तितिक्षस्व = सहन करो।

सरलार्थ :- हे कुन्तीपुत्र ! इन्द्रियों और विषयों का संस्पर्श ही सर्दी गर्मी और सुख दुःख का भास (अनुभव) करवाता है वे आते हैं चले जाते हैं क्योंकि वे सदा नहीं रहते, वे अनित्य हैं अतः हे भारत! तुम उन्हें सहन करो।

भावार्थ :- जिनके द्वारा किसी वस्तु का माप किया जाये उस के स्वरूप: अस्तित्व का ज्ञान प्राप्त किया जाये उसे 'मात्रा' कहते हैं अतः 'मात्रा' का अर्थ है अन्तः करण सहित सभी इन्द्रियां श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण (नासिका) ये पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध ये पांच इन ज्ञानेन्द्रियों के विषय संस्पर्श हैं। इन इन्द्रियों का अपने अपने विषयों के साथ जो सम्बंध है उसे ही 'मात्रा स्पर्शाः' कहा गया है। विषय और इन्द्रियों के सम्बन्धों को "शीतोष्ण" सुख दुःखदाः कहकर भगवान् ने यह भाव दिखलाया है कि वे सारे 'विषय' ही इन्द्रियों के साथ संयोग होने पर शीतउष्ण, राग-द्वेष, हर्ष-शोक सुख-दुःख आदि का अनुभव कराते हैं। जिस प्रकार सर्दी-गर्मी सदा नहीं रहते हैं। वन्धु वान्धवों का संयोग वियोग भी इसी में आ जाता है। अतः इस संयोग वियोग को अनित्य समझकर इन्हें सहन करने की आज्ञा भगवान् ने दी है।

2.5 सारांश

प्रस्तुत पाठ में यह स्पष्ट किया गया है कि शोकाकुल अर्जुन जब श्रीकृष्ण का शिष्यव स्वीकार कर उनसे उचित मार्गदर्शन माँगता है, और युद्ध न करने की बात कहकर चुप हो जाता है। तब युद्धभूमि में दुःखी अर्जुन से भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कुराते हुये कहते हैं कि हे अर्जुन! एक तरफ तुम शोक न करने योग्यों के लिए शोक कर रहे हो और दूसरी तरफ विद्वानों (पण्डितों) की तरह बातें भी कर रहे हो, किन्तु पण्डित लोग जिनके प्राण चले गये हैं, अथवा जिनके प्राण नहीं गये हैं, उन दोनों के विषय में ही शोक नहीं करते हैं। भगवान् कहते हैं जिस प्रकार इस आत्मा की मनुष्य शरीर में बचपन, जवानी और बुढ़ापा – ये तीन अवस्थाएँ होती हैं, उसी प्रकार अन्य शरीर की प्राप्ति भी इस जीवात्मा के लिए एक अवस्था है, इस विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होते हैं। ये सर्दी-गर्मी, तथा सुख-दुःख मात्र इन्द्रियों और विषयों का स्पर्श करने वाले हैं, और अनित्य हैं। तुम इन्हें सहन करो, क्योंकि ये आते हैं और चले जाते हैं।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अर्जुन के शोक का कारण क्या था ?
2. अर्जुन का शोक उसके स्वभाव-व्यवहार पर क्या प्रभाव डाल रहा था ?
3. दोनों सेनाओं के बीच में अर्जुन को उपदेश देने का क्या प्रयोजन था ?
4. अर्जुन ने पण्डितों जैसी कौन सी बातें की थीं ?
5. पण्डितजन किस प्रकार का व्यवहार करते हैं ?
6. देहान्तर प्राप्ति से क्या तात्पर्य है ?
7. इन्द्रियों व उनके विषयों से मनुष्य क्या अनुभव करता है ?

अधोलिखित श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या करें।

1. न हि प्रपश्यामि सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥
2. तुमवाच हृशीकेशः : विशीदन्तमिदं वचः ॥
3. न त्वेवाहं जातु नासं सर्वे वयमतः परम् ॥
4. मात्रास्पर्शास्तु तितिक्षस्व भारत ॥

2.7 सहायक ग्रन्थ

1. श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व विवेचनी – गीताप्रेस, गोरखपुर।
3. गीता रहस्य – बाल गंगाधर तिलक।
4. श्रीमद्भगवद्गीता – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
5. श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय), साहित्य भण्डार, मेरठ।



श्री मद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय
(सप्रसङ्ग व्याख्या एवं भाव-स्पष्ट विवेचन)

- 3.1 शीर्षक
- 3.2 प्रस्तावना
- 3.3 उद्देश्य
- 3.4 विषय सामग्री
- 3.5 सारांश
- 3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 3.7 सहायक ग्रन्थ

3.1 शीर्षक

श्री मद्भगवद्गीता-द्वितीय अध्याय, श्लोक संख्या 37-43

3.2 प्रस्तावना

श्री 'मद्भगवद्गीता' महाभारत के 'भीष्मपर्व' का अंग है। इसमें अठारह अध्याय हैं। पाठ्यक्रम में 'भगवद्गीता' का द्वितीय अध्याय निर्धारित है, इस अध्याय का नाम 'सांख्य-योग' है। प्रस्तुत पाठ में गीता के द्वितीय अध्याय पद्य संख्या 37 से 43 तक के पद्यों की सप्रसंग व्याख्या, शब्दार्थ, भाव, स्पष्ट किया गया है। इस पाठ का उद्देश्य छात्रों को गीता के दूसरे अध्याय के श्लोकों तथा व्याख्या, भाव तथा शब्दार्थ से अवगत करवाना है।

3.3 उद्देश्य

- ❖ विद्यार्थियों को भगवद्गीता के अनुसार आत्मा का स्वरूप स्पष्ट कराना।

- ❖ भगवद्गीता के अनुसार पाठकों को क्षत्रिय-धर्म से अवगत करवाना।
- ❖ युद्धभूमि में स्थित अर्जुन के माध्यम से विषम परिस्थितियों में भी कर्तव्यपरायणता का बोध कराना।

3.4 विषय सामग्री

प्रस्तुत पाठ में गीता के द्वितीय अध्याय पद्य संख्या 37 से 43 तक के पद्यों की सप्रसंग व्याख्या, शब्दार्थ, भाव, स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत पाठों में अन्तिम पेज पर बहुबिकल्पीय प्रश्न (वस्तुनिष्ठ प्रश्न) और उन के उत्तर दिये गये हैं, इन पाठों की सहायता से छात्रों को अपने सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को दोहराने की क्षमता प्राप्त हो सकेगी।

श्लोक सं 37 – हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

- अन्वय –** वा हतः स्वर्गम् प्राप्स्यसि वा जित्वा महीम् भोक्ष्यसे। तस्मात् (हे) कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः उत्तिष्ठ।
- अनुवाद –** अथवा मृत होने पर भी (तुम) स्वर्ग को प्राप्त करोगे अथवा (युद्ध में जीत कर तुम) पृथ्वी का भोग करोगे। इस कारण से हे कुन्तीपुत्र (अर्जुन) तुम युद्ध के लिये निश्चय किये हुये होकर उठ खड़े होओ।
- शब्दार्थ –** हतः – मरा हुआ, स्वर्ग प्राप्स्यसि – स्वर्ग को प्राप्त करोगे, वा– अथवा, जित्वा – जीतकर, महीं भोक्ष्यसे – पृथ्वी का तुम भोग करोगे, तस्मात् – उस कारण से, कौन्तेय – हे कुन्ती पुत्र अर्जुन, युद्धाय – युद्ध करने के लिये, कृत निश्चयः – किये हुये निश्चय वाले (तुम), उत्तिष्ठ – खड़े हो जाओ।
- भाव –** यदि युद्ध में तुम्हारे शत्रुओं की जीत हो गई और तुम मारे गये तो भी अच्छी बात है, क्योंकि युद्ध में प्राण त्याग करने से तुम्हें स्वर्ग मिलेगा और यदि विजय प्राप्त कर लो तो पृथ्वी का राज्य सुख भोगोगे, अत एव दोनो ही दृष्टियों से तुम्हारे लिये तो युद्ध करना ही सब प्रकार से श्रेष्ठ है। इसलिये तुम युद्ध के लिये कमर कसकर तैयार हो जाओ।

श्लोक सं 38 – सुख-दुखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

- अन्वय –** सुख-दुखे लाभालाभौ जयाजयौ समे कृत्वा ततः युद्धाय युज्यस्व (एवम् त्वम्) पापम न अवाप्स्यसि।
- अनुवाद –** (हे अर्जुन) सुख और दुख को लाभ और अलाभ (हानि) को और जय और अजय (पराजय) को तू समान करके (मान) और उसके बाद युद्ध में संलग्न हो जा (इस प्रकार तू) पाप को प्राप्त नहीं करेगा।

शब्दार्थ – सुख-दुखे – सुख और दुख को, जय-अजयौ-जीत और हार को, लाभ-अलाभौ – लाभ और हानि को, समे कृत्वा-समान मान कर, ततः – उसके बाद युद्धाय युज्यस्व युद्ध के लिये संलग्न हो जा, पापम – पाप को न अवाप्स्यसि – तू नहीं प्राप्त करेगा।

भाव – इस श्लोक में भगवान ने यह भाव दिखलाया है कि यदि तुम को राज्य सुख और स्वर्ग की इच्छा नहीं है तो युद्ध में होने वाले विशम भाव का सर्वथा त्याग कर के उपर्युक्त प्रकार से युद्ध के प्रत्येक परिणाम में सम होकर उस के बाद युद्ध करना चाहिये। ऐसा युद्ध सदा रहने वाली परम शक्ति को देने वाला है।

श्लोक सं 39 – एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।

बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥38॥

अन्वय – (हे) पार्थ ! एषा बुद्धि ते सांख्ये अभिहिता तु इमाम् योगे शृणु । यया बुद्ध्य युक्तः (त्वम्) कर्मबन्धम् प्रहास्यसि ।

अनुवाद – हे अर्जुन यह (कही गयी) बुद्धि (विचार) तेरे लिए सांख्य के विषय में कही गयी है किन्तु, इसी (बुद्धि) को (तू) (अब) योग (निष्काम कर्मयोग) के विषय में सुन। जिस (निष्काम कर्मयोग की) बुद्धि से युक्त हुआ (तू) (सांसारिक) कर्मों के बन्धन को छोड़ देगा।

शब्दार्थ – पार्थ – पृथा का पुत्र (अर्जुन), एषा – यह, सांख्ये – सांख्य के विषय में, अभिहिता – कही गयी है, तु-किन्तु, इमाम् – इस (बुद्धि) को, योगे- योग (निष्काम कर्मयोग) के विषय में, शृणु- सुन, यया बुद्ध्य या – जिस बुद्धि से, युक्तः – युक्त हुआ (तू), कर्मबन्धम् – कर्मों के बन्धन को, प्रहास्यसि- छोड़ देगा।

भाव – इस श्लोक में भगवान ने यह भाव दिखलाया है कि वही समभाव कर्मयोग के साधन में किस प्रकार होता है कर्मयोगी को किस प्रकार समभाव रखना चाहिये और इस समता का क्या फल है।

श्लोक सं 40 –नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥40॥

अन्वय – इह अभिक्रमनाशः न अस्ति, (च) प्रत्यवायः (अपि) न विद्यते। अस्य धर्मस्य स्वल्पम अपि महतः भयात् त्रायते।

अनुवाद – (हे पार्थ), इस (निष्कामकर्मयोग) में आरम्भ (अर्थात् बीज) का नाश नहीं होता है। (और) विपरीत फल (रूप शेष) (भी) नहीं होता है। (इसलिए) इस (निष्काम कर्मयोग रूप) धर्म का थोड़ा-सा भी (साधन) बड़े भय से (अर्थात् जन्म-मृत्यु रूप भय से) बचा देता है।

शब्दार्थ – इह – इस (निष्काम कर्मयोग) में, अभिक्रमनाशः – अभिक्रम (बीज रूप मूल कर्म) का नाश, न अस्ति – नहीं है (नहीं होता है), प्रत्यवायः – विपरीत (उल्टा) फल रूप दोष, न विद्यते – नहीं है, अस्य धर्मस्य – इस धर्म का, स्वल्पम् अपि – थोड़ा सा भी (साधन), महतः भयात् – बड़े भय से, त्रायते – बचा लेता है, रक्षा कर लेता है।

भाव – इस श्लोक में यह भाव दिखलाया गया है कि यदि मनुष्य इस कर्मयोग के साधन का आरम्भ कर के उस के पूर्ण होने से पहले बीच में ही त्याग कर दे तो जिस प्रकार किसी खेती करने वाले मनुष्य के खेत में बीज बोकर उस की रक्षा न करना या जल न सींचने से बीज नष्ट हो जाता है उस प्रकार कर्मयोग के आरम्भ का नाश नहीं होता इस के संस्कार साधक के अन्तःकरण में स्थित हो जाते हैं और वे साधक को दूसरे जन्म में जबरदस्ती पुनः साधन में लग जाते हैं। इस का विनाश नहीं होता इसलिये भगवान ने कर्मयोग को सत् कहा।

श्लोक सं 41 – व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।।41।।

अन्वय – (हे) कुरुनन्दन ! इह व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका हि । च अव्यवसायिनाम् बुद्धयः बहुशाखाः अनन्ताः (भवन्ति) ।

अनुवाद – हे अर्जुन, इस (कल्याण वाले मार्ग में) निश्चयात्मक बुद्धि एक ही होती है । और, अनिश्चयात्मक ज्ञान वाले (अज्ञानी) (पुरुषों) की बुद्धियाँ बहुत भेदों वाली होती हुई अनन्त होती हैं।

शब्दार्थ – कुरुनन्दन – कुरु को प्रसन्न करने वाला अर्थात् अर्जुन, इह – इस निष्कामकर्मयोग रूपी (कल्याण मार्ग में), व्यवसायात्मिका – निश्चय ज्ञान वाली, बुद्धि – बुद्धि, एका हि – एक होती है, अव्यवसायिनाम् – अज्ञानी (अनिश्चयात्मक ज्ञान वाले) लोगों की, बुद्धयः – बुद्धियाँ, बहुशाखाः – बहुत भेद वाली, अनन्ताः – अनन्त अर्थात् अनेक।

भाव – अटल और स्थिर निश्चय ही जिस बुद्धि का स्वरूप है जिस बुद्धि से युक्त होने का फल कर्मबन्धन से मुक्त होना वतलाया गया है उस स्थायी समभाव रूप निश्चयात्मिक बुद्धि का वाचक जहां व्यवसायात्मिका विशेषण के सहित बुद्धि पद है क्योंकि इस प्रकरण जगह जगह इसी अर्थ में बुद्धि शब्द का प्रयोग हुआ है। तथा वह बुद्धि एक ही है। यह कहकर यह भाव दिखलाया गया है कि इस में केवल मात्र एक भगवान परमात्मा का ही निश्चय रहता है। नाना योग और उस की प्राप्ति के उपायों को इस के निश्चय में स्थान नहीं मिलता। इसी को स्थिर बुद्धि और समबुद्धि भी कहते हैं।

श्लोक सं 42— यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥42॥

- अन्वय** — (हे) पार्थ ! वेदवादरताः अन्यत् न अस्ति, इति वादिनः अविपश्चितः याम् इमाम् पुष्पितां वाचम् प्रवदन्ति (तेषाम् व्यवसायात्मिका बुद्धिः न विधीयते) ।
- अनुवाद** — हे अर्जुन, वेद के (कर्मफलों को देने वाले) वादों में निरत, (इससे भिन्न) अन्य (कुछ) नहीं है, ऐसा कहने वाले, अविद्वान् लोग, जिस, इस पुष्पित (दिखावटी शोभायुक्त) बात को कहते हैं (उनके पास निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है) ।
- शब्दार्थ** — वेदवादरताः — वेद सम्बन्धी कर्मों के फल को प्रदान करने वाले वादों में लगे हुए, अन्यत् न अस्ति— इसके (स्वर्ग आदि फल देने वाले कर्मों के), अतिरिक्त और कुछ नहीं है, अविपश्चितः— अविद्वान् लोग, अज्ञानी लोग, पुष्पिताम् — पुष्पों वाली अर्थात् ऊपर से सुन्दर दिखायी देने वाली (बात) ।
- भाव** — वेदों में इस लोक और पर लोक के भोगों की प्राप्ति के लिये बहुत प्रकार के अलग अलग काम्य कर्मों का निधान किया गया है और उन कर्मों के भिन्न भिन्न फल बतलाये गये हैं वेद के उन वचनों में और उन के द्वारा बतलाये हुये फलरूप भोगों में जिन की अत्यन्त आसक्ति है उन मनुष्यों का वाचक यहां वेदवादरताः पद है ।

श्लोक सं 43 — कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥43॥

- अन्वय** — (हे पार्थ) कामात्मानः स्वर्गपराः, जन्मकर्मफलप्रदाम्, भोगैश्वर्यगतिम् प्रति क्रियाविशेषबहुलाम् (याम् इमाम् पुष्पिताम् वाचम् प्रवदन्ति) । (तेषाम् व्यवसायात्मिका बुद्धिः न विधीयते) ।
- अनुवाद** — (हे अर्जुन) कामनाओं वाले लोग, स्वर्गपरायण होते हुए जन्म रूप कर्मों के फल को देने वाली, भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए क्रिया— विशेष की बहुलता वाली (अत्यधिक कर्म काण्ड के विस्तार वाली) (इस, जिस पुष्पित वाणी को कहते हैं) (उनके पास निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है) ।
- शब्दार्थ** — कामात्मानः — स्वर्ग परायण (अर्थात् स्वर्ग की इच्छा करने वाले), जन्म कर्म फलप्रदाम्— (अच्छे जन्म रूप कर्मफल को देने वाली), भोगैश्वर्यगतिम् प्रति—भोग तथा ऐश्वर्य के लिए, क्रियाविशेषबहुलाम्— विशेष—विशेष क्रियाओं (कर्मकाण्ड) की बहुलता वाली ।
- भाव** — इमाम् और याम् विशेषणों से यह भाव दिखलाया गया है कि वे अपने को पण्डित मानने वाले मनुष्य जो दुसरो को ऐसा कहा करते हैं कि स्वर्ग के भोगों से बढ़कर अन्य कुछ है ही नहीं तथा जन्मरूप

कर्मफल देने वाली जिस वेद वाणी इन के और उनका उपदेश सुनने वालों के चित्त का अपहरण करने वाली होती है। तथा पुष्पिताम विशेषण से यह भाव दिखलाया है कि इस वाणी में यद्यपि वास्तव में विशेष महत्व नहीं है, वह नाशवान भोगों के नाम मात्र क्षणिक सुख का ही वर्णन करती है। तथापि वह टेसू के फूल की भाँति ऊपर से बड़ी रमणीय और सुन्दर होती है। इसी कारण सांसारिक मनुष्य इस के प्रलोभन में पड जाते हैं।

3.5 सारांश

प्रस्तुत पाठ में युद्ध से विमुक्त हुए अर्जुन को आत्मा का स्वरूप तथा क्षत्रिय-धर्म समझाने के पश्चात् उपदेश देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! अगर तुम इस युद्ध में मारे जाते हो, तो तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी और अगर जीतते हो तो इस पृथ्वी का भोग करोगे, इसलिए युद्ध के लिए निश्चय करके खड़े हो जाओ। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को यह भी कहते हैं कि यदि तुम सुख-दुःख, लाभ-हानि तथा जय-पराजय को एक समान समझ कर युद्ध करते हो तो ऐसा करने से तुम्हें पाप नहीं लगेगा। श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह तुम्हारे लिए सांख्य के विषय में कहे गये विचार हैं, अब इसके उपरान्त तेरे लिए निष्काम कर्म योग के विषय में कहूँगा, जिसके ज्ञान से तुम सांसारिक कर्म-बन्धनों से मुक्त हो जाओगे।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या करें।

1. हतो वा प्राप्स्यसि कृतनिश्चयः।
2. सुख-दुःखे समे नैवं पापमवाप्स्यसि ॥
3. एष तभिहिता सांख्ये कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥
4. यमिमां पुष्पितां वादिनः ॥

3.7 सहायक ग्रन्थ

1. श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व विवेचनी – गीताप्रेस, गोरखपुर।
3. गीता रहस्य – बाल गंगाधर तिलक।
4. श्रीमद्भगवद्गीता – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
5. श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय), साहित्य भण्डार, मेरठ।



श्री मद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय
(सप्रसङ्ग व्याख्या एवं भाव-स्पष्ट विवेचन)

- 4.1 शीर्षक
- 4.2 प्रस्तावना
- 4.3 उद्देश्य
- 4.4 विषय सामग्री
- 4.5 सारांश
- 4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 4.7 सहायक ग्रन्थ

4.1 शीर्षक

श्री मद्भगवद्गीता-द्वितीय अध्याय, श्लोक संख्या 44-50

4.2 प्रस्तावना

पाठ्यक्रम में निर्धारित भगवद्गीता का द्वितीय अध्याय महाभारत के 'भीष्मपर्व' का ही अंश है। गीता के इस द्वितीय अध्याय का नाम 'सांख्य-योग' है। प्रस्तुत पाठ में गीता के द्वितीय अध्याय के पद्य संख्या 44 से 50 पर्यन्त पद्यों का अन्वय, शब्दार्थ, सप्रसंग व्याख्या एवं भाव स्पष्ट किया है।

4.3 उद्देश्य

- ❖ पाठकों को भगवद्गीता के मूलभूत सिद्धान्तों से अवगत कराना।
- ❖ पाठकों को भगवद्गीता के अनुसार 'स्थिर बुद्धि' पुरुष का लक्षण स्पष्ट करवाना।

❖ भगवद्गीता के अनुसार 'समत्व बुद्धि योग' का लक्षण स्पष्ट करना।

4.4 विषय सामग्री

प्रस्तुत पाठ में गीता के द्वितीय अध्याय पद्य संख्या 44 से 50 तक के पद्यों की सप्रसंग व्याख्या, शब्दार्थ, भाव, स्पष्ट किया गया है।

श्लोक सं 44 – भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाहृतचेतसाम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥44॥

अन्वय – (हे पार्थ) तथा अपहृतचेतसाम्, भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् (अव्यवसायिनाम्) समाधौ व्यवसायात्मिकाः बुद्धिः न विधीयते।

अनुवाद – (हे अर्जुन) उस (दिखावटी शोभा युक्त वाणी) से हरे गये चित्त वालों के (तथा) भोग और ऐश्वर्य में आसक्त रहने वालों के अन्तःकरण में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है।

शब्दार्थ – तथा- उससे, अपहृतचेतसाम् – हरे गये चित्त वालों के, भोग-ऐश्वर्य प्रसक्तानाम् – भोग तथा ऐश्वर्य में आसक्त रहने वालों के, समाधौ – अन्तःकरण में (समाधि शब्द का विशेष अर्थ है), व्यवसायात्मिका-निश्चयात्मक, बुद्धिः – बुद्धि, न विधीयते – नहीं होती है।

भाव – उसी निश्चयात्मक बुद्धि का वाचक जहां व्यवसायात्मिक विशेषण के सहित बुद्धि पद है। समाधीयते अस्मिन् बुद्धिः इति समाधिः इस व्युत्पत्ति के अनुसार जहां समाधि का अर्थ परमात्मा किया गया है। तथा अपर्युक्त वाक्य से जहां यह भाव दिखलाया गया है कि उन मनुष्यों का चित्त योग और ऐश्वर्य में आसक्त रहने के कारण हर समय अत्यन्त चंचल रहता है। और वे अत्यन्त स्वार्थ परायण होते हैं अत एव उन की परमात्मा में अटल और स्थिर निश्चय वाली बुद्धि नहीं होती।

श्लोक सं 45 – त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥45॥

अन्वय – (हे) अर्जुन ! वेदाः त्रैगुण्यविषयाः (सन्ति) (परम् त्वम्) निस्त्रैगुण्यः निर्द्वन्द्वः, नित्यसत्त्वस्थः, निर्योगक्षेमः (च) आत्मवान् भव।

अनुवाद – हे अर्जुन, वेद तीनों गुणों (सत्, रज, तम) के परिणाम रूप इस संसार को बिषय बनाने वाले अर्थात् (संसारी) हैं (किन्तु तू) असंसारी और सुख दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित नित्य वस्तु (परमात्मा) में स्थित योग-क्षेम को चाहने वाला तथा आत्म परायण हो।

शब्दार्थ – वेदाः – सभी वेद, त्रैगुण्य-विषया- त्रैगुण्य अर्थात्, त्रिगुण से बने संसार के विषय वाले हैं, निस्त्रैगुण्यः – त्रैगुण्य अर्थात् त्रिगुण से बने संसार से रहित, निद्वन्द्वः – सुख दुःख, आदि दो-दो के समूह को द्वन्द्व कहा जाता है। उनसे परे (रहित), नित्यसत्त्वस्थ : – नित्यवस्तु (परमात्मा) में स्थित, निर्योगक्षेम – योग से तात्पर्य है अप्राप्त की प्राप्ति और क्षेम से तात्पर्य है, प्राप्त वस्तु की रक्षा। तुम योग और क्षेम को चाहने वाले न बनो।

भाव : – वेदों को त्रैगुण्यविषय यह भाव है कि सत्त्व रज, तम इन तीनों गुणों के कार्य को त्रैगुण्य कहते हैं। अतः समस्त योग और ऐश्वर्यमय पदार्थों और उन की प्राप्ति के लिये समस्त कर्मों का वाचक जहां त्रैगुण्य शब्द हैं। उन सब का वर्णन अङ्ग-प्रत्यङ्गों सहित उन सब को त्रैगुण्य विशयाः कहते हैं। जहां वेदों को त्रैगुण्य-विशयाः बतलाकर यह भाव दिखलाया गया है कि वेदों में कर्म काण्ड का वर्णन अधिक होने के कारण वेद त्रैगुण्य विषय है।

जहां पर अर्जुन को यह बात कही गई है कि सब वेद तीनों गुणों के कार्य का प्रतिपादन करने वाले हैं और तुम तीनों गुणों के कार्यरूप समस्त भोगों में और उन के साधनों में आसक्ति रहित हो जाओ।

श्लोक सं 46 यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।।46।।

अन्वय – सर्वतः संप्लुतोदके (प्राप्ते सति), उदपाने (मनुष्यस्य) यावान् अर्थः (भवति), (ब्रह्मणि प्राप्ते सति) विजानतः ब्राह्मणस्य सर्वेषु वेदेषु तावान् (एव अर्थः)।

शब्दार्थ – सर्वतः – सब और से, संप्लुतोदके – अच्छी प्रकार भरे हुए जल वाले (सरोवर के), उदपाने- थोड़े जल वाले, यावान् अर्थः – जितना प्रयोजन (रह जाता है), विजानतः – अच्छी प्रकार से जानते हुए का, तावान् – उतना (ही)।

भाव – इस श्लोक में जलाशय का दृष्टान्त दे कर भगवान ने ज्ञानी महात्माओं की आत्यन्तिक तृप्ति का वर्णन किया है। अभिप्राय यह है कि जिस मनुष्य को अमृत के समान स्वादु और गुण कारी अथाह जल से भरा हुआ जलाशय मिल जाता है उस को जैसे जल के लिये (वापी कूप तड़ागादि) छोटे छोटे जलाशयों से कोई प्रयोजन नहीं रहता उस की जल विषयक सारी अवश्यकतायें पूर्ण हो जाती हैं। वैसे ही जो पुरुष समस्त भोगों में ममता, आसक्ति का त्याग करके परमात्मा को जान लेता है। जिस को परमानन्द के समुद्र पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है इसको आनन्द की प्राप्ति के लिये वेदोक्त कर्मों के फलरूप भोगों से कुछ भी प्रयोजन नहीं।

श्लोक सं 47 कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥47॥

अन्वय – (हे पार्थ) कर्मणि (एव) ते अधिकारः फलेषु कदाचन मा । (अतः त्वम्) कर्मफलहेतुः मा भूः (च) अकर्मणि (अपि) ते सङ्ग मा अस्तु ।

अनुवाद – हे अर्जुन कर्म (करने) में ही तेरा अधिकार है (कर्मों के) फलों में कभी नहीं । (इसलिए तू) कर्मफल के हेतु (कर्म करने वाला) मत हो (और) कर्म न करने में (भी) तेरी असक्ति न होवे (तू ऐसा बन) ।

शब्दार्थ – ते – तेरा, कर्मणि एव – कर्म (करने में) ही, अधिकारः – अधिकार है, फलेषु – (कर्मों के) फलों में, कदाचन मा – कभी नहीं, कर्मफलहेतुः – कर्म के फल का हेतु, मा भूः – मत होओ, अकर्मणि- कर्म न करने में, सङ्गः – आसक्ति, रुचि, मा अस्तु – नहीं होवे ।

भावः – इस मनुष्य शरीर में ही जीव को नवीन कर्म करने की स्वतन्त्रता दी जाती है अतः यदि वह अपने अधिकार के अनुसार परमेश्वर की आज्ञा का पालन करता रहे और उन कर्मों में तथा उन के फल में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके उन कर्मों को परमात्मा की प्राप्ति का साधन बना ले तो वह सहज में ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है । तुम्हें इस समय मनुष्य शरीर प्राप्त है अतः तुम्हारा कर्मों में अधिकार है इसलिये तुम्हें इस अधिकार का सदुपयोग करना चाहिये ।

श्लोक 48 – योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥48॥

अन्वय – (हे) धनंजय ! सङ्गम त्यक्त्वा सिद्धयसिद्धयोः समः भूत्वा योगस्थः कर्माणि कुरु (यतोहि) समत्वम् योगः उच्यते ।

अनुवाद – हे अर्जुन आसक्ति को त्याग कर सफलता और असफलता में समान रहकर योग में स्थित हुआ (तू अपने) कर्मों को कर । (क्योंकि) समभाव ही योग कहा जाता है ।

शब्दार्थ – धनंजय – धन को जीतने वाला (अर्जुन) सम्बोधन, सङ्गम्-आसक्ति को, त्यक्त्वा-त्यागकर, छोड़कर, सिद्धयसिद्धयोः – सिद्धि (सफलता) और असिद्धि (असफलता में), समः – समान (भाव) वाला, भूत्वा – होकर, योगस्थः – योग (समभाव) में स्थित हुआ, कर्माणि कुरु – कर्मों को कर, समत्वम् – समभाव, योगः-योग, उच्यते – कहा जाता है ।

भावः – इस श्लोक में भगवान ने कर्मयोग के आचरण की प्रक्रिया वतलायी है । कर्मयोग का साधक जब कर्मों में और उन के फल में आसक्ति त्याग देता है तब उस में राग-द्वेष का और उन से होने वाले

हर्ष शोकादि का अभाव हो जाता है। ऐसा होने से ही वह सिद्धि और असिद्धि में सम रह जाता है। इन दोषों के रहते सिद्धि और असिद्धि में सम नहीं रहा जा सकता अर्थात् किये जाने वाले कर्म के पूर्ण होने और न होने में तथा उस के अनुकूल और प्रतिकूल परिणाम में सम रहने की चेष्टा रखने से अन्त में राग-द्वेष आदि का अभाव होता है। इस प्रकार आसक्ति के त्याग का और समता का परस्पर धनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः एव दोनों परस्पर एक दूसरे के सहायक हैं इसलिये भगवान ने जहां आसक्ति का त्याग कर के और सिद्धि असिद्धि में सम होकर कर्म करने के लिये कहा है।

श्लोक सं 49 दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।

बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फल हेतवः ॥49॥

अन्वय – हे धनंजय ! बुद्धियोगात् कर्म दूरेण अवरम् (अतः त्वम्) बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ हि फल हेतवः कृपणाः (सन्ति)

अनुवाद – हे धनंजय (अर्जुन) बुद्धियोग की दृष्टि से (सकाम) कर्म बहुत ही तुच्छ है, (इसलिये तु) बुद्धियोग की ही शरण की इच्छा कर क्योंकि (कर्म) के फल की इच्छा करने वाले दीन होते हैं।

शब्दार्थ – बुद्धियोगात् – बुद्धि के योग से (अर्थात् निष्काम कर्म योग की दृष्टि से), कर्म – (सकाम) कर्म, दूरेण अवरम् – बहुत ही तुच्छ है, धनंजय – अर्जुन (सम्बोधन), बुद्धौ – बुद्धियोग में समत्व बुद्धियोग में, शरणम् अन्विच्छ – आश्रय की इच्छा कर, फलहेतवः – फल के हेतु से कर्म करने वाले, कृपणाः – (अत्यन्त ही) दीन होते हैं।

भावः – इस श्लोक में सकाम कर्मों को बुद्धियोग की अपेक्षा अत्यन्त नीचा बतलाकर भगवान ने यह भाव दिखलाया है कि सकाम कर्मों का फल नाशवान क्षाणिक सुख की प्राप्ति है। अतः दोनों में दिन और रात की भांति महान अन्तर है। जहां कर्म फल का अर्थ निषिद्ध कर्म नहीं माना जा सकता क्योंकि वे सर्वथा त्याज्य हैं और उन का फल महान दुःखो की प्राप्ति है इसलिये उन की तुलना बुद्धियोग का महत्व दिखलाने के लिये नहीं की जा सकती।

श्लोक सं 50 बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥50॥

अन्वय – (हे धनंजय) इह, बुद्धियुक्तः सुकृत-दुष्कृते उभे (एव) जहाति तस्मात् (त्वम्) योगाय युज्यस्व (यतोहि) योगः कर्मसु कौशलम्।

अनुवाद – (हे अर्जुन), इस संसार में बुद्धि-योगी अच्छे बुरे दोनों ही (प्रकार के कर्मों) को छोड़ देता है (अर्थात् उनमें आसक्ति नहीं रखता है) इस कारण से (तू) योग (समत्वबुद्धियोग) के लिए संलग्न हो जा।

(क्योंकि वस्तुतः) योग ही कर्मों की कुशलता है (अर्थात् समत्वबुद्धियोग से ही किये गये कर्मों में कुशलता प्राप्त होती है, अन्यथा सफलता-असफलता के भय से हम उन कर्मों को कुशलतापूर्वक नहीं कर पाते हैं।)

शब्दार्थ – इह – इस संसार में, इस लोक में, बुद्धियुक्तः – बुद्धियोगी (समत्वबुद्धि से कर्म करने वाला), सुकृत-दुश्कृते – अच्छे (पुण्य) और बुरे (पाप) दोनों ही, उभे – दोनों को, जहाति – छोड़ देता है, त्याग देता है, योगाय युज्यस्व – समत्वबुद्धियोग के लिए तत्पर हो, योगः कर्मसु कौशलम् – समत्वबुद्धियोग ही कर्मों में कुशलता है।

भावः – इस श्लोक में यह भाव दिखलाया गया है कि जन्म जन्मान्तरों में और इस जन्म में किये हुये जितने भी पुण्य कर्म और पाप कर्म संस्कार रूप से अन्तःकरण में संचित रहते हैं उन समस्त कर्मों को समबुद्धि से युक्त कर्मयोगी इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् वर्तमान जन्म में ही वह उन समस्त कर्मों से युक्त हो जाता है। इस का उन कर्मों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता इसलिये उस के कर्म पुनर्जन्म रूप फल नहीं दे सकते क्योंकि निःस्वार्थ भाव से केवल लोकहितार्थ किये हुये कर्मों से उस के समस्त कर्म विलीन हो जाते हैं।

4.5 सारांश

प्रस्तुत पाठ में यह स्पष्ट किया गया है कि जो लोग सांसारिक भोग और ऐश्वर्य में आसक्त रहते हैं, उनकी निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है। इसलिए भगवान् अर्जुन को माध्यम बनाकर उपदेश दे रहे हैं कि अपने योग-क्षेम को चाहने वाला मनुष्य सांसारिक सुखों का त्यागकर आत्मपरायण हो। इसके साथ ही 'निष्काम-कर्म' योग का उपदेश देते हुए भगवान् कहते हैं कि हमारा कर्म करने में ही अधिकार होना चाहिये, फल में नहीं और कर्म न करने में भी हमारी रूचि नहीं होनी चाहिये, क्योंकि आसक्ति को त्यागकर सफलता और असफलता में समान रहकर योग में स्थित होना ही 'समत्व' योग कहलाता है।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या करें।

1. भोगैश्वर्यप्रसक्तानां न विधीयते ।
2. योगस्थः कुरु समत्वं योग उच्यते ।
3. दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फल हेतव ।
4. बुद्धियुक्तो जहातीह कर्मसु कौशलम् ॥50॥

4.7 सहायक ग्रन्थ

1. श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व विवेचनी – गीताप्रेस, गोरखपुर।
3. गीता रहस्य – बाल गंगाधर तिलक।
4. श्रीमद्भगवद्गीता – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।



श्री मद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय
(सप्रसङ्ग व्याख्या एवं भाव-स्पष्ट विवेचन)

- 5.1 शीर्षक
- 5.2 प्रस्तावना
- 5.3 उद्देश्य
- 5.4 विषय सामग्री
- 5.5 सारांश
- 5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 5.7 सहायक ग्रन्थ

5.1 शीर्षक

श्री मद्भगवद्गीता-द्वितीय अध्याय, श्लोक संख्या 51-57 पर्यन्त

5.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में गीता के द्वितीय अध्याय पद्य संख्या 51 से 57 तक के पद्यों की सप्रसंग व्याख्या, शब्दार्थ, भाव, स्पष्ट किया गया है। इन श्लोकों में 'समत्व बुद्धि' योग का वर्णन करने के साथ-साथ 'स्थितप्रज्ञ' व्यक्ति का वर्णन भी किया गया है।

5.3 उद्देश्य

- ❖ पाठकों को 'स्थिर बुद्धि पुरुष' के स्वरूप से परिचित करवाना।
- ❖ 'स्थिर बुद्धि पुरुष' की विविध चेष्टाओं से अवगत करवाना।

5.4 विषय सामग्री

पाठ परिचय प्रस्तुत पाठ में गीता के द्वितीय अध्याय पद्य संख्या 51 से 57 तक के पद्यों की सप्रसंग व्याख्या, शब्दार्थ, भाव, स्पष्ट किया गया है।

श्लोक सं 51 – कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥51॥

अन्वय – हि बुद्धियुक्ताः मनीषिणः कर्मजम् फलम् त्यक्त्वा जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः (सन्तः) अनामयम् पदम् गच्छन्ति।

अनुवाद – क्योंकि बुद्धियोगी ज्ञानी लोग कर्मों से उत्पन्न फल को त्याग कर (परिणाम स्वरूप) जन्म के बन्धन से मुक्त हुये दुःख रहित (परम) पद को प्राप्त होते हैं।

शब्दार्थ – बुद्धियुक्ताः – बुद्धियोगी जन (समत्वबुद्धि वाले लोग) मनीषिणः – मनीषी लोग (ज्ञानी लोग), कर्मजं फलम् – कर्मों से उत्पन्न फल अर्थात् जन्म को, त्यक्त्वा – छोड़कर, त्याग कर, जन्मबन्ध – विनिर्मुक्ताः – जन्म के बन्धन से छूटे हुए, अनामयम् – दुःख (रोग आदि) रहित, पदम् – पद को (अमृत पद, मोक्ष पद को), गच्छन्ति – प्राप्त होते हैं, पहुँचते हैं।

भावः – जहां राग-द्वेष आदि क्लेशों का शुभाशुभ कर्मों का हर्ष शोकादि विकारों का और समस्त दोषों का सर्वथा अभाव है। जो इस प्रकृति और प्रकृति के कार्य से सर्वथा अतीत है जो भगवान से सर्वथा अभिन्न भगवान का परमधाम है जहां पहुंचे हुए मनुष्य वापस नहीं लौटते उस परमधाम का वाचक अनामय पद है। अतः भगवान के परमधाम को प्राप्त हो जाना निर्गुण-निराकार या सगुण-साकार परमात्मा को प्राप्त हो जाना परमगति को प्राप्त हो जाना था अमृतत्व को प्राप्त हो जाना-यह सब एक ही बात है।

श्लोक सं 52 यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥52॥

अन्वय – (हे अर्जुन) यदा ते बुद्धिः मोहकलिलम् व्यतितरिष्यति, तदा (त्वम्) श्रोतव्यस्य च श्रुतस्य निर्वेदम् गन्तासि।

अनुवाद – हे अर्जुन, जब तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल को बिल्कुल तर जाएगी, तब (तू) सुनने योग्य और सुने हुए के वैराग्य को प्राप्त कर जायेगा।

शब्दार्थ – यदा – जब, ते बुद्धिः – तेरी बुद्धि, मोहकलिलम् – मोह (आसक्ति) रूप कलिल (कीचड़) दलदल, व्यतिरिष्यति – विशेष रूप से तर जायेगी, तदा – तब (तू), श्रोतव्यस्य – सुनने योग्य (शास्त्र आदि के), श्रुतस्य – सुने हुए (शास्त्र आदि के), निर्वेदम् – वैराग्य को, गन्तासि – पहुँच जायगा, प्राप्त हो जायगा।

भावः – इस श्लोक में स्वजन वान्धवों के वध की आशङ्का से स्नेहवश अर्जुन के मन जो मोह उत्पन्न हो गया था। जहां मोहकलिल से उसी का लक्ष्य है और इसी मोह कलिल के कारण अर्जुन धर्म सम्मूढ चैता होकर अपना कर्तव्य निश्चय करने में असमर्थ हो गये थे यह मोहकलिल, एक प्रकार का आवरण युक्त मल दोष है। जो बुद्धि को निश्चयभूमितक न पहुँचने देकर अपने में ही फंसाये रखता है।

सत्संग उत्पन्न से विवेक द्वारा नित्य-अनित्य और कर्तव्य-अकर्तव्य का निश्चय करके ममता आसक्ति और कामना के त्यागपूर्वक भगवत्परायण होकर निष्काम भाव से कर्म करते रहने से इस आवरण युक्त मल दोष जो सर्वथा नाश हो जाता है।

श्लोक सं 53 श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥53॥

अन्वय – (अर्जुन), यदा ते श्रुतिविप्रतिपन्ना बुद्धिः समाधौ अचला (च) निश्चला स्थास्यति तदा (त्वम्) योगम् अवाप्स्यसि।

अनुवाद – (हे अर्जुन) जब तेरी (अनेक शास्त्रों और सिद्धान्तों को) सुनने से व्याकुल हुई बुद्धि समाधि (परमात्मा) में अचल (और) स्थिर हुई स्थित हो जाएगी, तब (तू) योग (समत्वबुद्धि) को प्राप्त कर लेगा।

शब्दार्थ – यदा – जब, श्रुतिप्रतिपन्ना – सुनी गयी बातों से व्याकुल हुई, बुद्धिः : बुद्धि, समाधौ – आत्मा में (परमात्मा) में, अचला – अचला – अचल (न चलती हुई), निश्चला – स्थिर, स्थास्यति – ठहर जायेगी, स्थित हो जायेगी, तदा – तब, योगम् – समत्वबुद्धि योग को, अवाप्स्यसि – प्राप्त करेगा।

भावः – इस लोक और परलोक के भोगैश्वर्य और उन की प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में भांति भांति के वचनों को सुनने से बुद्धि में विक्षिप्तता आ जाती है इस के कारण एक निश्चय पर निश्चल रूप से नहीं टिक सकती अभी एक बात को अच्छी समझती है, तो कुछ ही समय

बाद दूसरी बात को अच्छी मानने लगती है ऐसी विक्षिप्त और अनिश्चयात्मिका बुद्धि को जहां श्रुतिविप्रतिपन्ना बुद्धि कहा गया है यह बुद्धि का विक्षेपदोष है।

भाव यह है कि जब तुम्हारी बुद्धि मोह रूप दलदल को सर्वथा पारकर जायेगी तथा तुम इस लोक और परलोक के समस्त लोगों से विरक्त हो जाओगे तुम्हारी बुद्धि परमात्मा में निश्चल ठहर जायेगी। तब तुम परमात्मा को प्राप्त हो जाओगे।

अर्जुन उवाच

श्लोक सं 54 स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत् व्रजेत किम् ॥54॥

अन्वय – हे केशव समाधिस्थस्य (च) स्थितप्रज्ञस्य का भाषा ? किम् प्रभाषेत ? (सः) किम् आसीत् च किम् व्रजेत?

अनुवाद – हे केशव (कृष्ण) समाधि में स्थित (और) स्थितप्रज्ञ (पुरुष) की क्या परिभाषा है ? स्थितधी (पुरुष) कैसे बोलता है, कैसे बैठता (और) कैसे चलता है ?

शब्दार्थः – केशव – विष्णु के अवतार कृष्ण के लिए सम्बोधन है, समाधिस्थस्य – समाधि (परमात्मा) में स्थित होने वाले को, स्थितप्रज्ञस्य – स्थित प्रज्ञा वाले की, स्थितधीः – स्थित बुद्धि वाला (पुरुष), प्रभाषेत – बोलता है (भाषते के स्थान पर प्रयुक्त), आसीत् – बोलता है (आस्ते के स्थान पर प्रयुक्त), व्रजेत – चलता है (व्रजते के स्थान पर प्रयुक्त)।

भावः – अर्जुन भगवान को केशव नाम से सम्बोधित करके यह भाव दिखलाते हैं कि आप समस्त जगत के सृजन, संरक्षण और संहार करने वाले सर्वशक्तिमान साक्षात् सर्वज्ञ परमेश्वर हैं।

पूर्व श्लोक में भगवान ने अर्जुन से यह बात कही थी कि जब तुम्हारी बुद्धि समाधि में अर्थात् परमात्मा में अचल भाव से ठहर जाएगी तब तुम योग को प्राप्त होओगे उसके अनुसार यहां अर्जुन भगवान से इस सिद्ध पुरुष के लक्षण जानना चाहते हैं। जो परमात्मा को प्राप्त कर चुका है। और इस की बुद्धि परमात्मा में सदा के लिये अचल और स्थिर हो गयी है। यही भाव स्पष्ट करने के लिए स्थितप्रज्ञ के साथ समाधिस्थस्य आदि का प्रयोग किया गया है।

श्लोक सं 55 प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥55॥

- अन्वय** – (हे) पार्थ ! यदा (पुरुषः) मनोगतान् सर्वान् कामान् प्रजहाति, तदा आत्मना आत्मनि एव तुष्टः (सः पुरुषः) स्थितप्रज्ञः उच्यते ।
- अनुवाद** – हे पार्थ (अर्जुन) जब (यह पुरुष) मन में आयी हुई सब कामनाओं को भली प्रकार छोड़ देता है, तब आत्मा से आत्मा में ही सन्तुष्ट हुआ (यह पुरुष) 'स्थितप्रज्ञ' कहा जाता है ।
- शब्दार्थ** – पार्थ – अर्जुन (पृथा का पुत्र), यदा – जब, मनोगतान् – मन में आयी हुई, सर्वान् – सब, कामान्– कामनाओं को, प्रजहाति– भली प्रकार (बिल्कुल ही) छोड़ देता है, तदा– तब, आत्मना– आत्मा के द्वारा आत्मनि – (परम) आत्मा में, तुष्टः – तुष्ट हुआ, सन्तुष्ट हुआ, स्थितप्रज्ञः – स्थितप्रज्ञ, उच्यते – कहा जाता है ।
- भावः** – इस लोक या परलोक के किसी भी पदार्थ के संयोग या वियोग की जो किसी भी निमित्त से किसी भी प्रकार की मन्द या तीव्र कामनायें मनुष्य के अन्तःकरण में हुआ करती हैं उन सब का वाचक जहां सर्वान् विशेषण सहित कामान् पद है, इन के वासना, स्पृहा इच्छा और तृष्णा आदि अनेक भेद हैं । इन सब से सदा के लिये सर्वथा रहित हो जाना ही उनका सर्वथा त्याग कर देना है । अन्तःकरण में स्थित समस्त कामनायों का सर्वथा अभाव हो जाने के बाद समस्त दृश्य-जगत में सर्वथा अतीत नित्य शुद्ध बुद्ध परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को प्रत्यक्ष कर के जो उसी में नित्य तृप्त हो जाना है यही आत्मा से आत्मा में सन्तुष्ट रहना है ।
- श्लोक सं 56** दुःखेश्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।56।।
- अन्वय** – (हे पार्थ), दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः (च) सुखेषु विगतस्पृहः, च वीतरागभयक्रोधः मुनिः स्थितधीः उच्यते ।
- अनुवाद** – हे अर्जुन दुःखों से अक्षुब्ध मन वाले और सुखों में समाप्त हुई इच्छा वाले (तथा) विनष्ट हुए राग, भय और क्रोध वाले मुनि को स्थितबुद्धि (स्थितप्रज्ञ) कहा जाता है ।
- शब्दार्थ** – दुःखेषु – दुःखों में, अनुद्विग्नमनाः – जो उद्विग्न मन वाला नहीं हैं अर्थात् अक्षुब्ध मन वाला, सुखेषु – सुखों में, विगतस्पृह – समाप्त हुई इच्छा वाला, वीतरागभयक्रोधः – विनष्ट हुए राग (आसक्ति), भय और क्रोध वाला, मुनि – मुनि (पुरुष), स्थितधीः – स्थितबुद्धि (स्थितप्रज्ञ), उच्यते – कहा जाता है ।
- भावः** – इस श्लोक में स्थिर बुद्धि मनुष्य के अन्तःकरण में उद्वेग का सर्वथा अभाव दिखलाया गया है । अभिप्राय यह है कि जिस की बुद्धि परमात्मा के स्वरूप में अचल स्थिर हो जाती है

उस परमात्मा को प्राप्त हुये महापुरुष को साधारण दुःखों की तो बात ही क्या है, भारी से भारी दुःख भी उस स्थिति से विचलित नहीं कर सकते । शस्त्रों द्वारा शरीर का काटा जाना, सरदी-गरमी, वर्षा और विजली आदि से होने वाली शारीरिक पीड़ा आति उत्कट रोग जनित व्यथा, आकस्मिक वियोग विना कारण ही संसार में महाअपमान हो जाना, इस के सिवा और भी जितने महान दुःखों के कारण हैं वे सब एक साथ उपस्थित होकर भी उस के किञ्चित्मात्र भी उद्वेग नहीं उत्पन्न कर सकते ।

श्लोक सं 57 यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।

नाभिनन्दति न द्वेषि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥57॥

अन्वय – (हे पार्थ), यः (पुरुषः) सर्वत्र अनभिस्नेहः (अतएव) तत्-तत् शुभाशुभम् प्राप्य न अभिनन्दति (च) न द्वेषि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।

अनुवाद – (हे अर्जुन), जो (पुरुष) सब विषयों में आसक्तिरहित है (इसलिये) उस-उस शुभ (अच्छी) या अशुभ (बुरी) (वस्तु) को प्राप्त करके न तो प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उस ही प्रज्ञा प्रतिष्ठित कही गयी है ।

शब्दार्थ – यः – जो, सर्वत्र – सब विषयों में, अनभिस्नेहः – अन-स्नेह वाला है अर्थात् स्नेहरहित है, तत्-तत् – उस-उस, शुभाशुभम् – शुभ और अशुभ को, प्राप्य – प्राप्त करके, न अभिनन्दति- न प्रसन्न होता है, न द्वेषि – न द्वेष करता है, तस्य- उसकी, प्रज्ञा- बुद्धि, प्रतिष्ठिता – प्रतिष्ठित है, स्थित है ।

भावः – इस से स्थिर बुद्धि योगी में अभिस्नेह का अर्थात् भयतापूर्वक होने वाली सांसारिक आसक्ति का सर्वथा अभाव दिखलाया गया है । अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार सांसारिक मनुष्य अपने स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र, और परिवार वालों में ममता और आसक्ति रखते हैं दिन रात उन में मोहित हुये रहते हैं तथा उन के हरेक वचन में उस मोह युक्त स्नेह के भाव टपकते रहते हैं, स्थिर बुद्धि योगी में ऐसा नहीं होता उसका किसी भी प्राणी में ममता और आसक्ति युक्त प्रेम नहीं रहता । इसलिये उस की वाणी भी ममता और आसक्ति के दोष से सर्वथा रहित शुद्ध प्रेममयी होती है आसक्ति ही काम क्रोध आदि सारे विकारों की मूल है । इसलिये आसक्ति के अभाव से अन्य सारे विकारों का अभाव समझ लेना चाहिये ।

5.5 सारांश

प्रस्तुत पाठ में यह बताया गया है कि कर्मों के फल का त्याग करने वाले ज्ञानी लोग जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त हो जाते हैं। अर्जुन के द्वारा 'स्थितप्रज्ञ' व्यक्ति के विषय में पूछे जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति अपने मन की समस्त कामनाओं को भली-भाँति छोड़ देता है और अपनी आत्मा से आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है ऐसा व्यक्ति 'स्थितप्रज्ञ' कहलाता है। 'स्थितप्रज्ञ' व्यक्ति का मन सुख-दुःख, राग-द्वेष, भय, क्रोध आदि से विकृत नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति इच्छित वस्तु को प्राप्त करके न तो प्रसन्न होता है और बुरी वस्तु को प्राप्त करके न ही उससे द्वेष करता है।

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. यदा ते मोहकलिलं श्रुतस्य च।
2. स्थितप्रज्ञस्य का व्रजेत किम्॥
3. प्रजहाति यदा स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
4. यः सर्वत्र तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठता॥

5.7 सहायक ग्रन्थ

1. श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व विवेचनी – गीताप्रेस, गोरखपुर।
3. गीता रहस्य – बाल गंगाधर तिलक।
4. श्रीमद्भगवद्गीता – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
5. श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय), साहित्य भण्डार, मेरठ।



श्री मद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय
(सप्रसङ्ग व्याख्या एवं भाव-स्पष्ट विवेचन)

- 6.1 शीर्षक
- 6.2 प्रस्तावना
- 6.3 उद्देश्य
- 6.4 विषय सामग्री
- 6.5 सारांश
- 6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 6.7 सहायक ग्रन्थ

6.1 शीर्षक

श्री मद्भगवद्गीता-द्वितीय अध्याय श्लोक संख्या 58-64 पर्यन्त

6.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में गीता के द्वितीय अध्याय पद्य संख्या 58 से 64 तक के पद्यों की सप्रसंग व्याख्या, शब्दार्थ, भाव, स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत पाठ में 'स्थितप्रज्ञ' व्यक्ति की परिभाषा स्पष्ट करते हुये भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति कछुए के समान अपनी समस्त इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट लेता है, ऐसा व्यक्ति 'स्थितप्रज्ञ' कहलाता है।

6.3 उद्देश्य

- ❖ छात्रों को कछुए के दृष्टान्त द्वारा 'स्थिर बुद्धि' पुरुष का लक्षण स्पष्ट करवाना।
- ❖ पाठकों को इन्द्रियों का विषयों में लिप्त होने से होने वाली हानि से अवगत करवाना।

6.4 विषय सामग्री

प्रस्तुत पाठ में गीता के द्वितीय अध्याय पद्य संख्या 58 से 64 तक के पद्यों की सप्रसंग व्याख्या, शब्दार्थ, भाव, स्पष्ट किया गया है।

श्लोक सं 58 यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।58।।

अन्वय – (हे पार्थ) च अङ्गानि कूर्मः इव अयम् (पुरुषः) सदा सर्वशः, इन्द्रियार्थेभ्यः इन्द्रियाणि संहरते । (तदा) तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता (उच्यते)।

अनुवाद – (हे अर्जुन), और (अपने) अङ्गों को कछुवे के समान यह (पुरुष) जब सब और से, इन्द्रियों के विषयों से (अपनी) इन्द्रियों को समेट लेता है, (तब) उस (पुरुष) की प्रज्ञा प्रतिष्ठित हुई (कही जाती) है।

शब्दार्थ – च – और, अङ्गानि – (शरीर के) अङ्गों को, कूर्मः इव – कछुवे के समान, कछुवे की भाँति, अयम् – यह मुनि पुरुष, यदा – जब, सर्वशः – सब (और) से, इन्द्रियार्थेभ्यः – इन्द्रियों के विषयों से, इन्द्रियाणि – इन्द्रियों को, संहरते – समेट लेता है, तस्य – उस पुरुष की, प्रतिष्ठिता – प्रतिष्ठित हुई (कही जाती है)।

भावः – श्लोक का भाव इस प्रकार से है कि जिस प्रकार कछुआ अपने समस्त अङ्गों को सब ओर से संकुचित करके स्थिर हो जाता है उसी प्रकार समाधिकाल में जो वश में की हुई समस्त इन्द्रियों की वृत्तियों को इन्द्रियों के समस्त भोगों से हटा लेता है किसी भी इन्द्रिय को किसी भी योग की और आकर्षित न होने देना तथा उन इन्द्रियों में मन और बुद्धि को विचलित करने की शक्ति न रहने देना है। यही कछुयें की भाँति इन्द्रियों के विषयों से हटा लेना। ऊपर से इन्द्रियों के स्थानों को वंद करके स्थूल विषयों से इन्द्रियों को हटा लेने पर भी इन्द्रियों की वृत्तियाँ विषयों की और दौड़ती रहती हैं इसी कारण साधारण मनुष्य स्वप्न में और मनोराज्य में इन्द्रियों के द्वारा सूक्ष्म विषयों का भोग करता रहता है जहां सर्वशः पद का प्रयोग करके इस प्रकार के विषय भोग से भी इन्द्रियों को सर्वथा हटा लेने की बात कही गई है।

श्लोक सं 59 विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।59।।

अन्वय – (हे पार्थ) निराहारस्य देहिनः रसवर्जम् विषयाः विनिवर्तन्ते । (च) परं दृष्ट्वा अस्य (तु) रसः अपि निवर्तते ।

- अनुवाद** – (हे अर्जुन), उपयोग न करने वाले देहधारी के आसक्ति को छोड़कर सभी विषय लौट जाते हैं (किन्तु परमात्मा को देखकर इस (स्थित प्रज्ञ पुरुष) की तो आसक्ति भी लौट जाती है। (अर्थात् उसे तो विषयों में आसक्ति भी नहीं रहती।)
- शब्दार्थ** – निराहारस्य – आहार न करने वाले के अर्थात् विषयों का उपयोग न करने वाले (पुरुष) के, देहिनः – देहधारी के (जीवात्मा के), रसवर्जम् – रस (आसक्ति) को छोड़कर, रस के सिवाय, विषयाः – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि इन्द्रियों के विषय, विनिवर्तन्ते – लौट जाते हैं, उपभोग में आना बन्द हो जाते हैं, परं दृष्ट्वा – परमात्मा (ब्रह्म) को जानकर (देखकर), अस्य– इस स्थितप्रज्ञ का, रसः अपि – (वह) आसक्ति भी, निवर्तते – लौट जाती है अर्थात् उसकी आसक्ति भी समाप्त हो जाती है।
- भावः** – इस से यह भाव दिखलाया गया है कि विषयों का परित्याग कर देने वाला अज्ञानी भी ऊपर से तो कछुयें की भांति अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटा सकता है। किन्तु उस की उन विषयों में आसक्ति बनी रहती है। आसक्ति का नाश नहीं होता इस कारण उस की इन्द्रियों की वृत्तियां विषयों की और दौड़ती रहती है और उस के अन्तकरण को स्थिर नहीं होने देती।
- श्लोक सं 60 यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥60॥**
- अन्वय** – (हे) कौन्तेय ! प्रमाथीनि इन्द्रियाणि यततः अपि विपश्चितः पुरुषस्य मनः प्रसभम् हरन्ति हि।
- अनुवाद** – हे कुन्तीपुत्र (अर्जुन) ये प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियां प्रयास करते हुये भी विद्वान पुरुष के मन को बलपूर्वक हर लेती है।
- शब्दार्थ** – कौन्तेय – कुन्तीपुत्र (अर्जुन), सम्बोधन, प्रमाथीनि – प्रमथन मथने के स्वभाव वाली, इन्द्रियाणि– आंख, नाक, कान आदि इन्द्रियाँ, यततः – यत्न (प्रयास), विपश्चितः – विद्वान के पुरुषस्य – पुरुष के, मनः – मन को, प्रसभम् – बलपूर्वक, हरन्ति – हर लेती है।
- भावः** – जो पुरुष शास्त्रों के श्रवण-मनन से और विवेक विचार विषयों के दोषों को जान लेता है और उन से इन्द्रियों को हटाने का यत्न भी करता है, किन्तु जिस की विषय आसक्ति का नाश नहीं हो सका है। इसी कारण जिस की इन्द्रियां वश में नहीं है ऐसे बुद्धिमान यत्नशील साधक का वाचक जहां यततः और विपश्चित – इन दोनों विशेषणों के सहित पुरुषस्य, पद है इन के सहित अपि, पद का प्रयोग करके जहां यह भाव दिखलाया गया है कि जब ये प्रमथन शील इन्द्रियां विवेकी यत्नशील मनुष्य के मन को भी बलात्कार से विषयों में प्रवृत्त कर देती है।

श्लोक सं 61 तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत् मत्परः।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥61॥

अन्वय – हे पार्थ, (पुरुषः) तानि सर्वाणि (इन्द्रियाणि) संयम्य युक्तः मत्परः आसीत्, हि यस्य इन्द्रियाणि वशे, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता (भवति)।

अनुवाद – (हे अर्जुन) (पुरुष) उन सब इन्द्रियों को नियन्त्रित करें योगी हुआ (और) मेरे परायण हुआ बैठे, क्योंकि जिस (पुरुष) की इन्द्रियाँ वश में होती हैं उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है।

शब्दार्थ – तानि – उनको, सर्वाणि – सबको, संयम्य – भलीप्रकार नियन्त्रण में करके, युक्तः – योगी हुआ, मत्परः – मेरे परायण हुआ, मुझ में ध्यान लगाये रहने वाला, आसीत् – बैठे, अस्य – जिसकी, इन्द्रियाणि – इन्द्रियाँ, वशे – वश में (होती) है, तस्य – प्रजा (बुद्धि), प्रतिष्ठिता – प्रतिष्ठित होती है, अर्थात् वह 'स्थितप्रज्ञ' होता है।

भावः – इसलिये साधक को चाहिये कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे, क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं उसी की बुद्धि स्थिर हो जाती है। अत एव परमात्मा की प्राप्ति चाहने वाले पुरुष को सम्पूर्ण इन्द्रियों को ही भली भाँति वश में करना चाहिये।

श्लोक सं 62 ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥62॥

अन्वय – (हे पार्थ), विषयान् ध्यायतः पुंसः, तेषु सङ्गः उपजायते, सङ्गात् कामः संजायते (च) कामात् क्रोधः अभिजायते।

अनुवाद – (हे अर्जुन) विषयों का ध्यान करते हुए की, पुरुष की उन (विषयों) में आसक्ति हो जाती है (और) आसक्ति से कामना उत्पन्न हो जाती है (और) कामना (में विघ्न पड़ने से) क्रोध उत्पन्न हो जाता है।

शब्दार्थ – विषयान् – इन्द्रियों के विषयों (रूप, रस आदि) को, ध्यायतः – ध्यान करते हुए की, पुंसः – पुरुष की, तेषु – उन (विषयों) में, सङ्गः – आसक्ति, उपजायते – उत्पन्न हो जाती है, सङ्गात् – आसक्ति से, कामः – कामना (उसे प्राप्त करने की इच्छा), संजायते – उत्पन्न हो जाती है, कामात् – कामना (में विघ्न पड़ने) से, क्रोधः – क्रोध, अभिजायते – उत्पन्न हो जाता है।

भावः – इस में यह भाव दिखलाया गया है जिस मनुष्य की भोगों में सुख और रमणीय बुद्धि है, जिसका मन वश में नहीं होता और जो परमात्मा का चिन्तन नहीं करता ऐसे मनुष्य का परमात्मा में प्रेम और उन का आश्रय न रहने के कारण उसके मन द्वार इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करते करते उन विषयों में उस की अत्यन्त आसक्ति हो जाती है। तब फिर उस के हाथ की बात नहीं रहती उस का मन विचलित हो जाता है।

श्लोक सं 63 क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।63।।

अन्वय – क्रोधात् संमोहः भवति, संमोहात् स्मृतिविभ्रमः (भवति) स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाश (भवति) (च) बुद्धिनाशात् (पुरुष) प्रणश्यति।

अनुवाद – (हे अर्जुन) क्रोध से अविवेक उत्पन्न होता है अविवेक से स्मरण शक्ति का नाश हो जाता है, स्मरणशक्ति के नाश से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश होने से (वह पुरुष) नष्ट हो जाता है।

श ष ग ष

शब्दार्थ – क्रोधात् – क्रोध से, संमोहः – अविवेक, मोह, मूढपन, भवति – हो जाता है, संमोहात् – अविवेक से, स्मृतिविभ्रमः – स्मरणशक्ति का नाश, स्मृतिभ्रंशात् – स्मरण शक्ति के नाश से, बुद्धिनाश – बुद्धि का नाश, बुद्धिनाशात् – बुद्धि के नाश से (पुरुष), प्रणश्यति – नष्ट हो जाता है।

भावः – जिस समय मनुष्य के अन्तः करण में क्रोध की वृत्ति जाग्रत होती है उस समय उस के अन्तः करण में विवेक शक्ति का अत्यन्त अभाव हो जाता है। वह कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचा करता क्रोध के वश में होकर जिस कार्य में प्रवृत्त हो जाता है उस के परिणाम का कुछ भी ख्याल नहीं रहता।

जब क्रोध के कारण मनुष्य के अन्तः करण में मूढभाव बढ जाता है तब उस की स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है, उसे यह ध्यान नहीं रहता कि किस मनुष्य के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है। उस की स्मृति छिन्न भिन्न हो जाती है।

श्लोक सं 64 रागद्वेष वियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।64।।

अन्वय – तु रागद्वेषवियुक्तैः आत्मवश्यैः इन्द्रियैः विषयान् चरन् विधेयात्मा प्रसादम् अधिगच्छति ।

- अनुवाद** – किन्तु (हे अर्जुन), राग और द्वेष से हटी हुई (तथा) अपने वश में हुई इन्द्रियों से विषयों को भोगता हुआ, मन को वश में रखने वाला (पुरुष) प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है।
- शब्दार्थ** – राग-द्वेष वियुक्तैः – राग और द्वेष से वियुक्त (हटी हुई, अलग हुई), आत्मवश्यैः – अपने वश में हुई, इन्द्रियैः – (आँख, नाक कान आदि) इन्द्रियों से, विषयान् – विषयों को, चरन् – भोगता हुआ, विधेयात्मा – मन को वश में रखने वाला (पुरुष), प्रसादम् – प्रसन्नता को (स्वच्छता को), अधिगच्छति – प्राप्त हो जाता है।
- भावः** – साधारण मनुष्यों की इन्द्रियाँ स्वतन्त्र होती हैं उन के वश में नहीं होतीं उन इन्द्रियों में राग-द्वेष भरे रहते हैं। इस कारण उन इन्द्रियों के वश होकर भोगों को भोगने वाला मनुष्य उचित-अनुचित का विचार न करके जिस किसी प्रकार से भोग सामग्रियों के संग्रह करने और भोगने की चेष्टा करता है और उन भोगों में राग-द्वेष करके सुखी-दुखी होता रहता है उसे आध्यात्मिक सुख का अनुभव नहीं होता, किन्तु उपयुक्त साधक की इन्द्रियाँ उस के वश में होती हैं और उन में राग-द्वेष का अभाव होता है, इस कारण वह अपने वर्ण, आश्रय और परिस्थितियों के अनुसार योग्यता से प्राप्त हुये भोगों में विना राग-द्वेष के विचरण करता है।

6.5 सारांश

उपर्युक्त पाठ में 'स्थितप्रज्ञ' व्यक्ति के विषय में अर्जुन को समझाते हुये श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस प्रकार कछुआ अपने समस्त अंगों को सब ओर से समेट कर स्थिर हो जाता है, उसी प्रकार समाधिकाल में जो व्यक्ति वश में की हुई अपनी समस्त इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा लेता है, ऐसे व्यक्ति की बुद्धि स्थिर कही गयी है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन इन इन्द्रियों को सब ओर से नियंत्रित करके योगी मेरे परायण हुआ बैठे, क्योंकि जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसी की प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है।

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. यदा संहरते चायं प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
2. यततो ह्यपि हरन्ति प्रसभं मनः ॥
3. तानि सर्वाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
4. क्रोधाद्भवति संमोहः बुद्धिनाशत्प्रणशयति ॥

6.7 सहायक ग्रन्थ

1. श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व विवेचनी – गीताप्रेस, गोरखपुर।
3. गीता रहस्य – बाल गंगाधर तिलक।
4. श्रीमद्भगवद्गीता – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
5. श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय), साहित्य भण्डार, मेरठ।



श्री मद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय
(सप्रसङ्ग व्याख्या एवं भाव-स्पष्ट विवेचन)

- 7.1 शीर्षक
- 7.2 प्रस्तावना
- 7.3 उद्देश्य
- 7.4 विषय सामग्री
- 7.5 सारांश
- 7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 7.7 सहायक ग्रन्थ

7.1 शीर्षक

श्री मद्भगवद्गीता-द्वितीय अध्याय, श्लोक संख्या 65-72 पर्यन्त

7.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में गीता के द्वितीय अध्याय पद्य संख्या 65 से 72 तक के पद्यों की सप्रसंग व्याख्या, शब्दार्थ, भाव, स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत श्लोकों में योगी व्यक्ति की दशा का वर्णन करते हुये कहा गया है कि जो पुरुष अपनी सभी कामनाओं का परित्याग कर ममतारहित हुआ, अहंकार रहित हुआ तथा स्पृहरहित हुआ संसार में विचरण करता है, वही व्यक्ति वास्तविक शान्ति को प्राप्त कर सकता है और यही ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है।

7.3 उद्देश्य

- ❖ पाठकों को इन्द्रियों को नियंत्रित करने से होने वाले लाभ बतलाना।

❖ ब्राह्मी-स्थिति से पाठकों को अवगत करवाना।

7.4 विषय सामग्री

प्रस्तुत पाठ में गीता के द्वितीय अध्याय पद्य संख्या 65 से 72 तक के पद्यों की सप्रसंग व्याख्या, शब्दार्थ, भाव, स्पष्ट किया गया है।

श्लोक सं 65 प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥65॥

अन्वय – प्रसादे, अस्य सर्वदुःखानाम् हानिः उपजायते (तदा) प्रसन्नचेतसः (अस्य) बुद्धिः आशु पर्यवतिष्ठते हि।

अनुवाद – (और) प्रसन्न होने पर इस (पुरुष) के सब दुःखों की क्षति हो जाती है (तब) प्रसन्नचित्त वाले (इस पुरुष) की बुद्धि (प्रज्ञा) शीघ्र ही सब प्रकार से स्थित हो जाती है।

शब्दार्थ – प्रसादे – प्रसन्न होने पर, स्वच्छ होने पर, अस्य – इसके, सर्वदुःखानाम् – सब दुःखों की, हानिः- क्षति, विनाश, अभाव, उपजायते – हो जाती है, प्रसन्नचेतसः – प्रसन्नचित्त वाले की, बुद्धिः – प्रज्ञा (बुद्धि), आशु – शीघ्र, पर्यवतिष्ठते – सब प्रकार से स्थित हो जाती है।

भावः – पापों के कारण ही मनुष्य को दुःख होता है और कर्मयोग के साधन से पापों का नाश होकर अन्तःकरण विशुद्ध हो जाता है तथा शुद्ध अन्तःकरण में ही उपयुक्त सात्त्विक प्रसन्नता होती है। इसलिये सात्त्विक प्रसन्नता से सारे दुःखों का अभाव होता है।

श्लोक सं 66 नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।

न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥66॥

अन्वय – हे पार्थ अयुक्तस्य पुरुषस्य बुद्धिः नास्ति अयुक्तस्य भावना अपि नास्ति । च अभावयतः शान्ति न अस्ति (तत) अशान्तस्य सुखम् कुतः।

अनुवाद – हे अर्जुन अयोगी पुरुष को बुद्धि (ज्ञान) प्राप्त नहीं होती (साथ ही) अयोगी को भावना भी प्राप्त नहीं होती और भावना रहित होते हुए को शान्ति नहीं मिलती है (इस कारण से) अशान्त (पुरुष) को सुख (भी) कहाँ से (मिलेगा)। अर्थात् उसे सुख नहीं मिल सकता।

शब्दार्थ – अयुक्तस्य – अयोगी को युक्त का अर्थ योगी होता है, बुद्धि – प्रज्ञा, नास्ति – नहीं होती है, भावना – भावना (आत्मचिन्तन), अभावयतः – भावना रहित होते हुए को, शान्ति – शान्ति, अशान्तस्य – अशान्त, जो शान्ति वाला नहीं है, कुतः – कहाँ से ? किस प्रकार से ?

भाव: — न जीते हुये मन और इन्द्रियों वाले पुरुष में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्य के अन्तःकरण में भावना भी नहीं होती तथा भावना हीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और शान्ति रहित मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है।

इस से यह भाव दिखलाया गया है कि चित्त में शान्ति का प्रादुर्भाव हुये बिना कहीं किसी भी अवस्था में किसी भी उपाय से, मनुष्य को सच्चा सुख नहीं मिलता। विषय और इन्द्रियों के संयोग में तथा निद्रा आलस्य और प्रमाद में भ्रम से जो सुख की प्रतीति होती है वह वास्तव में सुख नहीं है वह तो दुःख का हेतु होने से वस्तुतः दुःख ही हैं।

श्लोक सं 67 इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधायते।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।।67।।

अन्वय — हे पार्थ विषयान् चरताम् इन्द्रियाणाम् यत् मनः अनुविधीयते, तत् अस्य प्रज्ञाम्, वायुः अम्भसि नावम् इव हरति।

अनुवाद — हे अर्जुन विषयों को चरती हुई इन्द्रियों का जब मन अनुसरण करता है तो (वह मन) इस साधक पुरुष की बुद्धि को उसी प्रकार हर लेता है, जैसे जल में बहती हुई नाव को वायु हर लेता है।

शब्दार्थ — विषयान् — इन्द्रियों के विषयों — रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द को, चरताम् — चरती हुई का, उपभोग करती हुई का, इन्द्रियाणाम् — इन्द्रियों का, यत् — जो (जिस कारण से), मनः — मन (अन्तःकरण), अनुविधीयते — अनुसरण करता है, तत् — तो (उस कारण से), अस्य — इस (अयोगी-साधक पुरुष) की, प्रज्ञाम् — बुद्धि को, वायुः — पवन, अम्भसि — जल में, नावम् — नौका को, इव — जैसे, हरति — हर लेता है।

भाव: — दृष्टान्त में नौका के स्थान में बुद्धि है वायु के स्थान में जिस के साथ मन रहता है वह इन्द्रियां हैं जलाशय के स्थान में संसाररूप समुद्र है और जल के स्थान में शब्दादि समस्त विषयों का समुदाय है जल में अपने गन्तव्य स्थान की ओर जाती हुई नौका को प्रवल वायु दो प्रकार से विचलित करती है, या तो उसे पथभ्रष्ट करके जल की भीषण तरङ्गों में भटकाती है या अगाध जल में डुबो देती है किन्तु यदि कोई चतुर मल्लाह इस वायु की क्रिया को अपने अनुकूल बना लेता है तो फिर वह वायु उस नौका को पथभ्रष्ट नहीं कर सकती। बल्कि उसे गन्तव्य स्थान पर पहुंचाने में सहायता करती है।

श्लोक सं 68 तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।68।।

- अन्वय** – तस्मात्, (हे) महाबाहो ! यस्य इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थभ्यः सर्वशः निगृहीतानि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता (भवति)।
- अनुवाद** – उस कारण से हे माहवाहो (अर्जुन) जिस पुरुष की इन्द्रियां इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार से निगृहीत (वश में की गई) हैं, उस पुरुष की प्रज्ञा प्रतिष्ठित है। अर्थात् वह स्थितप्रज्ञ है।
- शब्दार्थ** – तस्मात् – महाबाहु अर्जुन, यस्य – जिस (पुरुष) की, इन्द्रियाणि – इन्द्रियाँ, इन्द्रियार्थभ्यः – इन्द्रियों के अर्थों (विषयों) से, सर्वशः – सब प्रकार से, निगृहीतानि – निगृहीत हैं, वश में की हुई हैं, तस्य– उस (पुरुष) की, प्रज्ञा – बुद्धि, प्रतिष्ठिता – प्रतिष्ठित है।
- भावः** – जिस की भुजायें लंबी मजबूत और बलिष्ठ हो उसे महाबाहु कहते हैं, यह सम्बोधन शूरवीरता का द्योतक है जहां इस सम्बोधन का प्रयोग करके भगवान ने यह भाव दिखलाया है कि तुम बड़े शूरवीर हो अत एव इन्द्रियों और मन को वश में कर लेना तुम्हारे लिये कोई बड़ी बात नहीं। इस में यही भी भाव है कि जिस की मन सहित समस्त इन्द्रियां उपयुक्त प्रकार के वश में की हुई उसी की बुद्धि स्थिर है, जिसके मन और इन्द्रियाँ वश में नहीं है। उस की बुद्धि स्थिर नहीं रह सकती।

श्लोक सं 69 या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

- अन्वय** – सर्वभूतानाम् या निशाः (भवति) तस्याम् संयमी जागर्ति, च यस्याम् भूतानि जाग्रति, पश्यतः मुनेः सा निशा (भवति)।
- अनुवाद** – योगी और सामान्य प्राणियों में अन्तर का कथन है कि (हे अर्जुन) सभी प्राणियों के लिये जो रात्रि होती है, उस में संयमी (जितेन्द्रिया) पुरुष जागता रहता है और जिस (रात्रि) में प्राणी जागते हैं देखते हुये (अर्थात् ज्ञानी पुरुष) मुनि के लिये वह रात्रि होती है। अर्थात् सांसारिक पदार्थों का जो मोह सामान्य लोगों के लिये सुख देने वाली रात्रि के समान हैं, संयमी पुरुष उस से सावधान रहकर वचता रहता है।
- शब्दार्थ** – सर्वभूतानाम् – सब प्राणियों के लिये, या – जो, निशा– रात्रि होती है, तस्मात् – उस में, संयमी– जितेन्द्रिय पुरुष, जागर्ति – जागता है, यस्याम् – जिस (रात्रि) में, भूतानि – प्राणी (बहुवचन), जाग्रति – जागते हैं, पश्यतः – देखते हुए, मुनेः – मुनि के लिए, सा–वह, निशा – रात्रि (होती है)।
- भावः** – अज्ञानी और ज्ञानियों के अनुभव में रात और दिन के सदृश अत्यन्त विलक्षणता है। यह भाव दिखलाने के लिये रात्रि के रूप से साधारण अज्ञानी मनष्यों की और ज्ञानी की स्थिति का वर्णन किया गया

है । इसलिये जहां रात्रि का अर्थ सूर्यास्त के बाद होने वाली रात्रि नहीं है । यही रात्रि परमात्मा को प्राप्त संयमी पुरुष के लिये दिन के समान है। स्थित प्रज्ञ पुरुष का जो उस परमात्मा के स्वरूप को प्रत्यक्ष कर के निरन्तर उसी में स्थित रहता है यही उस का उस सम्पूर्ण प्राणियों की रात्रि में जागना है।

श्लोक सं 70 आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम् समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।70।।

अन्वय – यद्वत् आपूर्यमाणम्, अचलप्रतिष्ठम् आपः प्रविशन्ति, तद्वत् यत् (पुरुषम्) सर्वे कामाः प्रविशन्ति, सः (पुरुषः) शान्तिम् आप्नोति, काम-कामी शान्तिम् न (प्राप्नोति)।

अनुवाद – जिस प्रकार, सब ओर से भरे जाते हुए अचल स्थिति वाले सागर में (चारों ओर से) जल प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार जिस (पुरुष) में सभी कामनायें प्रवेश कर जाती हैं (अर्थात् समाकर विलीन हो जाती हैं) वह (पुरुष) शान्ति को प्राप्त करता है (उससे भिन्न) कामनाओं की कामना करने वाला (तो शान्ति को प्राप्त) नहीं करता है।

शब्दार्थ – यद्वत् – जिस प्रकार, आपूर्यमाणम् – सब ओर से भरे जाते हुए, अचलप्रतिष्ठम् – अचल प्रतिष्ठा वाले, समुद्रम् – सागर, आपः – जल (बहुवचन है), प्रविशन्ति- प्रवेश कर जाते हैं, समा जाते हैं, तद्वत् – उसी प्रकार, यम् – जिस पुरुष में, कामाः – कामनाएँ, वासनाएँ, इच्छाएँ, प्रविशन्ति – प्रवेश कर जाती हैं, सः – वह (पुरुष), शान्तिम् – शान्ति को, प्राप्नोति – प्राप्त कर लेता है, कामकामी – कामनाओं की कामना करने वाला, न – नहीं।

भावः – अतः समुद्र की उपमा से यह भाव जानना चाहिये कि जिस प्रकार समुद्र (आपूर्णभागम्) यानि अथाह जल से परिपूर्ण हो रहा है उसी प्रकार स्थित प्रज्ञ अनन्त आनन्द से परिपूर्ण है। जैसे समुद्र को जल की आवश्यकता नहीं होती वैसे ही स्थित प्रज्ञ पुरुष को भी किसी सांसारिक सुख भोग की तनिक मात्र भी आवश्यकता नहीं, वह सर्वथा आप्तकाम है। जिस प्रकार समुद्र की स्थिति अचल है भारी से भारी आंधी तुफान आने पर नाना प्रकार से नदियों के जल प्रवाह उस में प्रविष्ट होने पर भी वह अपनी स्थिति से विचलित नहीं होता। उसी प्रकार परमात्मा के स्वरूप में स्थित योगी की स्थिति भी सर्वथा अचल होती है। वह परमात्मा में नित्य निरन्तर अटल और एकरस स्थित रहता है।

श्लोक सं 71 विहाय कामान्यः सर्वान्पुसांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।71।।

अन्वय – यः पुमान् सर्वान् कामान् बिहाय निर्ममः, निरहंकार निस्पृहः चरति, सः शान्तिम् अधिगच्छति।

- अनुवाद** – जो पुरुष सब कामनाओं को छोड़कर ममता रहित हुआ अहंकार रहित हुआ और स्पृहा रहित हुआ संसार में विचरण करता है संसार का (उपयोग करता है) वह शान्ति को प्राप्त होता है।
- शब्दार्थ** – यः पुमान् – जो पुरुष, सर्वान् – सब, कामान् – कामनाओं को, विहाय – छोड़कर, निर्ममः – ममता रहित हुआ, निरहंकारः – अहंकार रहित हुआ, निस्पृहः – स्पृहा रहित हुआ, चरति – विचरण करता है, (उपभोग करता है), सः – वह (पुरुष), शान्तिम् – शान्ति को, अधिगच्छति – प्राप्त होता है।
- भावः** – जहां पूर्ण शान्ति को प्राप्त सिद्ध पुरुष का वर्णन है इसलिये उसे निष्काम और निःस्पृह के साथ ही निर्भय और निरहंकार भी बतलाया गया है क्योंकि अधिकांश में निष्काम और निःस्पृह होने पर भी यदि किसी पुरुष में ममता और अहंकार रहते हैं तो वह सिद्ध पुरुष नहीं हैं। जो मनुष्य निष्काम निःस्पृह एवं निर्मम होने पर भी अहंकार रहित नहीं है वह भी सिद्ध नहीं है। अहंकार नाश से ही सबका नाश है, जब तक कारण रूप अहंकार बना है। तब तक कामना, स्पृहा, और ममता भी किसी न किसी रूप में रह ही सकती है। और जब तक किंचितमात्र भी कामना स्पृहा, ममता और अहंकार है तब तक पूर्ण शान्ति की प्राप्ति नहीं होती, जहां शान्तिम आछिगच्छति वाक्य से भी पूर्ण शान्ति का ही बात सिद्ध होती है। इस प्रकार पूर्ण और नित्य शान्ति ममता और अहंकार के रहते कभी प्राप्त नहीं हो सकती।

श्लोक सं 72 एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।

स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥72॥

- अन्वय** – हे पार्थ एषा ब्राह्मी स्थिति एनाम् प्राप्य (पुरुषः) न विमुह्यति (अपितु) अन्तकाले अपि अस्याम् स्थित्वा ब्रह्मनिर्वाणम् ऋच्छति।
- अनुवाद** – हे (अर्जुन) यह (मेरे द्वारा कही गयी) ब्रह्म-प्राप्ति की दशा है इस को प्राप्त करके पुरुष विमूढ नहीं होता है (अपितु) अन्तकाल में भी इस में स्थित रहकर ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर ब्रह्मानन्द को प्राप्त करता है।
- शब्दार्थ** – पार्थ-पृथा का पुत्र, सम्बोधन है। अर्थात् हे अर्जुन, एषा – यह (मेरे द्वारा कही गयी), ब्राह्मी – ब्रह्म-प्राप्ति की, स्थितिः – दशा है, एनाम् – इस (दशा) को, प्राप्य –प्राप्त करके, न विमुह्यति – विमूढ नहीं होती है, मोह में नहीं फंसता है, अन्तकाले – अन्तिम अवस्था (वृद्धावस्था) में, अपि – भी, अस्याम् – इस में, स्थित्वा – स्थित होकर, ब्रह्मनिर्वाणम् – ब्रह्म-सम्बन्धी निर्वाण (मोक्ष) का, ऋच्छति – प्राप्त करता है।
- भावः** – उस से यह भाव दिखलाया गया है कि ब्रह्म क्या है ईश्वर क्या है, संसार क्या है, माया क्या है, इन का परस्पर क्या सम्बन्ध है, मैं कौन हूँ कहां से आया हूँ – आदि विषयों का यथार्थ

ज्ञान होना ही मोह है, यह मोह जीव को अनादिकाल से है। इसी कारण संसार चक्र में धूम रहा है। पर जब अहंता, ममता, आसक्ति और कामना से रहित होकर के उपर्युक्त ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेता है तब उस का यह अनादि सिद्ध मोह समूल नष्ट हो जाता है अत एव फिर उस की इस संसार में उत्पत्ति नहीं होती ।

7.5 सारांश

उपर्युक्त पाठ में भगवान् श्रीकृष्ण योगी पुरुषों द्वारा प्राप्त की जाने वाली ब्रह्मानन्द-प्राप्ति की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति अपनी सभी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा कर अपने वश में कर लेता है, उसी व्यक्ति की बुद्धि स्थिर होती है और वही व्यक्ति 'ब्राह्मी स्थिति' को प्राप्त कर सकता है और ऐसे व्यक्ति की सभी इच्छायें समाप्त हो जाती हैं। इसके विपरीत कामनाओं की कामना करने वाला व्यक्ति कभी भी शांति को प्राप्त नहीं कर सकता है। जिस साधक पुरुष की इन्द्रियाँ विषयों में विचरण करती हैं, और जब मन उन इन्द्रियों का अनुसरण करता है, तो वह साधक पुरुष की बुद्धि को उसी प्रकार हर लेता है, जैसे जल में बहती हुई नाव को वायु हर लेती है। अतः ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिये मन सहित सभी इन्द्रियों पर नियंत्रण आवश्यक है।

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रसादे सर्वदुःखानां पर्यवतिष्ठते॥
2. इन्द्रियाणां हि वायुर्नावमिवाम्भसि॥
3. तस्माद्यस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥
4. आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम् न कामकामी॥

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. **द्वितीय अध्याय में परन्तपः किस के लिये प्रयोग हुआ।**
 (क) अर्जुन (ख) श्री कृष्ण (ग) संजय
2. **हृषिकेश सम्बोधन किस के लिये प्रयोग हुआ ।**
 (क) श्री कृष्ण (ख) अर्जुन (ग) संजय
3. **कौन्तेय शब्द किस के लिये प्रयोग हुआ ।**
 (क) श्री कृष्ण (ख) अर्जुन (ग) दुर्योधन

4. गीता में प्राणी की तुलना किस से की गई है ।
 (क) वृक्ष (ख) पुराने वस्त्र (ग) भवन
5. नाशवान क्या है ।
 (क) आत्मा (ख) शरीर (ग) विद्या
6. गीता के अनुसार व्यक्ति का अधिकार क्या है ।
 (क) कर्म करना (ख) कर्तव्य से विमुख होना (ग) धन अर्जित करना ।
7. कर्म के प्रति मनुष्य की क्या भावना है ।
 (क) सकाम (ख) निष्काम (ग) कपट करना
8. सकाम कर्म को क्या माना गया ।
 (क) उच्च कोटि का (ख) मध्यम श्रेणी का (ग) निम्न श्रेणी का
9. स्थित प्रज्ञः किसे कहते हैं
 (क) जो सुख दुख में समान रहें (ख) जो अपनी बुद्धि से काम न ले
 (ग) जो विचार सब पर थोपे
10. क्रोध से क्या उत्पन्न होता है
 (क) मूढ भाव (ख) मैत्री भाव (ग) प्रेम भाव
11. भगवद्गीता के अध्यायों की संख्या कितनी हैं
 (क) तेरह (ख) अठारह (ग) सोलह
12. इन्द्रियों को वश में करने की तुलना किस के साथ की गई है ।
 (क) मेंढक (ख) चूहा (ग) कछुआ
13.कर्मसु कौशलम् का रिक्त स्थान भरो
 (क) रोगः (ख) भोगः (ग) योगः
14. लाभ-हानि जय-पराजय के विषय में समभाव रखकर कर्म करना क्या कहलाता है
 (क) कर्म योग (ख) ज्ञान योग (ग) समत्वयोग

15. अर्जुन युद्ध क्यों नहीं करना चाहता
 (क) उसे युद्ध से डर लगता था (ख) वह अपने बन्धुओं को नहीं मारना चाहता
 (ग) उस के पास शस्त्र नहीं थे ।
16. बुद्धियुक्ता किस बुद्धि से अभिप्राय है
 (क) समत्वबुद्धि (ख) स्थित प्रज्ञः (ग) स्थिर बुद्धि
17. अर्जुन की बुद्धि किस मोह में फसी थी
 (क) दल दल (ख) सम्बन्धियों के पक्ष में (ग) लोभ में
18. केशव शब्द क्या अभिप्राय है।
 (क) अर्जुन (ख) बलराम (ग) श्री कृष्ण
19. पार्थ शब्द का क्या अर्थ है
 (क) मिट्टी का पुत्र (ख) युधिष्ठिर का पुत्र (ग) पृथा का पुत्र
20. उच्यते धातु किस लकार से हैं।
 (क) लङ् (ख) लृट् (ग) लटलकार
21. प्रज्ञा शब्द का अर्थ है
 (क) द्वेष करना (ख) शुभ और अशुभ (ग) बुद्धि
22. अङ्गानि शब्द में कौन सा लिङ्ग है।
 (क) पुल्लिङ्ग (ख) स्त्रीलिङ्ग (ग) नपुंसकलिङ्ग
23. देहिनः शब्द किस विभक्ति का है
 (क) चतुर्थी एक वचन (ख) द्वितीय द्वि वचन (ग) षष्ठी एक वचन
24. विषया – शब्द किस का अभिप्राय है
 (क) देह का (ख) इन्द्रियों का (ग) शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध का
25. कर्मों में कुशलता पाना क्या कहलाता है
 (क) भोग (ख) संयोग (ग) योग

26. रसः अपि किस का अभिप्राय है
 (क) स्वाद का (ख) काव्य रस (ग) आसक्ति का
27. विपश्चितः, कौन सी विभक्ति है
 (क) प्रथम एक वचन (ख) तृतीय बहुवचन (ग) षष्ठी एक वचन
28. 'मनः' कौन सी विभक्ति हैं
 (क) पंचमी एक वचन (ख) चतुर्थी बहुवचन (ग) द्वितीय एक वचन
29. आसक्ति से क्या उत्पन्न होता है ।
 (क) कामना (ख) क्रोध (ग) मोहः
30. क्रोध से क्या उत्पन्न होता है
 (क) संमोह (ख) काम (ग) अविवेक
31. 'प्रणश्यति' कौन सी विभक्ति हैं
 (क) प्रथमा (ख) तृतीय (ग) प्रथम पुरुष एकवचन
32. 'प्रसन्नचेतसः' क्या अभिप्राय है ।
 (क) अपने वश मे (ख) भोगता हुआ (ग) प्रसन्न चित्त वाले
33. किस से आरम्भ अर्थात् बीज का नाश नहीं होता
 (क) बुद्धि योग (ख) ज्ञान योग (ग) कर्म योग
34. कर्मफल के हेतु बनने वाले प्राणी क्या होते हैं
 (क) विद्वान् (ख) दीन (ग) उत्तम
35. कर्म करने के प्रति व्यक्ति की क्या भावना होती है
 (क) सकाम (ख) निष्काम (ग) कष्ट युक्त
36. अशान्त पुरुष से क्या मिलता
 (क) शान्ति (ख) दुःख (ग) सुख
37. 'अयुक्तस्य' शब्द का क्या अर्थ है
 (क) भोगी (ख) योगी (ग) ज्ञानी

38. बहती हुई नाव को कौन डराता है
 (क) आकाश (ख) जल (ग) वायु
39. 'अम्भसि' कौन सी विभक्ति है
 (क) पंचमी एक वचन (ख) द्वितीय बहुवचन (ग) सप्तमी विभक्ति एक वचन
40. महावाहो, किस को सम्बोधित किया गया है
 (क) श्री कृष्ण (ख) युधिष्ठिर को (ग) अर्जुन को
41. 'निगृहीतानि' कौन सा लिङ्ग है
 (क) नपुंसकलिङ्ग (ख) पुल्लिङ्ग (ग) स्त्रीलिङ्ग
42. 'मुनेः' शब्द की कौन सी विभक्ति है
 (क) पंचमी एकवचन (ख) द्वितीय बहुवचन (ग) षष्ठी एक वचन
43. शक्ति किस व्यक्ति को मिलती है
 (क) कामानाओं वाले को (ख) वासनायों वाले को
 (ग) आसक्ति रहित पुरुष को
44. महाभारत के अनुसार गीता क्या है
 (क) सर्वशास्त्रमयी (ख) ज्ञान से रहित (ग) कामनाओं से परिपूर्ण
45. मोक्ष प्राप्ति के बाद क्या प्राप्त होता है
 (क) आनन्द (ख) धन की प्राप्ति (ग) ब्रह्मानन्द की प्राप्ति

7.7 सहायक ग्रन्थ

1. श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व विवेचनी – गीताप्रेस, गोरखपुर।
3. गीता रहस्य – बाल गंगाधर तिलक।
4. श्रीमद्भगवद्गीता – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
5. श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय), साहित्य भण्डार, मेरठ।

षड्वेदांगों का सामान्य परिचय –

1. शिक्षा, 2. कल्प

- 8.1 शीर्षक
- 8.2 प्रस्तावना
- 8.3 उद्देश्य
- 8.4 विषय सामग्री
- 8.5 सारांश
- 8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 8.7 सहायक ग्रन्थ

8.1 शीर्षक

षड्वेदांगों का सामान्य परिचय – 1. शिक्षा, 2. कल्प

8.2 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य का यह विभाग, वेदों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के कारण ही वेदांग कहलाता है। मन्त्र-संहिताओं और ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद कहा जाता है और उनके अध्ययन में सहायक शास्त्र – शिक्षा, निरुक्त, कल्प, व्याकरण, छन्दस् और ज्योतिष् को वेदाङ्ग कहा जाता है।

वेद का मूलपाठ अत्यधिक पवित्र है, उसमें परिवर्तन न हो, उच्चारण शुद्ध बना रहे, और वेद मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान ठीक-ठीक हो जाय-इसके लिये वेदांग-साहित्य का आविर्भाव हुआ है।

वेदांग-साहित्य में प्रायःसूत्रशैली को अपनाया गया है। अतः कुछ विद्वानों ने इस 'सूत्र-साहित्य' भी कहा है। पाश्चात्य विद्वान् कीजी (kaegi) का यह कथन, इस दृष्टि से यहाँ उद्धरण-योग्य है-

“The third and youngest stage of Vedic literature is the Vedang, also called Sutra, “ (Life in Ancient India)

अर्थात् वैदिक साहित्य में, सबसे बाद में होने वाली रचनाएँ वेदांग हैं, उन्हें 'सूत्र' भी कहते हैं। रचनाक्रम की दृष्टि से इनका तीसरा स्थान है।

जैसा कि ऊपर भी संकेत किया जा चुका है, इन रचनाओं को वेदांग इसलिये कहा जाता है, क्योंकि ये वेद के अध्ययन में पूर्णरूप से सहायक हैं। उदाहरण के लिए—

- (1) वेद-मन्त्रों के शुद्ध पाठ में शिक्षा नामक वेदांग अत्यधिक सहायता करता है।
- (2) वेद-मन्त्रों के कर्मकाण्डीय और यज्ञीय अनुष्ठान के ज्ञान के लिए 'कल्प' नामक वेदाङ्ग का महत्त्व है।
- (3) वेद-मन्त्रों में प्रयुक्त पदों के शुद्ध स्वरूप (प्रकृति-प्रत्यय) के ज्ञान के लिए व्याकरण वेदांग उपयोगी है।
- (4) वेदों-मन्त्रों में आये वैदिक पदों (शब्दों) के अर्थ का ज्ञान कराने में 'निरुक्त' नामक वेदांग हमारी सहायता करता है।
- (5) वैदिक मन्त्रों में प्रयुक्त छन्दों के ज्ञान के लिए छन्दो वेदांग का महत्त्व है। तथा
- (6) यज्ञ और अनुष्ठान आदि विभिन्न क्रियाओं के लिए उपयुक्त काल और मुहूर्त का ज्ञान कराने में ज्योतिष वेदाङ्ग हमारी सहायता करता है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी वेदाङ्ग वेद के अध्ययन आदि में हमारी अत्यधिक सहायता करते हैं।

वेदांग-संख्या और नाम

ये वेदाङ्ग छह हैं तथा इनके नाम इस प्रकार हैं—

1. शिक्षा,
2. कल्प
3. व्याकरण
4. निरुक्त
5. छन्दस्
6. ज्योतिष

इन छहों वेदांगों को भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. कर्मकाण्ड-सम्बन्धी

जैसे-कल्प वेदांग और ज्योतिष वेदाङ्ग।

2. वेदपाठ-सम्बन्धी

जैसे-शिक्षा वेदांग, व्याकरण वेदांग निरुक्त वेदांग और छन्दोवेदांग ।

उपर्युक्त दोनों वर्गों वाले छः वेदांग में 'कल्प' नामक वेदांग का अपना विशिष्ट स्थान है और इस विविधता का कारण यह है कि वेद की प्रत्येक शाखा के अपने-अपने पृथक्-पृथक् 'कल्पसूत्र' भी उपलब्ध होते हैं।

अन्य वेदांग से 'कल्प' वेदाङ्ग की भिन्नता इस बात में है कि शेष वेदाङ्ग-शिक्षा, व्याकरण और निरुक्त आदि में, जहाँ वेदों की सभी शाखाओं से सम्बन्धित सामग्री सम्मिलित रूप में मिलती है वहाँ कल्पसूत्रों में केवल अपनी शाखा से ही सम्बन्धित सामग्री मिलती है।

8.3 उद्देश्य

इस खण्ड में वेदाङ्गों के विषय की जानकारी दी गयी है। वेदाङ्ग वे सहायक तत्त्व हैं जिनसे वेदों को समझने और उनके कर्मकाण्ड के सम्पादन में सहायता प्राप्त होती है। हमारा आपस के भावों के संप्रेषण की शक्ति शब्दों में ही छिपी हुई है। इसी से सारा मानव समाज एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। अतः शब्द हमारे पारस्परिक व्यवहार का एक प्रमुख अंग है। वेद हमारी भारतीय संस्कृति, धर्म, साहित्य, दर्शन, सदाचार तथा ज्ञान-विज्ञान के मूल है। इन सबकी जानकारी देना ही वेदों का प्रमुख उद्देश्य है क्योंकि जितनी भी धारणाएँ, तत्त्व, सिद्धान्त हैं, वे सब जहाँ वेदों से ही पल्लवित, पुष्पित और फलित हुए हैं, तभी तो वैदिक वाङ्मय का विशाल वट-वृक्ष-वेदों की ही मूल भावना के आधार पर ही फूला-फला है या वेदों के अर्थों को समझने-समझाने के लिए ही हरा-भरा हुआ है। वेदाङ्गों को पढ़े बिना वेदों का अध्ययन अधूरा ही है। इस ज्ञान को पाठकों के मस्तिष्क तक पहुँचाना और वेदों के प्रति अभिरुचि जाग्रत करना ही मुख्य उद्देश्य है।

8.4 विषय सामग्री

शिक्षावेदाङ्ग

वेदाङ्गों में, शिक्षा वेदाङ्ग का स्थान महत्त्वपूर्ण है। पुरुष के अगड़ों से तुलना करते हुए, शिक्षा वेदाङ्ग को, वेदरूपी पुरुष की घ्राणेन्द्रिय (नासिका) कहा जाता है-

“शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य”

वेदों के भाष्यकार आचार्य सायण ने अपने ग्रन्थ 'ऋग्वेद-भाष्यभूमिक' में शिक्षा की परिभाषा इस प्रकार है-

“स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारों यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा”

अर्थात् जिस (वेदाङ्ग) में स्वर और वर्ण आदि के उच्चारण की रीति का उपदेश दिया जाता है, वह शिक्षा (वेदाङ्ग) है।

अतः स्पष्ट है कि वेद का पाठ में उच्चारण के महत्त्व को स्वीकार करके ही शिक्षा वेदाङ्ग का आविर्भाव हुआ है। स्वयं, शिक्षा-ग्रन्थों में भी वेदपाठ के उच्चारण की शुद्धता के महत्त्व को इस प्रकार प्रकट किया गया है।

“दृष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो व
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोश्पराधात्।।”

—पाणिनीय शिक्षा, श्लोक ५२।।

अर्थात् वेदपाठ में स्वर के कारण से दृष्ट (अशुद्ध) उच्चारण वाला शब्द, मिथ्यारूप में प्रयुक्त होने के कारण अपने प्रसिद्ध अर्थ को नहीं कहता है। वाणी का वज्र बना हुआ वह अपने यजमान को ही मार डालता है, जैसे, स्वर के उच्चारण की अशुद्धि के अपराध से इन्द्र का शत्रु (वृत्र) मारा गया था।

‘तैत्तिरीय उपनिषद्’ में शिक्षा को और भी अधिक स्पष्ट किया गया है। वहाँ कहा गया है—

“शिक्षां व्याख्यास्यामः वर्ण, स्वर, मात्रा, बलम्, साम्, सन्तानः— इत्युक्तः शिक्षाध्यायः।”

इससे ज्ञात होता है कि शिक्षा वेदाङ्ग में उच्चारण-सम्बन्धी इन छह विषयों का विवेचन होता है—

1. **वर्ण**—अर्थात् अ, इ, उ, क, ख, ग, आदि वर्णों का उच्चारण।
2. **स्वर**—अर्थात् वेदपाठ में प्रयुक्त उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का उच्चारण।
3. **मात्रा**—अर्थात् ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत का उच्चारण।
4. **बल**—अर्थात् स्थान और प्रयत्न के अनुसार वर्णों का उच्चारण।
5. **सन्तान**—अर्थात् संहिता (सन्धि) के नियमों के अनुसार उच्चारण।

शिक्षा वेदाङ्ग में ३ प्रकार की रचनाएँ परिगणित होती हैं—

1. **प्रातिशाख्य-ग्रन्थ**
2. **शिक्षा-ग्रन्थ, और**

3. शिक्षा-सूत्र

संक्षेप में, इनका विवरण इस प्रकार है-

1. प्रातिशाख्य-ग्रन्थ

शिक्षा वेदाङ्ग की प्राचीनतम प्रतिनिधि रचनाएँ ये प्रातिशाख्य ग्रन्थ ही हैं। वेद की प्रत्येक संहिता की, प्रत्येक शाखा का अपना प्रातिशाख्य ग्रन्थ है। 'प्रातिशाखा' से सम्बन्धित होने के कारण ही इनका नाम 'प्रातिशाख्य' पड़ा है। प्रत्येक सम्बन्धित शाखा के उच्चारण के नियम, उसके प्रातिशाख्य-ग्रन्थ में विस्तार से मिलते हैं। अर्थात् वेद संहिता की, उस शाखा में मन्त्रों का उच्चारण किस प्रकार होता है, यह उसके प्रातिशाख्य ग्रन्थ में मिलता है।

आचार्य रामगोविन्द त्रिवेदी के अनुसार प्रातिशाख्य-ग्रन्थों में प्रतिपादित विषय इस प्रकार है।

(१) वर्णसमाम्नाय

अर्थात् स्वर और व्यंजन आदि वर्णों की गणना करना और उनके उच्चारण के नियमों को स्पष्ट करना।

(२) सन्धि

अर्थात् दो वर्णों के मिलने पर होने वाली अच् हल् और विसर्ग-सन्धियों का विवेचन।

(३) प्रगश्च संज्ञा

पदों के विभाग के नियमों (अवग्रह आदि) को स्पष्ट करना तथा उनके अपवाद-नियमों (सूत्रों) को बतलाना।

(४) उदात्त-अनुदात्त शब्दों की गणना, स्वरित के भेद बतलाना और आख्यात स्वर को स्पष्ट करना।

(५) संहितापाठ तथा पदपाठ में भेद दिखलाने वाले नियमों की व्याख्या और सत्व, षत्व तथा दीर्घ आदि करने का विवरण।

(६) अथर्व-प्रातिशाख्य में, संहितापाठ, पदपाठ और क्रमपाठ के भी नियम दिये गये हैं। तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य में उपर्युक्त तीन प्रकार के पाठों के अतिरिक्त जटापाठ के नियम भी बतलाये गये हैं।

(७) साम प्रातिशाख्य में सामवेद की विभिन्न प्रकार की रीतियों में प्रश्लेष, विश्लेष, कृष्ट, अकृष्ट, संकृष्ट आदि उच्चारण में होने वाले भेदों का भी वर्णन हुआ है।

आजकल उपलब्ध प्रातिशाख्य-ग्रन्थ इस प्रकार हैं-

ऋग्वेद का	1. ऋक्प्रातिशाख्य।
शुक्लयजुर्वेद का	2. वाजसनेयिप्रातिशाख्य।
कृष्णयजुर्वेद का	3. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य
सामवेद का	4. पुष्पसूत्र प्रातिशाख्य

अथर्ववेद का

5. ऋक्तन्त्र प्रातिशाख्य ।
6. अथर्ववेदप्रातिशाख्य सूत्र
7. अथर्व प्रातिशाख्य
8. चतुरध्यायिका

और

इन प्रातिशाख्यों का महत्त्व दो दृष्टियों से है।

1. संहितापाठ और पदपाठ के द्वारा इनमें वैदिक संहिताओं के स्वरूप को शुद्ध रूप में सुरक्षित रखा गया है।

अतः, प्रातिशाख्यों की विषय-सामग्री के प्रमुख तत्त्व इस प्रकार हैं—

(क) वैदिक मन्त्रों का उच्चारण (ख) वैदिक मन्त्रों में स्वर-विधान, (ग) पदों के परस्पर सन्निहित होने पर उनमें होने वाली सन्धि, (घ) छन्द की आवश्यकता के कारण ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ करने का विधान तथा (ङ) संहितापाठ और पदपाठ को पदपाठ में बदलने के नियम भी प्रातिशाख्यों में ही मिलते हैं।

2. वैदिक काल में, व्याकरणशास्त्र के होने के सूचक भी ये प्रातिशाख्य ग्रन्थ ही हैं। संस्कृत व्याकरण के ये आदिम ग्रन्थ हैं। यद्यपि प्रातिशाख्य स्वयं में व्याकरण के ग्रन्थ नहीं हैं, किन्तु इनमें अनेक वैयाकरणों के नाम मिलते हैं। व्याकरण से सम्बन्धित अनेक पारिभाषित शब्द और विषय भी प्रातिशाख्यों में मिलते हैं। अतः : व्याकरणशास्त्र के इतिहास की दृष्टि से प्रातिशाख्यों का बहुत महत्त्व है।

2. शिक्षा-ग्रन्थ

प्रातिशाख्य-ग्रन्थों के आधार पर बाद में शिक्षा-ग्रन्थों की रचना हुई है। इनकी रचना कारिकाओं में है। इनमें विषय को सरल शैली में सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया गया है।

शिक्षा-ग्रन्थों की संख्या के विषय में मतभेद है। काशी से प्रकाशित शिक्षा-संग्रह नामक ग्रन्थ में ३२ शिक्षाओं का संग्रह है। डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा के अनुसार शिक्षा-ग्रन्थों की संख्या ६० के लगभग है। श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने ग्रन्थ 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' में २३ शिक्षा-ग्रन्थों का परिचय दिया है।

आजकल उपलब्ध प्रमुख शिक्षा-ग्रन्थ इस प्रकार है—

1. पाणिनीय शिक्षा
2. याज्ञवल्क्य शिक्षा
3. वासिष्ठी शिक्षा

4. कात्यायनी शिक्षा
5. पाराशरी शिक्षा
6. माण्डव्यी शिक्षा
7. अमोघानन्दिनी शिक्षा
8. माध्यन्दिनी शिक्षा
9. केशवी शिक्षा
10. नारदीय शिक्षा
11. माण्डूकी शिक्षा। आदि-आदि

संक्षेप में, शिक्षा-ग्रन्थों में अधोलिखित विषयों का समावेश हुआ है-

1. शुद्ध उच्चारण का महत्त्व
2. शुद्ध उच्चारण के नियम
3. अच्छे पाठक के गुण और
4. बुरे पाठक के दोषों, आदि विषयों का विवरण विस्तार से मिलता है।

3. शिक्षासूत्र

उपर्यक्त शिक्षाग्रन्थों से भी प्राचीन, कुछ शिक्षासूत्र भी उपलब्ध होते हैं, जिनमें आपिशलि, पाणिनि और चन्द्रगोमी द्वारा रचित शिक्षासूत्र प्रमुख हैं।

शिक्षासूत्रों में वर्णों की उत्पत्ति के स्थान और वर्णों के उच्चारण में होने वाले प्रयत्न आदि पर प्रकाश डाला गया है।

शिक्षा वेदाङ्ग के अन्तर्गत परिगणित उपर्यक्त रचनाओं से प्रतीत होता है कि उस प्राचीन काल में भी, भारत के प्राचीन ऋषियों ने भाषा का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन किया था। भारत में भाषाशास्त्र (आधुनिक भाषाविज्ञान) के इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से शिक्षा वेदाङ्ग का महत्त्व बहुत अधिक है।

1. कल्पसूत्र या सूत्र-ग्रन्थ

ब्राह्मणों के याज्ञिक विधानों को 'कल्प' कहा जाता है। 'सूत्र' शब्द का अर्थ है-'विचारों का संक्षिप्त रूप'। इस प्रकार, 'कल्पसूत्र' से तात्पर्य है वे रचनायें, जिनमें ब्राह्मणों के याज्ञिक विधान को अति

संक्षिप्त वाक्यों में प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं 'कल्पसूत्रों' को संक्षेप में, केवल 'सूत्र' भी कहा जाता है। इस प्रकार 'कल्पसूत्र' और 'सूत्र-ग्रन्थ'— ये दोनों। नाम यहाँ पर्याय के रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं।

कल्पसूत्रों को, संहिताओं और ब्रह्माणों की विविध विद्याओं का सारग्रन्थ कहा जा सकता है। ये कल्पसूत्र चार प्रकार के हैं—

1. श्रौतसूत्र
2. धर्मसूत्र
3. गश्ह्यसूत्र
4. शुल्वसूत्र

श्रौतसूत्रों में श्रुतियों में प्रतिपादित याज्ञिक विधि-विधान का विवेचन किया गया है। ये यज्ञ अनेक पुरोहितों द्वारा किये जाते थे इन यज्ञों में आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिण-इन तीनों अग्निओं का उपयोग होता है। श्रौत-यज्ञों में दर्शपौर्णमास यज्ञ, चातुर्मास्य यज्ञ, सौत्रामणि यज्ञ, अग्निष्टोम, सोमयज्ञ, वाजपेय य राजसूय और अश्वमेध आदि १४ यज्ञ प्रमुख हैं। इनमें से सात हविर्यज्ञ हैं और सात सोमयज्ञ हैं।

यज्ञों की उपर्युक्त नामावलि को देखने से ही यह अनुमान हो जाता है कि इन श्रौतसूत्रों का विषय बहुत ही जटिल है। नीरस होने के कारण उनका साहित्यिक महत्त्व नगण्य ही है। किन्तु, कर्मकाण्ड-प्रधान, भारतीय संस्कृति के अङ्गभूत यज्ञों की प्रक्रिया और विधि-विधान को जानने की दृष्टि से श्रौतसूत्रों का बहुत महत्त्व है।

वेद की प्रत्येक शाखा के ब्राह्मण, आरण्यक आदि की भाँति ही, प्रत्येक वेद का श्रौतसूत्र भी प्रायः मिलता है। आजकल उपलब्ध श्रौतसूत्र इस प्रकार हैं—

वेद

ऋग्वेद

कृष्णयजुर्वेद

शुक्लयजुर्वेद

श्रौतसूत्र

1. आश्वलायन
2. शाखडायन (कौषीतकि)
3. आपस्तम्ब
4. बौधाय
5. हिरण्यकेशी (सत्याषाढ)
6. भारद्वाज
7. वैखानस
8. मानव (मैत्रायणी)
9. वाराह
10. कात्यायन (पारस्कर)

अथर्ववेद

11. खादिर
12. लाट्यायन
13. द्राह्यायण
14. वैतान

गृह्यसूत्र

गृह्यसूत्रों का महत्त्व लोकजीवन की दृष्टि से हैं इनका सम्बन्ध गृह में होने वाले यज्ञों और संस्कारों से है।

गृह्यसूत्रों को हम गृहस्थाश्रम की आचारसंहिता कह सकते हैं। इन सूत्रों में पंचमहायज्ञों का विवरण और उनकी विधि विस्तार से दी हुई है। इन पंचमहायज्ञों के नाम इस प्रकार हैं—

1. देवयज्ञ
2. पितृयज्ञ
3. भूतयज्ञ
4. नूयज्ञ
5. बलिवैश्वदेवयज्ञ

गृह्यसूत्रों के अनुसार इन पाँच यज्ञों को, प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन करना चाहिए। इनके करने से दैनिक जीवन में होने वाले सामान्य अपराधों का प्रायश्चित्त हो जाता है।

इनके साथ ही गृह्यसूत्रों में मनुष्य जीवन में होने वाले १६ संस्कारों का भी विवेचन मिलता है। इन संस्कारों से व्यक्ति के जीवन से दोषों का परिहार होता है और उसके जीवन में गुणों का समावेश होता है। ये सोलह संस्कार इस प्रकार हैं—

- | | |
|-----------------|--------------|
| 1. गर्भाधान | 2. पुंसवन |
| 3. सीमन्तोत्रयन | 3. जातकर्म |
| 5. नामकरण | 6. निष्क्रमण |
| 7. अन्नप्राशन | 7. चूडाकर्म |
| 9. कर्णच्छेदन | 10. उपनयन |
| 11. वेदारम्भ | 12. समावर्तन |

13. पाणिग्रहण 14. गृहस्थाश्रम (गार्हपत्य)
15. केशान्त (संन्यास) 16. अन्त्येष्टि

उपर्युक्त यज्ञों और संस्कारों के साथ ही गृहासूत्रों में गृहनिर्माण की विधि, अपशकुनों का निवारण, और भूतापसरण आदि की विधियों का विवेचन भी मिलता है। इनके द्वारा पुनर्जन्म एवं स्वर्ग आदि की मान्यताओं पर भी प्रकाश पड़ता है।

गृहासूत्रों में प्राचीन भारतीय गृहस्थ-जीवन की पद्धति पर बहुत ही अच्छा प्रकाश डाला गया है। उपलब्ध गृहासूत्र इस प्रकार हैं।

वेद

ऋग्वेद

कृष्णयजुर्वेद

शुक्लयजुर्वेद

सामवेद

अथर्ववेद

धर्मसूत्र

प्रस्तावना

गृह्यसूत्र

1. आश्वलायन

2. शांखायन

3. आपस्तम्ब

4. बौधायन

5. सत्याषाढ

6. वैखानस

7. कठ

8. कात्यायन (पारस्कर)

9. खादिर

10. गोभिल

11. गौतम

12. कौशिक

यहाँ 'धर्म' शब्द से तात्पर्य है – 'कर्तव्य' और 'प्रथा' पूर्वोक्त गृह्यसूत्रों में, जिस प्रकार व्यक्ति के घरेलू जीवन और गृह्य संस्कारों का विवेचन धर्मसूत्रों में हुआ है।

गृह्यसूत्रों

पञ्चमहायज्ञों और सोलह संस्कारों का विवेचन विशेष रूप से हुआ है। उनमें यज्ञ आदि के अनुष्ठान तथा विधि-विधान पर विशेष बल दिया गया है। किन्तु, धर्मसूत्रों में व्यक्ति के सामाजिक जीवन पर ही दृष्टि केन्द्रित रही है। उदाहरण के लिए—

गृह्यसूत्रों में

व्यक्ति के विवाह-संस्कार की धार्मिक पद्धति और अनुष्ठान का विवरण मिलता है। किन्तु, धर्मसूत्रों में उस विवाह से उत्पन्न सन्तानों में सम्पत्ति के उत्तराधिकार का विवेचन ही प्रमुख रूप से हुआ है।

संक्षेप में, धर्मसूत्रों में व्यक्ति के आचार-व्यवहार और कर्तव्य-कर्मों का विवेचन किया है। सामान्यतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चारों वर्णों के कर्तव्य-कर्मों के विवेचन के उपरान्त धर्मसूत्रों में प्रायश्चित्त आदि से सम्बन्धित सामग्री भी मिलती है।

बाद में, ये ही धर्मसूत्र, हिन्दुओं के विधि-साहित्य में प्रमुखरूप से परिगणित हुए हैं। उपलब्ध इस प्रकार हैं—

वेद

ऋग्वेद

सामवेद

शुक्लयजुर्वेद अथर्ववेद से सम्बन्धित कोई भी धर्मसूत्र अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

शुल्कसूत्र

यहाँ 'शुल्क' शब्द का अर्थ है—'नापने की रस्सी' ये शुल्कसूत्र क्रियात्मक हैं। इनमें वेदिका और मण्डप आदि के निर्माण के लिये उचित लम्बाई-चौड़ाई और उनके बनाने की विधि आदि का विवरण है। इनकी उपयोगिता ज्यामिति (रेखागणित) की दृष्टि से विशेष है।

'शुल्कसूत्रों' को भारतीय गणितशास्त्र के प्राचीनतम अवशेष माना जाता है। भारतीय रेखागणित (ज्यामिति) का इतिहास जानने के लिए ये शुल्क महत्त्वपूर्ण हैं। उपलब्ध शुल्कसूत्र इस प्रकार हैं—

धर्मसूत्र

1. वसिष्ठ धर्मसूत्र
2. आपस्तम्ब धर्मसूत्र
3. बौधायन धर्मसूत्र
4. हिरण्यकेशी धर्मसूत्र
5. गौतम धर्मसूत्र

1. बौधायन शुल्वसूत्र
2. आपस्तम्ब शुल्वसूत्र
3. मानव शुल्वसूत्र
4. मैत्रायणीय शुल्वसूत्र
5. वाराह शुल्वसूत्र
6. बाधूल शुल्वसूत्र

शुक्लयजुर्वेद का भी एक शुल्वसूत्र उपलब्ध है, उसका नाम है—

7. कात्यायन शुल्वसूत्र

शूल्वसूत्रों में बौधायन शुल्वसूत्र सबसे बड़ा भी है और प्राचीनतम भी है।

उपसूत्र : श्राद्धकल्प और पितृकल्प

प्रमुख सूत्रों के अतिरिक्त श्राद्धकल्पसूत्र और पितृकल्पसूत्र नाम से दो उपसूत्र भी मिलते हैं।

एक अन्य सूत्र 'प्रायश्चित्तसूत्र' नाम से भी मिलता है यह वैतानसूत्र का ही अंग है और विशालकाय भी है।

8.5 सारांश

इस प्रकार मुख आदि से बोले जाने वाले अक्षरों, वर्णों के उच्चारण सम्बन्धी विषय का विवेचन करने वाले ग्रन्थ। इनमें पाणिनीय आदि शिक्षा और ऋग्-यजुः आदि प्रातिशाख्यों का ग्रहण होता है। इस प्रकार शिक्षा में वर्णों का स्वरूप, उच्चारण स्थान-यत्न और बोलने वाले के गुण-दोषों का विचार मिलता है।

तथा कल्प शब्द से यज्ञ साहित्य का ग्रहण होता है। इसमें चार प्रकार के ग्रन्थ आते हैं। जैसे श्रौत्रसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शूल्वसूत्र। श्रौत्रसूत्रों में श्रुति = वेद में आए दार्ष, पौर्णमास आदि बृहत यज्ञों की प्रक्रिया का विवेचन है। गृह्यसूत्रों में गृहस्थ में होने वाले संस्कारों, पंचमहायज्ञ आदि का वर्णन है। धर्मसूत्रों में यज्ञ करने कराने वालों के धर्म = नियम, कर्तव्य बताए गए हैं और शुल्व हैं धागे हो। अतः धागे से माप कर बनने वाले यज्ञकुण्डों, वेदियों, यज्ञशालाओं का विवेचन है। ये वास्तु शिल्प और रेखागणित के प्राचीन ग्रन्थ हैं।

शब्दार्थ

वेदाङ्ग	—	वेदों का अर्थ जानना
अङ्ग	—	उपकारक

वर्ण	–	अक्षर
स्वर	–	स्वरोँ की संख्या तीन मानी गयी है – उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित
उदात्त	–	उच्च स्वर
अनुदात्त	–	धीमा स्वर
स्वरित	–	उदात्त और अनुदात्त के मध्य
ह्रस्व	–	एक मात्रा के उच्चारण में लगने वाला समय
दीर्घ	–	दो मात्राओं के उच्चारण में लगने वाला समय
प्लुत	–	तीन मात्राँ में उच्चारण में लगने वाला समय
साम	–	समानता
सन्तान	–	संहिता
शिक्षा	–	वैदिक मन्त्रों की उच्चारण विधि का शिक्षक ग्रन्थ
कल्प	–	विधि / नियम / न्याय / कर्म
सूत्र	–	संक्षेप
वैतान	–	त्रिविध अग्नि सम्बन्धी ग्रन्थ
शुल्ब	–	मापना
शुल्बसूत्र	–	मापने के कार्य में सम्बन्ध रखने वाला सूत्र

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुप्रश्नोत्तर

प्रश्न 1: वेदाङ्ग का अर्थ स्पष्ट करते हुए वेदाङ्ग के महत्त्व पर प्रकाश डालें।

उत्तर : अङ्ग शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है – ‘उपकारक’ अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु के स्वरूप को जानने में सहायता मिलती है। उन्हें अङ्ग कहते हैं। इस प्रकार वेदाङ्ग शब्द का अर्थ हुआ जिनसे वेदों का अर्थ जाना जाता है। वेद के अर्थज्ञान के लिए उपयोगी तत्त्वों का ज्ञान वेदाङ्ग है। वेदाङ्ग छः हैं – (1) शिक्षा, (2) कल्प, (3) व्याकरण, (4) निरुक्त, (5) छन्द, (6) ज्योतिष। वेदों की पुरुष के रूप में तथा वेदाङ्गों की उसके विभिन्न अङ्गों के रूप में कल्पना की गई है। इनमें शिक्षा वेद पुरुष की नासिका है, हाथ कल्प है, व्याकरण मुख है, निरुक्त श्रौत्र है, छन्द पैर तथा ज्योतिष नेत्र हैं इसलिए अङ्गों सहित वेदों का अध्ययन करके ही व्यक्ति ब्रह्मलोक में महिमा को प्राप्त है।

प्रश्न 2: “शिक्षा वेद पुरुष की नासिका है” इस कथन को सप्रमाण सिद्ध कीजिए।

उत्तर : शिक्षा को वेदाङ्गों में बहुत अधिक महत्त्व है। शिक्षा वह विद्या है। जिसमें वर्ण, स्वर आदि के उच्चारण का उपदेश दिया जाता है। गुरु जिस तरह मन्त्रों का उच्चारण करते हैं, शिष्य को उसी तरह से उच्चारण करना चाहिए। उच्चारण अशुद्ध हो जाने से मन्त्र का अर्थ अशुद्ध हो जाता है क्योंकि उच्चारण के भेद से अर्थ बदल जाता है। शिक्षा के छः अङ्ग स्वीकार किये गये हैं – (1) वर्ण, (2) स्वर, (3) मात्रा, (4) बल, (5) साम तथा (6) सन्तान।

प्रश्न2: निम्नलिखित में से किसी एक पर सारगर्भित निबन्ध लिखियें – (क) श्रौतसूत्र, (ख) गूह्यसूत्र, (ग) धर्मसूत्र, (घ) शुल्वसूत्र।

उत्तर : धर्मसूत्रों में चारों आश्रमों तथा चारों वर्णों के कर्तव्यों एवं राजकीय नियमों का विवेचन है। इसमें सभी तरह के पारमार्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक कर्तव्य तथा धर्म बताया गए हैं तथा सभी आचारों तथा विचारों का उपदेश दिया गया है। धर्मसूत्रों में समाज के संचालन के लिए सभी पक्षों पर विचार किया गया है। धर्म का क्या स्वरूप है? उसके क्या उपादान हैं? वर्णों के क्या नियम हैं तथा आश्रमों की रचना किन सिद्धान्तों पर की गयी थी? राजा को किन नियमों के अनुसार शासन करना चाहिए? आदि सभी विषयों का धर्मसूत्रों में विस्तृत विवेचन किया गया है।

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शिक्षा वेदाङ्ग का साङ्गोपाङ्ग परिचय दीजिए।
2. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर सारगर्भित निबन्ध लिखिए।
(क) श्रौतसूत्र (ख) धर्मसूत्र
3. ऋग्वेद में सम्बन्धित शिक्षाएँ कौन-कौन सी हैं?

8.7 सहायक ग्रन्थ

1. वैदिक साहित्य की रूपरेखा – डा० कर्ण सिंह
2. वैदिक साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव
3. वैदिक साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला ।

Suggested Reading :

1. वेदाङ्गों में शिक्षा का बहुत अधिक महत्त्व है? उपनिषत्कारों ने शिक्षा के जो छः अङ्ग स्वीकार किए हैं। उनको विस्तार से पढ़िये।

2. यथा शिक्षा मयूराणां, नागाणां मणयो यथा ।
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।।
इस मन्त्र का अनुवाद कीजिए ।

References :

1. शिक्षा घ्राणं तु वेदास्य (पाणिनीय शिक्षा)
2. दष्टः शब्द स्वरतोष्पराधात् । (पाणिनीय शिक्षा, श्लोक-52)
3. शिक्षां व्याख्यास्यामः (तैत्ति० उप० 1६1-2)



षड्वेदांगों का सामान्य परिचय –
3. व्याकरण 4. निरुक्त

- 9.1 शीर्षक
- 9.2 प्रस्तावना
- 9.3 उद्देश्य
- 9.4 विषय सामग्री
- 9.5 सारांश
- 9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 9.7 सहायक ग्रन्थ

9.1 शीर्षक

षड्वेदांगों का सामान्य परिचय – 3. व्याकरण 4. निरुक्त

9.2 प्रस्तावना

व्याकरण वेदांग को, वेद-पुरुष का मुख कहा गया है।

“मुखं व्याकरणं स्मृतम्।।”-पाणिनीय शिक्षा।

अभिप्राय यही है कि अन्य वेदांगों की अपेक्षा व्याकरण वेदांग का महत्त्व अधिक है इसी मत का समर्थन महाभाष्यकार पतञ्जलि के इस कथन से भी होता है।

“प्रधानं च षट्सु-अंगेषु व्याकरणम्।” महाभाष्य ।

अर्थात् वेद के छहों अंगों में व्याकरण ही प्रधान है।

‘निरुक्त’ छह वेदांगों में अन्यतम है। पाणिनीय शिक्षा में ‘निरुक्त’ को वेद पुरुष का श्रोत्रेन्द्रिय कहा गया है—“निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।”—(पाणिनीय शिक्षा)

आजकल जो निरुक्त उपलब्ध होता है वह यास्क द्वारा रचित है। ‘निरुक्त’ नामक वेदांग का प्रतिनिधि, यही निरुक्त ग्रन्थ माना जाता है। ‘निरुक्त’ का आधार ‘निघण्टु’ नाम का वैदिक शब्दकोष है। वेदों में से कठिन शब्दों को निकालकर उन्हें पहले ‘निघण्टु’ में संकलित किया गया था। ‘निघण्टु’ में संकलित उन्हीं शब्दों का निर्वचन यास्क ने अपने ‘निरुक्त’ में संकलित किया गया था। ‘निघण्टु’ में संकलित उन्हीं शब्दों का निर्वचन यास्क ने अपने ‘निरुक्त’ में किया है। इस प्रकार ‘निघण्टु’ वैदिक शब्दकोश है, और उस शब्दकोश है, और उस शब्दकोश का भाष्य ‘निरुक्त’ है। वेद के मन्त्रों का अर्थ जानने के लिए ‘निरुक्त’ बहुत ही उपयोगी है। ‘सायण’ आदि वेद के अनेक भाष्यकारों ने इससे पर्याप्त सहायता ली है।

9.3 उद्देश्य

व्याकरण का वेदांग में तीसरा स्थान है। व्याकरण शब्द का अर्थ है – जिसके द्वारा शब्दों की व्युत्पत्तिजनक व्याख्या की जाती है। व्याकरण का मुख्य उद्देश्य ही शब्दों की व्युत्पत्ति करके, उसमें प्रकृति तथा प्रत्ययों को खोज कर उनके अर्थों का निर्धारण करना है। वेदों के अर्थों को जानने के लिए व्याकरण का ज्ञान अनिवार्य है। एक प्रसिद्ध मन्त्र में व्याकरण की वृषभ रूप में कल्पना की गई है। इस व्याकरण के वृषभ के चार सींग हैं – नाम, अख्यात, उपसर्ग और निपात। अर्थों को जानने के लिए स्वतन्त्र रूप में जहां पदों का संग्रह किया गा है, वह निरुक्त है। निरुक्त का मुख्य उद्देश्य ही शब्दों की निरुक्ति अर्थात् व्युत्पत्ति करके अनेक व्युत्पत्ति-मूलक अर्थों के परिज्ञान के लिए निरुक्त की सबसे प्रधान मानना चाहिए। निरुक्त में उस वैदिक शब्द-समाम्नाय अर्थात् गो से वेदपत्नी की व्याख्या की गई है जो निघण्टु के पाँच अध्यायों में संकलित है। निघण्टु एक तरह से वैदिक शब्दकोश है जिसमें कुल 1341 शब्द परिगणित हैं।

9.4 विषय सामग्री

व्याकरण

व्याकरण शास्त्र का सर्वप्रथम संकेत हमें ऋग्वेद में उपलब्ध होता है वहाँ वृषभ रूप में व्याकरण का उल्लेख हुआ है और कहा गया है—

“चत्वारि श्रंशास्त्रयों अस्य पादा द्वे शीर्ष सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेश”

ऋग्वेद (4/58/6)

अर्थात् इस वृषभ रूपी व्याकरण के चार सींग नाम, अख्यात उपसर्ग और निपात (शब्दों के चार भेद) हैं। इसके तीन पाद-भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीन काल हैं। इसके दो सिर-सुप् और तिङ् (प्रत्यय) हैं।

इसके सात हाथ सात विभक्तियाँ हैं। यह उरस् कण्ठ और मूर्धा-इन तीन स्थानों पर बँधा हुआ शब्द करता है। यह बड़ा देव मनुष्यों में प्रविष्ट हो गया है। बाद में, ब्राह्मण-ग्रन्थों और कल्पसूत्रों में भी व्याकरण का थोड़ा सा विवेचन हुआ है।

इसके उपरान्त वैदिक व्याकरण का सर्वप्रथम विवेचन हमें प्रातिशाख्य -ग्रन्थों में मिलता है प्रातिशाख्यों में व्याकरण विषयक जिन विषयों का उल्लेख है, उनमें से प्रमुख है-

वर्ण-समाम्नाय, पदविभाग, सन्धि विच्छेद, स्वर विचार, पाठविचार और अन्य उच्चारण-सम्बन्धी विषयों का विवेचन।

वैदिक व्याकरण के पश्चात् लौकिक (संस्कृत) व्याकरण का प्रादुर्भाव हुआ। संस्कृत-व्याकरण के सबसे प्रमुख व्याकरणकार हैं-पाणिनी। और इनके व्याकरण के ग्रन्थ का नाम है-अष्टाध्यायी इसमें आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में चार पद हैं और कुल सूत्रों की संख्या लगभग चार हजार है।

यद्यपि पाणिनि की अष्टाध्यायी में, 'स्वरवैदिकी' प्रकरण का सम्बन्ध वैदिक व्याकरण से है, तथापि मुख्य रूप से पाणिनि का व्याकरण संस्कृत व्याकरण ही है। वैदिक भाषा का विवेचन उसमें बहुत कम है। वैदिक प्रयोगों के लिए प्रायः व्यत्ययों बहुलम् और बहुलं छन्दसि सूत्र ही वहाँ मिलते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि वैदिक भाषा के विवेचन में पाणिनि की विशेष रुचि नहीं थी।

सक्षेप में, संस्कृत-व्याकरण का प्रमुख ग्रन्थ पाणिनि-रचित अष्टाध्यायी ही है इसका रचनाकाल ई० पूर्व ६०० वर्ष माना जाता है इसके उपरान्त ई० पूर्व ४०० वर्ष में कात्यायन ने अपने वार्तिक रचे और उसके बाद, फिर ई० पूर्व २०० में पतंजलि ने महाभाष्य की रचना की।

पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि को ही व्याकरणशास्त्र का मुनित्रय कहा जाता है और इन तीनों की रचनाएँ ही व्याकरण वेदांग का प्रतिनिधित्व करती हैं। बाद में रचे गये सभी व्याकरण ग्रन्थ इन्हीं तीनों की रचनाओं पर, विशेषरूप में अष्टाध्यायी पर आधारित हैं।

व्याकरण वेदांग का प्रयोजन

महाभाष्यकार पतंजलि ने व्याकरण वेदांग के जिन प्रयोजनों का उल्लेख किया है, उनमें वेदों की रक्षा का प्रयोजन ही प्रमुख है। पतंजलि के अनुसार व्याकरण के पाँच प्रमुख प्रयोजन इस प्रकार हैं।

1. रक्षार्थं वेदानाम् अध्येयं व्याकरणम्
2. ऊह : खल्वपि

3. आगम : खल्वपि
4. लध्वर्थ चाध्येयं व्याकरणम्
5. असन्देह चाध्येयं व्याकरणम्

उपयुक्त प्रयोजनों द्वारा व्याकरण, वेद की रक्षा में इस प्रकार सहायक होता है—

1. रक्षार्थं वेदानाम् अध्येयं व्याकरणम्

पतञ्जलि मुनि के अनुसार वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए। व्याकरण द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति के विषय में—वर्ण के लोप, वर्ण के आगम और वर्ण के विकार आदि को जानने वाला ही वेदों का पालन कर सकता है। अर्थात् व्याकरण से शब्दज्ञान, शब्दज्ञान से अर्थज्ञान अर्थात् शब्द और अर्थ को जानकर ही वेदों की रक्षा हो सकती है।

2. ऊह : खल्वपि

वेदों में, मन्त्रों में सभी लिखों एवं सभी विभक्तियों का प्रयोग नहीं हुआ है। यज्ञ आदि में मन्त्रों का प्रयोग करते समय, प्रकरण के अनुसार उनमें कल्पना का प्रयोग करना पड़ता है। जैसे—अग्नि को आहुति देते समय—“अग्नये त्वा जुष्ट समर्पयामि” कहा जाता है, और सूर्य को आहुति देते समय—“सूर्याय त्वा जुष्टं समर्पयामि” कहा जाता है। एक ही मन्त्र में ‘अग्नये’ के स्थान पर ‘सूर्याय’ का प्रयोग व्याकरण जानने वाला ही कर सकता है।

3. आगम : खल्वपि

शास्त्र का भी यही आदेश है। कि ब्राह्मण का निष्कारण धर्म है कि वह छह अंगों वाले वेद का अध्ययन करे और उसे जाने। वेद के छह अंगों में व्याकरण प्रमुख है। अतः व्याकरण का ज्ञान अनिवार्य है।

4. लध्वर्थ चाध्येयं व्याकरणम्

ब्राह्मण के लिए शब्दों का ज्ञान आवश्यक है। शब्द बहुत है, अतः व्याकरण के द्वारा ही शब्दों का ज्ञान शीघ्रतया हो सकता है। इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।

5. असंदेहार्थम् अध्येयं व्याकरणम्

वैदिक मन्त्रों के पदों में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित—इन तीनों स्वरों का ज्ञान आवश्यक है। यहाँ स्वर से ही अर्थ का निश्चय होता है। ‘स्थूलपशुपती’ जैसे वैदिक शब्दों में यह सन्देह हो जाता है कि इसका अर्थ बहुव्रीहिसमास के अनुसार करें या तत्पुरुष समास के अनुसारकरे व्याकरण के द्वारा ‘स्थूलपशुपती’— जैसे शब्दों में उदात्त आदि स्वर को पहचानकर, इसका ठीक अर्थ जाना जा सकता है। अतः अर्थ में सन्देह होने पर, उसे दूर करने के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।

संक्षेप में, व्याकरण वेदांग वेद का उपकारक है। इसके द्वारा शब्द का ज्ञान, स्वर का ज्ञान और अर्थ का ज्ञान ठीक-ठीक हो जाता है। इसी कारण व्याकरण वेदांग का महत्त्व है।

4. निरुक्त का महत्त्व

निरुक्त

‘दुर्गाचार्य’ ने व्याकरण और कल्प आदि वेदांगों की तुलना में निरुक्त को अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया है। उसका कारण यह है कि व्याकरण से केवल शब्द का ही ज्ञान होता है और कल्प से केवल मन्त्रों के विनियोग का ही ज्ञान होता है। किन्तु इन दोनों ही वेदांगों के लिए, अर्थ को जानना आवश्यक है। यदि निरुक्त के द्वारा हमें वैदिक शब्दों के अर्थ का ज्ञान न हो, तो उपर्युक्त दोनों ही वेदांग व्यर्थ हो जाते हैं। क्योंकि अर्थ को जानकर ही यज्ञों में मन्त्रों का विनियोग होता है। वस्तुतः, अर्थ के अभाव में तो शब्द का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता है ?

निरुक्त का लक्षण

आचार्य ‘सायण’ ने ‘निरुक्त’ का लक्षण इस प्रकार है—

“अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्।”

अर्थात् अर्थज्ञान के विषय में, जहाँ स्वतन्त्ररूप से पदसमूह का कथन किया गया है, वह ‘निरुक्त’ कहलाता है। यास्क ने ‘निरुक्त’ और व्याकरणशास्त्र के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए, ‘निरुक्त’ को व्याकरण का पूरक स्वीकार किया है—

“तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्तरन्यम्।”

इससे ज्ञात होता है कि व्याकरण और निरुक्त के ज्ञान के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है इसी दृष्टि से यास्क ने निरुक्त की भूमिका में सावधान किया है कि व्याकरण के ज्ञान से हीन, व्यक्ति को निरुक्त ज्ञान नहीं कराना चाहिए— ‘नावैयाकरणाय।’

‘निरुक्त’ का प्रतिघात विषय, वैदिक शब्दों का निर्वचन है। और, यह निर्वचन या निरुक्त पाँच

प्रकार का होता है।

“वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च

द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।

धातोस्तदर्थतिशयेन योगस्

तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।” (यास्क)

अर्थात् निरुक्त में निघण्टु के शब्दों का निर्वचन अधोलिखित पाँच प्रकार से अथवा पाँच उपायों से किया गया है—

1. वर्णागम के द्वारा

अर्थात् शब्द का निर्वचन करने में यदि किसी वर्ण की आवश्यकता पड़े तो उसे, मूलधातु में न होने पर भी बाहर से ले लिया जाय।

2. वर्णाविपर्यय के द्वारा

अर्थात् शब्द का निर्वचन करने में यदि आवश्यक हो तो मूलधातु में आये शब्दों का स्थान बदल दिया जाय।

3. वर्णविकार के द्वारा

अर्थात् मूल शब्दों के उच्चारण में परिवर्तन कर लिया जाय।

4. वर्णनाश के द्वारा

अर्थात् मूलधातु में से किसी वर्ण को हटा लिया जाय (लोप) और,

5. धातु के अर्थ का बढ़ लेने के द्वारा

अर्थात् धातु के प्रचलित अर्थ में अर्थात् अधिक वृद्धि करके निर्वचन कर लिया जाय।

इस प्रकार निरुक्त में शब्दों के निर्वचन को अभिवार्य माना गया है और कहा गया है। कि किसी भी उपाय से निर्वचन तो किया ही जाना चाहिए।

निरुक्त का परिचय

उपलब्ध निरुक्त में 14 अध्याय हैं। इनमें से बाद के 2 अध्यायों को परिशिष्ट माना जाता है।

नैघण्टुक काण्ड

‘निरुक्त’ प्रारम्भ के 1-3 अध्यायों को 11 नैघण्टुक काण्ड 4 कहा जाता है। प्रथम अध्याय में, निर्वचन की पृष्ठभूमि के रूप में कुछ आवश्यक विषयों का निर्वचन है। यास्क के अनुसार पदों का चार प्रकार का विभाग है।

- | | |
|-----------|-----------|
| 1. नाम | 2. आख्यात |
| 3. उपसर्ग | 4. निपात। |

यहाँ नाम को सत्व (द्रव्य) प्रधान और आख्यात को भावप्रधान कहा गया है। नाम और आख्यात स्वतन्त्र रूप से अपना अर्थ कहते हैं, किन्तु उपसर्ग और निपात अपना अर्थ दूसरे शब्दों की सहायता से ही कहते हैं।

निरुक्त के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में पर्यायावाची शब्दों का निर्वचन किया गया है।

नैगमकाण्ड

निरुक्त के 4-6 अध्याय, 'नैगमकाण्ड' कहलाते हैं। इस भाग को 'ऐकपदिक' भी कहते हैं। इस भाग में जिन शब्दों पर विचार हुआ है, वे तीन प्रकार के हैं।

1. एक अर्थ में प्रयुक्त अनेक शब्द (पर्यायवाची शब्द)
2. अनेक अर्थ में प्रयुक्त एक शब्द, (अनेकार्थक शब्द)
3. ऐसे शब्द, जिनकी व्युत्पत्ति (संस्कार) ज्ञात नहीं है (अनवगतसंस्कार शब्द)।

दैवतकाण्ड

निरुक्त के 4-12 अध्याय, 'दैवतकाण्ड' कहलाते हैं। इस काण्ड में वेद में प्रधान रूप से स्तुति किये गये देवताओं के नामों का निर्वचन है।

निरुक्त में देवता तीन प्रकार का है -

1. पृथ्वीस्थानीय देवता : जैसे अग्नि आदि।
2. अन्तरिक्षस्थानीय देवता : जैसे इन्द्र वा वायु आदि।
3. द्युस्थानीय देवता : जैसे सूर्य आदि।

इस प्रकार इस भाग में देवता-सम्बन्धी अनेक विषयों का विवेचन हुआ है।

परिशिष्ट

निरुक्त के परिशिष्ट के दोनों अध्यायों में अग्नि की स्तुति और ब्रह्मा की स्तुति है।

भाषाशास्त्र की दृष्टि से निरुक्त का बड़ा महत्त्व है।

निरुक्त का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है कि सभी नामशब्द धातुओं से बने हैं-

“सर्वाणि नामानि आख्यातजानि।”

अर्थात् भाषा में प्रयुक्त शब्दों का मूल, धातु (क्रिया) है, यह सिद्धान्त यास्क ने आज से 3 हजार वर्ष पहले स्थापित कर दिया था। आधुनिक भाषा विज्ञान भी इसी सिद्धान्त को स्वीकार करता है।

9.5 सारांश

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाषा सम्बन्धी लक्षण शास्त्र का वाचक ही व्याकरण शब्द हैं। हमारे द्वारा बोले जाने वाले शब्दों, वाक्यों और उनके अर्थों का उसमें विचार मिलता है। ऐसे ही वेद वाचक (विषयक) भाषाशास्त्र को ही वैदिक-व्याकरण कहा जा सकता है।

निरुक्त शब्द का अर्थ है – निश्चित कहना। इसमें वेद के शब्दों के अर्थों को समझने-समझाने की प्रक्रिया जहां है, वहां किसी के पर्यायवाचकों, एक शब्द के अनेक अर्थों और देवतावाचक शब्दों के अर्थों का उदाहरण सहित विचार है।

शब्दार्थ

आगम = मूल स्थान (खोज)

1. वेदाङ्ग निरुक्त के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं? निरुक्त पर विस्तार से लिखें।
2. निरुक्त के प्रतिपाद्य-विषय पर सारगर्भित निबन्ध लिखें।
3. व्याकरण शास्त्र के प्रयोजन पर प्रकाश डालिये।
4. व्याकरण शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए व्याकरण की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वेदाङ्ग निरुक्त के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं? निरुक्त पर विस्तार से लिखें।
2. निरुक्त के प्रतिपाद्य-विषय पर सारगर्भित निबन्ध लिखें।
3. व्याकरण शास्त्र के प्रयोजन पर प्रकाश डालिये।
4. व्याकरण शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए व्याकरण की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

लघुप्रश्नोत्तर

प्रश्न 1 : व्याकरणशास्त्र का प्रयोजन बताते हुए पाणिनीय अष्टाध्यायी पर प्रकाश डालिये।

उत्तर : व्याकरण का प्रयोजन वेदों के अर्थों का जानना है। महर्षि पतंजलि ने व्याकरण के अध्ययन के पाँच मुख्य प्रयोजन बताए हैं – (1) रक्षा, (2) ऊह, (3) आगम, (4) लघु, (5) असन्देह प्रतिष्ठित पाणिनि संस्कृत व्याकरण-शास्त्र के सबसे बड़े आचार्य हैं। अपने समय में उन्होंने संस्कृत भाषा की सूक्ष्म रूप से छानबीन की थी। उसी छानबीन के आधार पर जिस व्याकरण-शास्त्र का उन्होंने प्रवचन किया वह न केवल तत्कालीन संस्कृत भाषा का नियामक शास्त्र बना अपितु उसने आगामी संस्कृत रचनाओं को भी प्रभावित किया। पाणिनि का व्याकरण शब्दानुशासन लोक में अष्टाध्यायी के रूप में जाना जाता है। अपनी अष्टाध्यायी में पाणिनि ने संस्कृत भाषा को अमरता प्रदान की है।

प्रश्न 2 : निरुक्त की विषय-वस्तु पर प्रकाश डालिये।

उत्तर : निरुक्त-शास्त्र का उदय वैदिक देवविद्या के रूप में हुआ था। प्राचीनकाल में वैदिक देवताओं के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उनके नाम-पदों का निर्वचन किया जाता था। यास्क के निरुक्त की मुख्य उपयोगिता निर्वचन के द्वारा वेदार्थज्ञान कराना है।

महर्षि यास्क के निरुक्त में तीन काण्ड हैं, जो 12 अध्यायों में विभक्त हैं। इसके अतिरिक्त इसमें दो अध्याय परिषिष्ट के रूप में हैं।

9.7 सहायक ग्रन्थ

1. वैदिक साहित्य की रूपरेखा – डा० कर्ण सिंह
2. वैदिक साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव
3. वैदिक साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला ।

Suggested Reading

1. यथा जानपदीषु विद्यातः पुरुष विशेषो भवति ।
परोवर्यवित्सु तु खलु वेदितश्शु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति ॥
2. वर्णागमो वर्णविपर्ययञ्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ ।
धातोस्तदर्थान्तिषयेन योगस् तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्त ॥

References

1. “निरुक्त श्रोत्रमुच्यते” । पाणिनीय शिक्षा
2. अर्थाबोधे । निरुक्त यास्क
3. वर्णागमो वर्णविपर्ययञ्च । यास्क
4. यथा जानपदीषु विद्यातः पुरुष विशेषो भवति । यास्क 1,5
5. विस्ताराय च वेदानां स्वयं नारायणः प्रभु ।
व्यासरूपेण कृतवान् पुराणानि महीतले ॥ ब्रह्म पु० 1/15



षड्वेदांगों का सामान्य परिचय -

5. ज्योतिष 6. छन्द

- 10.1 शीर्षक
- 10.2 प्रस्तावना
- 10.3 उद्देश्य
- 10.4 विषय सामग्री
- 10.5 सारांश
- 10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 10.7 सहायक ग्रन्थ

10.1 शीर्षक

षड्वेदांगों का सामान्य परिचय -5. ज्योतिष 6. छन्द

10.2 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य का यह विभाग, वेदों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के कारण ही वेदांग कहलाता है। मन्त्र-संहिताओं और ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद कहा जाता है और उनके अध्ययन में सहायक शास्त्र - शिक्षा, निरुक्त, कल्प, व्याकरण, छन्दस् और ज्योतिष को वेदाङ्ग कहा जाता है।

वेद का मूलपाठ अत्यधिक पवित्र है, उसमें परिवर्तन न हो, उच्चारण शुद्ध बना रहे, और वेद मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान ठीक-ठीक हो जाय-इसके लिये वेदांग-साहित्य का आविर्भाव हुआ है।

वेदांग-साहित्य में प्रायःसूत्रशैली को अपनाया गया है। अतः कुछ विद्वानों ने इस 'सूत्र-साहित्य' भी कहा है। पाश्चात्य विद्वान् कीजी (kaegi) का यह कथन, इस दृष्टि से यहाँ उद्धरण-योग्य है-

“The third and youngest stage of Vedic literature is the Vedang, also called Sutra,“ (Life in Ancient India)

अर्थात् वैदिक साहित्य में, सबसे बाद में होने वाली रचनाएँ वेदांग हैं, उन्हें 'सूत्र' भी कहते हैं। रचनाक्रम की दृष्टि से इनका तीसरा स्थान है।

जैसा कि ऊपर भी संकेत किया जा चुका है, इन रचनाओं को वेदांग इसलिये कहा जाता है, क्योंकि ये वेद के अध्ययन में पूर्णरूप से सहायक हैं। उदाहरण के लिए—

- (1) वेद-मन्त्रों के शुद्ध पाठ में शिक्षा नामक वेदांग अत्यधिक सहायता करता है।
- (2) वेद-मन्त्रों के कर्मकाण्डीय और यज्ञीय अनुष्ठान के ज्ञान के लिए 'कल्प' नामक वेदाङ्ग का महत्त्व है।
- (3) वेद-मन्त्रों में प्रयुक्त पदों के शुद्ध स्वरूप (प्रकृति-प्रत्यय) के ज्ञान के लिए व्याकरण वेदांग उपयोगी है।
- (4) वेदों-मन्त्रों में आये वैदिक पदों (शब्दों) के अर्थ का ज्ञान कराने में 'निरुक्त' नामक वेदांग हमारी सहायता करता है।
- (5) वैदिक मन्त्रों में प्रयुक्त छन्दों के ज्ञान के लिए छन्दो वेदांग का महत्त्व है। तथा
- (6) यज्ञ और अनुष्ठान आदि विभिन्न क्रियाओं के लिए उपयुक्त काल और मुहूर्त का ज्ञान कराने में ज्योतिष वेदाङ्ग हमारी सहायता करता है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी वेदाङ्ग वेद के अध्ययन आदि में हमारी अत्यधिक सहायता करते हैं।

वेदांग-संख्या और नाम

ये वेदाङ्ग छह हैं तथा इनके नाम इस प्रकार हैं—

1. शिक्षा,
2. कल्प
3. व्याकरण
4. निरुक्त
5. छन्दस्
6. ज्योतिष

10.3 उद्देश्य

इस खण्ड में ज्योतिष और छन्द इन दो वेदाङ्गों के विषय की जानकारी दी गयी है। वेदाङ्ग वे सहायक तत्त्व हैं जिनसे वेदों को समझने और उनके कर्मकाण्ड के सम्पादन में सहायता प्राप्त होती है। हमारा आपस के भावों

के संप्रेषण की शक्ति शब्दों में ही छिपी हुई है। इसी से सारा मानव समाज एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। अतः शब्द हमारे पारस्परिक व्यवहार का एक प्रमुख अंग है। वेद हमारी भारतीय संस्कृति, धर्म, साहित्य, दर्शन, सदाचार तथा ज्ञान-विज्ञान के मूल हैं। इन सबकी जानकारी देना ही वेदों का प्रमुख उद्देश्य है क्योंकि जितनी भी धारणाएँ, तत्त्व, सिद्धान्त हैं, वे सब जहाँ वेदों से ही पल्लित, पुष्पित और फलित हुए हैं, तभी तो वैदिक वाङ्मय का विशाल वट-वृक्ष-वेदों की ही मूल भावना के आधार पर ही फूला-फला है या वेदों के अर्थों को समझने-समझाने के लिए ही हरा-भरा हुआ है। वेदाङ्गों को पढ़े बिना वेदों का अध्ययन अधूरा ही है। इस ज्ञान को पाठकों के मस्तिष्क तक पहुँचाना और वेदों के प्रति अभिरुचि जाग्रत करना ही मुख्य उद्देश्य है।

10.4 विषय सामग्री

5. ज्योतिष

ज्योतिः से ज्योतिष शब्द बनता है। सूर्य-चन्द्र के लिए यहाँ ज्योति शब्द है। अतः इन ज्योतियों के आधार पर चलने वाली दिन-मास-वर्षा आदि की काल गणना इसका विषय है, क्योंकि अनेक यज्ञ विशेष काल में होते हैं, जिसका बोध ज्योतिष से होता है। इसको स्पष्ट करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखा है – “ज्योतिषशास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है। (सत्यार्थ० समु० 3, पृष्ठ 66)

छ : वेदाङ्गों में ज्योतिष वेदाङ्ग का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसे वेदपुरुष का चक्षु कहा गया है—

“ज्योतिषामयनं चक्षुः।” –पाणिनीय शिक्षा।

वेद की उपयोगिता यज्ञसम्पादन में है। यज्ञ करने के लिए उपयुक्त समय का ज्ञान होना आवश्यक है। विशिष्ट यज्ञ, विशिष्ट काल की अपेक्षा रखता है। कुछ यज्ञों का विधान संवत्सर की दृष्टि से होता है और कुछ यज्ञ ऋतु की दृष्टि से किये जाते हैं। उदाहरण के लिए, तैत्तिरीयब्राह्मण में कहा है—

“बसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे राजन्य आदधीत। शरदि वैश्य आदधीत।”

अर्थात् ब्राह्मण, बसन्त ऋतु में अग्नि का आधान (यज्ञ के लिए अग्नि की स्थापना) करे, क्षत्रिय ग्रीष्म ऋतु में अग्नि का आधान करे और वैश्य शरद् ऋतु में अग्नि का आधान करे। संवत्सर और ऋतु की भाँति ही कोई विशेष यज्ञ किसी विशेष मास में ही किया जाता है, या किसी विशेष तिथि में ही किया जाता है। जैसे, ताण्ड्य ब्राह्मण में कहा गया है कि—

“फाल्गुनी पूर्णमासे दीक्षेरन्”–ताण्ड्यब्राह्मण-१। १।।

अर्थात् फाल्गुन मास की पूर्णिमा को दीक्षा दी जाय। संक्षेप में, किसी भी यज्ञ को करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वह विशेष यज्ञ, किस संवत्सर में, किस ऋतु में, किस मास में, किस तिथि में और किस

समय किया जाता है। काल के किसी भी खण्ड को जानने के लिए ज्योतिष का ज्ञान आवश्यक है। ज्योतिष के ज्ञान के बिना, किसी भी सभी यज्ञ को करने का ठीक समय नहीं जाना जा सकता। इस प्रकार ज्योतिष यज्ञादि अनुष्ठान व्यर्थ हो जाते हैं। अतः यज्ञ आदि शुभ कार्यों को करने के लिए ज्योतिष का ज्ञान अनिवार्य ही है। वेदांग ज्योतिष के अनुसार तो—

“यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।”

अर्थात् जो व्यक्ति ज्योतिष को जानता है, वही यज्ञ को भी जानता है। तात्पर्य यही है कि उचित नक्षत्र और उचित काल में करने से ही यज्ञादि कार्य फल देने वाले होते हैं

ज्योतिष वेदांग गणना पर आधारित है। उचित काल-ज्ञान के लिए गण्ड-नक्षत्र आदि की भौतिक दशा को ध्यान में रखा जाता है यह सब गणित पर ही निर्भर करता है। इसलिए ज्योतिष और गणित ये दोनों पर्यायावाची शब्द हैं। 'वेदांग ज्योतिष' में गणित को इसलिए मूर्धन्य स्थान दिया गया है—

“यथा शिखा मयूराणां, नागानां मणयो यथा।

तदवत् वेदागशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्” ॥ श्लोक ४ ॥

अर्थात् जैसे मयूरों की शिखा उनके सिर पर होती है, जैसे सर्पों की मणियाँ उनके सिर पर रहती हैं, उसी प्रकार सब वेदांगों के ऊपर गणित (ज्योतिष) वेदांग रहता है।

ज्योतिष वेदांग का विकास

ज्योतिष वेदांग का प्रादुर्भाव वैदिक काल में ही हो गया था। 'ऋग्वेद' की कुछ ऋचाओं से यह आभास मिलता है कि वैदिक आर्यों को ज्योतिष का ज्ञान था। ऋग्वेद में वरुणसूक्त में कहा गया है। कि वरुण का बारह मासों का ज्ञान है— (ऋ० १६२५)। इसी प्रकार कुछ अन्य स्थलों से ज्ञात होता है कि वैदिक आर्य सूर्य की गति और सूर्य के ग्रहण आदि से परिचित थे। उन्हें ऋतुओं का और नक्षत्रों का भी ज्ञान था।

आजकल ज्योतिष वेदांग का उपलब्ध और प्रतिनिधि ग्रन्थ— 'वेदांग ज्योतिष' है। इसके दो पाठ (संस्करण) उपलब्ध होते हैं एक पाठ का सम्बन्ध ऋग्वेद से है और उसमें ३६ श्लोक हैं। दूसरे पाठ संस्करण का सम्बन्ध 'यजुर्वेद' से है और उसमें ४३ श्लोक हैं। इसके रचयिता का नाम 'लगध' है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित के अनुसार 'वेदांग-ज्योतिष' की रचना ईसवी पू० १४०० वर्ष में हुई होगी। अत्यधिक प्राचीन होने के कारण यह ग्रन्थ बड़ा दुर्बोध है। डॉ० थीबो शंकर बालकृष्ण दीक्षित, लोकमान्य तिलक और सुधाकर द्विवेदी आदि विद्वानों ने इस पर जो भाष्य लिखे हैं, उनसे भी इसका अर्थ पूर्णरूपेण स्पष्ट नहीं हो सका है।

'वेदांग-ज्योतिष' से गणना की दृष्टि से एक युग में ५ वत्सर माने गये हैं, जिनके नाम हैं—

1. संवत्सर
2. परिवत्सर
3. इदवत्सर
4. अनुवत्सर
5. इद्वत्सर,

वत्सर के इन नामों का उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी मिलता है।

आज प्रचलित ज्योतिष् के सिद्धान्त-ग्रन्थों में गणना का आधार 12 राशियाँ हैं, किन्तु 'वेदांग-ज्योतिष्' में गणना का आधार 28 नक्षत्र है। इसमें राशियों का कहीं उल्लेख नहीं है।

6 छन्दस्

'छन्दो' नामक वेदांग को वेद पुरुष के दो पैर कहा गया है:-

"छन्द : पादौ तु वेदस्य।"-पाणिनीय शिक्षा

अर्थात् यह वेदांग वेद को गति प्रदान करता है। सामान्यता भी यह माना जाता है कि वेद के मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान तभी होता है, जब पहले मन्त्र के ऋषि का, मन्त्र के देवता का और मन्त्र के छन्द का ज्ञान हो गया होता है। इस प्रकार मन्त्र ज्ञान के लिए अर्थज्ञान और अर्थज्ञान के लिए छन्द का ज्ञान महत्त्वपूर्ण है। छन्द को जाने बिना, मन्त्र का शुद्ध पाठ भी नहीं हो सकता है। वैदिक संहिताओं में से 'कृष्णयजुर्वेद' और 'अथर्ववेद' में ही आशिकरूप से गद्य है, शेष सभी संहिताएँ छन्दोमय हैं। स्तुतिप्रधान संहिताओं के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने की दृष्टि से भी छन्द का बहुत महत्त्व है।

वेदमन्त्रों में गायत्री, अनुष्टुप आदि छन्दों के प्रयोग को जानना ही इसका उद्देश्य है। उन छन्दों की व्यवस्था को इसमें बताया गया है पाणिनीय शिक्षा के अनुसार छन्द वेद-पुरुष के चरण है। मनुष्य शरीर के समान ही, वेद की गतिमयता के लिए भी, छन्दस्वरूप चरणों की नितान्त आवश्यकता है। इसीलिए प्रातिषाख्यादि ग्रन्थों में छन्दोज्ञान पर बहुत अधिक बल दिया गया है।

छन्द लक्षण

यास्क ने 'छन्द' की व्युत्पत्ति 'छदि' धातु से करते हुए, उसका निर्वचन इस प्रकार किया है-

"छन्दांसि छादनात्।"- निरुक्त, ७।३।।

अर्थात् वेद को छादन करने (ढकने) के कारण ही, इन्हें छन्दस् कहा जाता है। अतः वेदांगों में छन्दों का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

‘कात्यापन’ ने छन्द का लक्षण इस प्रकार हैं—

“यदक्षरपरिणामं तच्छन्दः।”—सर्वानुक्रमणी।

अर्थात् अक्षरों के परिमाण को ‘छन्द’ कहा जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि वैदिक छन्दों में अक्षरों की गणना होती है, मात्राओं की नहीं।

अक्षरगणना के साथ ही वैदिक छन्दों की एक अन्य विशेषता यह है कि उनमें चरणों की संख्या कम से कम एक और अधिक से अधिक पाँच होती है, जबकि लौकिक छन्दों में सदैव चार ही चरण होते हैं।

प्रमुख वैदिक छन्द सात हैं। उनमें पादों और अक्षरों की संख्या इस प्रकार होती है—

प्रमुख वैदिक छन्द

नाम						कुल	अक्षर
	1	2	3	4	5		
1 गायत्री	8 अक्षर	8	8	:	:	—	24
2 उष्णिक्	8 अक्षर	8	12	:	:	—	28
3 अनुष्टुप्	8 अक्षर	8	8	8	:	—	32
4 बृहती	8 अक्षर	8	12	8	:	—	35
5 पंक्ति	8 अक्षर	8	8	8	8	—	40
6 त्रिष्टुप्	11 अक्षर	11	11	11	:	—	44
7 जगती	12 अक्षर	12	12	12	:	—	48

इन्हीं उपयुक्त सात छन्दों में अक्षरों की संख्या, कम और अधिक कर लेने से इनके अन्य अनेक भेद हो जाते हैं।

कात्यायन ने अपने ग्रन्थ—‘सर्वानुक्रमणी’ में ‘ऋग्वेद’ के छन्दों का विवरण दिया है। उनके अनुसार ‘ऋग्वेद’ में प्रयुक्त छन्द इस प्रकार हैं—

	छन्द	संख्या
1.	गायत्री	2467
2.	उष्णिक्	341
3.	अनुष्टुप्	855
4.	बृहती	181
5.	पंक्ति	312

6.	त्रिष्टुप्	4253
7.	जगती	1358

उपयुक्त छन्द : सूची को देखने से प्रकट होता है कि ऋग्वेद में सर्वाधिक प्रयुक्त त्रिष्टुप् है। त्रिष्टुप् से कम प्रयुक्त छन्द गायत्री है और गायत्री से कम प्रयुक्त छन्द जगती है। इसके अनुष्टुप् का नाम आता है। शेष तीन छन्दों—उष्णिक पंक्ति और बृहती का प्रयोग कम संख्या में हुआ है। अतः ऋग्वेद के प्रमुख छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, और जगती, ये तीन ही हैं।

वैदिक छन्दों में, किसी चरण में जब एक अक्षर कम हो जाता है, तब वहाँ सन्धियुक्त अक्षर को, सन्धि हटाकर दो अक्षरों की भाँति पढ़ना होता है जैसे—

“तत्सवितुर्वरेण्यम्” के स्थान पर पढ़ा जाएगा “तत्सवितुर्वरेणिअम्”

छन्द वेदांग का विकास

छन्दों वेदांग का आविर्भाव संहिता—काल में ही हो गया था। संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में ‘छन्द’ शब्द का और प्रमुख छन्दों के नामों का उल्लेख मिलता है। उसके बाद प्रातिशाख्यों में भी छन्दों का विवेचन मिलता है। ‘ऋक्प्रातिशाख्य’ में तो छन्दों का विस्तृत विवेचन हुआ है। शांख्यायन श्रौतसूत्र में भी ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों का विवेचन मिलता है। तथापि, छन्दों वेदांग की प्रतिनिधि रचना “छन्द : सूत्र” नाम से है। इसके रचयित आचार्य पिंगल हैं। “छन्द : सूत्र” के रचना—काल के विषय में कुछ निश्चित ज्ञान नहीं है यह रचना सूत्रों में है। इसमें आठ अध्याय हैं। वैदिक छन्दों के साथ ही इसमें लौकिक छन्दों का भी विवेचन है।

आचार्य पिंगल ने, अपने से पूर्व काल के कुछ आचार्यों का उल्लेख किया है। इसमें यास्क, क्रैष्टुकि, ताण्ड्य, काश्य और सैतव आदि प्रमुख हैं। इनमें से किसी भी आचार्य की छन्दों विषयक कोई रचना अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। आजकल छन्दोविषयक जो रचनाएँ मिलती हैं, इनके नाम इस प्रकार हैं—

1. छन्दोऽर्णव,
2. विष्णुसूत्र
3. छन्दोरहस्य
4. छन्द प्रभाकर
5. छन्द प्रवेश
6. छन्दोरत्नाकर

10.5 सारांश

ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में छन्दों का उल्लेख तथा कहीं-कहीं उनके लक्षण संकेतात्मक भाषा में मिलते हैं। वैदिक मन्त्रों का विवेचन करने वाला प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद प्रातिशाख्य है। वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के लिए छन्दों का ज्ञान अनिवार्य है अर्थात् छन्दों का ज्ञान किए बिना मन्त्रों का उच्चारण शुद्ध नहीं हो सकता। वेदों का अधिकांश भाग छन्दोबद्ध है। जो व्यक्ति छन्द, ऋषि तथा देवता के ज्ञान से हीन होकर मन्त्र का अध्ययन, अध्यापन, यजन और याजन करता है। उसका प्रत्येक कर्म निष्फल होता है। प्रधान छन्दों के नाम संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। जिनसे प्रतीत होता है कि इस वेदाङ्ग की उत्पत्ति वैदिक युग में हुई थी। छन्दोरूप वेदाङ्ग का ग्रन्थ है पिङ्गलाचार्य रचित छन्दःसूत्र। यह ग्रन्थ सूत्र रूप में उपलब्ध है तथा आठ अध्यायों में विभाजित है। तथा ज्योतिष वेदाङ्गों में अन्तिम वेदाङ्ग है। ज्योतिष का मुख्य उपयोग वैदिक यज्ञों की कालगणना के लिए किया जाता था। वेदों के मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ माने जाते थे। यज्ञों के सम्पादन के लिए काल की गणना का, तिथि-ऋतु-वर्ष आदि का, प्रातः-सायं समय का, दिन-रात का विभिन्न नक्षत्रों की स्थितियों का बहुत अधिक महत्त्व था। विभिन्न यज्ञीय प्रक्रियाएँ विभिन्न समयों में होती थीं। जिनकी गणना ज्योतिषी द्वारा की जाती थी। जो व्यक्ति ज्योतिष को भली-भांति जानता है, वहीं यज्ञ का यर्थाथ ज्ञान है।

शब्दार्थ

छन्द	=	आच्छादन
छद्	=	आवृत्त करना
वस्त्र	=	मेघ
छन्द	=	पूजा, स्तुति, प्रसन्न करना
मुहूर्त	=	समय

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'छन्द वेदपुरुष के चरण हैं' इस कथन को स्पष्ट करते हुए वेदों में जिन सात छन्दों का उपयोग हुआ है उनके नाम लिखिये तथा किन्हीं चार छन्दों का परिचय दीजिए।
2. व्याकरण शास्त्र के प्रयोजन पर प्रकाश डालें।
3. वैदिक शब्दों की विशेषताएँ बताते हुए दो छन्दों का परिचय दीजिए।
4. आर्च और याज्य ज्योतिष पर प्रकाश डालिये।

5. वैदिक छन्दों के पादों और अक्षरों की संख्या को तालिका (बितज) द्वारा स्पष्ट करें।
6. वेदाङ्ग ज्योतिष पर सारगर्भित निबन्ध लिखिये।

लघुप्रश्नोत्तर

प्रश्न 1 :वैदिक छन्दों की विशेषताएँ बताते हुए किन्हीं दो छन्दों का परिचय दीजिए।

उत्तर : वैदिक छन्दों की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यह है कि वे अक्षरों की गणना पर आधारित होते हैं। वैदिक छन्दों में गुरु-लघु मात्राओं तथा गण-पद्धति की कोई विशेष अवधारणा नहीं रहती है। किन्तु अन्तिम से पहले वाले अक्षरों की गुरुता तथा लघुता का कुछ महत्त्व अवश्य होता है। वैदिक छन्दों में एक से लेकर आठ पाद प्राप्त होते हैं जबकि लौकिक छन्दों में चार पाद प्राप्त होते हैं।

प्रश्न 2 :आर्य ज्योतिष पर सामान्य परिचय लिखिए।

उत्तर : वेदाङ्ग ज्योतिषशास्त्र के रूप में वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ उपलब्ध है। ये दो भागों में विभाजित है। (1) ऋग्वेदीय या आर्च ज्योतिष (2) यजुर्वेदीय या याजुष ज्योतिष। आर्य ज्योतिष में 36 तथा याजुष में 43 श्लोक हैं। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त एक अन्य ग्रन्थ भी उपलब्ध है। अथर्ववेद-ज्योतिष – इस ग्रन्थ में 162 श्लोक हैं। यह ग्रन्थ-फलादश की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों ग्रन्थों में वेदकालीन ज्योतिष का वर्णन किया गया है।

References

1. छन्दांसि छादनात् – निरुक्त 7/3
2. यजु० 27/45
3. जौ द्रा गः खे इवे डही रोशा, चिन् मू श प्यः सू मा धाणः। याजुष 18
4. अहोरात्रैर्विर्मित त्रिषदङ्गम०। साम 6६३६२ अथर्व 8६२६२९
5. शतं तेड्युतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि। कृष्मः अथर्व 8६२६२९
6. ज्योतिषशास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि सत्यार्थ० समु० 3, पृष्ठ 66



भाषा-विज्ञान की परिभाषा एवं महत्त्व

- 11.1 शीर्षक
- 11.2 प्रस्तावना
- 11.3 उद्देश्य
- 11.4 विषय सामग्री
- 11.5 सारांश
- 11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 11.7 सहायक ग्रन्थ

11.1 शीर्षक

भाषा-विज्ञान की परिभाषा एवं महत्त्व।

11.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ के अन्तर्गत भाषा-विज्ञान का अर्थ, भाषा-विज्ञान की परिभाषा, एवं भाषा-विज्ञान के प्रमुख अङ्गों ध्वनि-विज्ञान, पद-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान तथा अर्थ-विज्ञान का विवेचन किया गया है। इनके अतिरिक्त भाषा-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं यथा वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान, ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान, एवं तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के वर्णन के साथ ही भाषा-विज्ञान की उपयोगिता एवं महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

11.3 उद्देश्य

- ❖ विद्यार्थियों को भाषा-विज्ञान का शाब्दिक अर्थ स्पष्ट करवाना।
- ❖ विविध विद्वानों द्वारा दी गयी भाषा-विज्ञान की विभिन्न विशेषताओं से अवगत करवाना।
- ❖ भाषा-विज्ञान के विभिन्न अंगों से परिचित करवाना।

❖ भाषा-विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता सिद्ध करना।

12.4 विषय सामग्री

भाषा-विज्ञान की परिभाषा एवं महत्त्व

भाषा के विशिष्ट ज्ञान को भाषा-विज्ञान कहते हैं – ‘भाषायाः विज्ञानम्-भाषा-विज्ञानम् ।’ भाषा के वैज्ञानिक और विवेचनात्मक अध्ययन को भाषा-विज्ञान कहा गया है ।

‘भाषा-विज्ञान’ वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वाङ्गीण विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है ।’

भाषाया यत्तु विज्ञानं, सर्वाङ्गं व्याकृतात्मकम् ।

विज्ञानदृष्टिमूलं तद्, भाषाविज्ञानमुच्यते ॥

अनेक विद्वानों ने भाषा-विज्ञान की अनेक परिभाषाएँ दी हैं । जिनमें से कतिपय प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं :-

1. Comparative Philology or simply philology is the science of language. Philology strictly means the study of a language from the literary point of view.

-Dr. P.D. Gune, An introduction to Comparative Philology, p. 1

2. भाषा-विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है ।

—डॉ० मंगलदेव शास्त्री, तुलनात्मक भाषाशास्त्र, पृ० – 3

3. (क) भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को ही भाषा-विज्ञान कहते हैं । वैज्ञानिक अध्ययन से हमारा तात्पर्य सम्यक् रूप से भाषा के बाहरी और भीतरी रूप एवं विज्ञान आदि के अध्ययन से है ।

(ख) भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा-विशिष्ट, कई और सामान्य – का समकालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रायोगिक दृष्टि से अध्ययन और तद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है ।

– डॉ० भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, पृ० 4,7

4. भाषा-विज्ञान का सीधा अर्थ है – भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान । इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा-विज्ञान कहलायेगा ।

—डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषा-विज्ञान की भूमिका, पृ०-176

5. भाषा-विज्ञान को अर्थात् भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं । भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है ।

– डॉ० देवीशंकर द्विवेदी, भाषा और भाषिकी, पृ० – 129

6. **General linguistics may be defined as the science of Language.**

-R.H. Robins, General Linguistics, P.1

7. भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषा-विज्ञान कहा जा सकता है ।

John Lyons, Introduction to Theoretical Linguistic (सैद्धान्तिक भाषा-विज्ञान), पृ० –1

विभिन्न विद्वानों ने भाषा-विज्ञान की परिभाषाएँ देते हुए उनमें भाषा के विभिन्न पक्षों का संकलन किया है। किसी ने भाषा की उत्पत्ति आदि का संग्रह किया है, किसी ने सामान्य भाषा और विशिष्ट भाषा का संग्रह किया है, किसी ने भाषा के अध्ययन की विधियों को उसके अन्तर्गत रखा है और किसी ने भाषा की रचना, तुलना, प्रयोग आदि को स्थान दिया है। किसी ने उन तथ्यों का संग्रह किया है, जिनके द्वारा भाषा में परिवर्तन आदि होते हैं। वस्तुतः भाषा-विज्ञान की परिभाषा में अध्ययन के प्रकारों, भाषा के स्वरूप एवं परिवर्तन के कारणों आदि का पूर्णतया उल्लेख न सम्भव है, न अभीष्ट ही है।

भाषा-विज्ञान में विज्ञान शब्द तात्त्विक आलोचना, तात्त्विक दर्शन और तात्त्विक विश्लेषण के आधार पर है। जिस प्रकार विज्ञान प्रत्येक वस्तु के अंग-प्रत्यंग एवं सूक्ष्मतम अवयव का विवेचन और विश्लेषण करता है, उसी प्रकार भाषा-विज्ञान वर्ण, पद और वाक्य के सूक्ष्मतम अवयवों का विवेचन एवं विश्लेषण करता है। विज्ञान का उद्देश्य है – कार्य-कारण-भाव की नित्यता की स्थापना। विज्ञान बताता है कि अमुक कारण की सत्ता से अमुक कार्य होता है। भाषा विज्ञान भी इसी कार्य-कारण-भाव को अपनाता है। यह बताता है कि इन विभिन्न परिस्थितियों में ये परिवर्तन होते हैं। इन कारणों के फलस्वरूप ये कार्य होंगे। भौतिक-विज्ञान आदि में अपवाद नहीं माने जाते, परन्तु भाषा-विज्ञान में अपवादों की संख्या भी पर्याप्त है। इसमें नियम और अनुभूति दोनों का समन्वय है, अतः यह शुद्ध विज्ञान न होकर मिश्रित विज्ञान है।

भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध किसी एक भाषा से नहीं है। इसका सम्बन्ध मानवमात्र की भाषा से है। विश्व की समस्त भाषाएँ भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में आती हैं। समस्त भाषाओं का विवेचनात्मक अध्ययन, विश्लेषण, उनकी उत्पत्ति और विकास तथा उनकी तुलना आदि भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में केवल साहित्यिक भाषाओं का ही अध्ययन नहीं होता, अपितु असभ्य, अर्धसभ्य एवं ग्रामीण लोगों की बोलियों का भी विषेण सावधानी के साथ अध्ययन किया जाता है। भाषा-विज्ञान वर्तमान और अतीत दोनों प्रकार की भाषाओं का अध्ययन करता है। वह त्रैकालिक तथ्यों का अनुसंधान करता है और उनका प्रकाशन करता है। मानव की प्रवृत्ति का जितना सूक्ष्मतम अध्ययन भाषा-विज्ञान प्रस्तुत करता है, उतना अन्य विज्ञान नहीं। भाषा-विज्ञान एक ओर व्याकरण का कार्य करता

है तो दूसरी ओर मनोविज्ञान का। यह एक ओर सामान्य नियमों का निर्देश करता है तो दूसरी ओर उसके दार्शनिक पक्ष को स्पष्ट करता है। इस दार्शनिक पक्ष की व्याख्या में उसे अन्य अनेक विज्ञानों का सहयोग लेना पड़ता है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान का क्षेत्र केवल व्याकरण और दर्शन तक ही सीमित न रहकर विज्ञान और शास्त्रों के अनेक अंगों तक व्याप्त है।

भाषा-विज्ञान भाषा का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करता है, अतः उसमें भाषा के सभी घटकों का अध्ययन होता है। भाषा शब्द के द्वारा उसके चार घटकों का मुख्य रूप से बोध होता है – **ध्वनि, पद या शब्द, वाक्य** और **अर्थ**। भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि है। उसका ही सर्वप्रथम उच्चारण होता है। अनेक पदों से वाक्य की रचना होती है और वाक्य से अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। इनमें से प्रत्येक के विशेष अध्ययन के कारण भाषा-विज्ञान के चार प्रमुख अंग विकसित हो गये हैं।

1) **ध्वनि-विज्ञान** – इसमें भाषा के मूल तत्त्व ध्वनि का व्यापक अध्ययन किया जाता है। इसमें मुख्य रूप से इन विषयों का संकलन होता है – ध्वनि क्या है? ध्वनियाँ कितनी हैं? इनका वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है? ये ध्वनियाँ कैसे और कहाँ से उत्पन्न होती हैं? किस प्रकार ध्वनियों का सम्प्रेषण होता है? ध्वनियों के भेद का क्या कारण है? एकाधिक ध्वनियों के संयोग से क्या परिवर्तन होता है? ध्वनियों में तीव्रता और मन्दता क्यों आती है? ध्वनि-नियम क्या है? स्वनिम, स्वनिमी आदि का निरूपण करना।

2) **पद-विज्ञान** – अनेक ध्वनियों के समन्वय से पद या शब्द बनता है। पद-विज्ञान को **रूप-विज्ञान, रूप-विचार** और **पद-विचार** भी कहा जाता है। इसमें पद या रूप क्या है? पद कैसे बनता है? पद के घटक अवयव क्या हैं? पदों का विभाजन किस आधार पर होता है? लिंग, विभक्ति, वचन, पुरुष, काल, प्रकृति, प्रत्यय, उपसर्ग आदि तत्त्व क्या हैं? इनकी क्या उपयोगिता है? शब्द और पद में क्या अन्तर होता है? पद-निर्माण कितने प्रकार का होता है? इत्यादि विषयों का पद-विज्ञान में विवेचन किया जाता है।

3) **वाक्य-विज्ञान** – जिस प्रकार विभिन्न ध्वनियों के समन्वय से पद या रूप बनता है। वाक्य-विज्ञान में वाक्य की रचना किस प्रकार होती है? वाक्य में पदों का अन्वय किस प्रकार होता है? अन्वय का आधार क्या है? कर्ता, क्रिया, कर्म आदि का किस स्थान पर निवेश होता है? वाक्य के कितने भेद हैं? इत्यादि बातों का विवेचन किया जाता है। वाक्य-विज्ञान को वाक्य-विचार, वाक्य-रचना-शास्त्र भी कहा जाता है। वाक्य-विज्ञान को तीन भागों में विभक्त किया गया है –

1. वर्णनात्मक वाक्य-विज्ञान
2. ऐतिहासिक वाक्य-विज्ञान
3. तुलनात्मक वाक्य-विज्ञान

वर्णनात्मक वाक्य-विज्ञान में वाक्य की रचना का सामान्य विवरण प्रस्तुत किया जाता है। ऐतिहासिक वाक्य-विज्ञान में वाक्य की रचना का इतिहास भी दिया जाता है और तुलनात्मक वाक्य-विज्ञान में दो या अनेक भाषाओं के वाक्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

4) **अर्थ-विज्ञान** – जिस प्रकार मानव-शरीर का सार भाग आत्मा है, उसी प्रकार भाषा-रूपी शरीर की आत्मा अर्थ है। अर्थ विज्ञान को अर्थ-विचार भी कहते हैं। इसमें अर्थ किसे कहते हैं? शब्द और अर्थ का क्या सम्बन्ध है? अर्थ का निर्धारण कैसे हुआ? अर्थ-परिवर्तन क्यों और कैसे होता है? अर्थ परिवर्तन की क्या दिशाएँ हैं? अर्थ-परिवर्तन के क्या कारण हैं? इत्यादि बातों पर विचार किया जाता है। इसका भी समकालिक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक तीनों रूपों में अध्ययन हो सकता है। इसमें पर्यायवाची शब्द, नानार्थक शब्द, विलोम शब्द आदि का भी विवेचन किया जाता है।

भाषा-विज्ञान के कतिपय अन्य विषय जिन्हें इसका गौण अंग समझना चाहिए इस प्रकार हैं –

1) **भाषा की उत्पत्ति** – भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई? इस विषय में भाषा शास्त्रियों का क्या मत है? भाषा का विकास कैसे हुआ? आदि बातों पर विवेचन किया जाता है।

2) **भाषाओं का वर्गीकरण** – संसार की विभिन्न भाषाओं को रूप या आकृति के आधार पर तथा भौगोलिक आधार पर अलग-अलग वर्गों में विभक्त किया गया है। रूप के आधार पर होने वाले वर्गीकरण को **रूपतामक** या **आकृतिमूलक वर्गीकरण** कहते हैं और भौगोलिक आधार पर होने वाले वर्गीकरण को **पारिवारिक वर्गीकरण** या **ऐतिहासिक वर्गीकरण** कहते हैं। इस आधार पर निश्चित किया जाता है कि कौन-कौन सी भाषाएँ किस वर्ग में आती हैं। उनकी समानताओं और विषमताओं का भी इसमें अध्ययन किया जाता है।

3) **कोश-विज्ञान** – इस विज्ञान में कोश-रचना का प्रकार बताया जाता है। शब्दों की व्युत्पत्ति क्या है? शब्दों का अर्थ कैसे निर्धारित किया जाता है? प्रत्येक शब्द का किन अर्थों में प्रयोग होता है? एकार्थक, अनेकार्थक, विषमार्थक शब्दों की व्याख्या आदि इस विज्ञान के अंग हैं। व्युत्पत्ति-शास्त्र भी **कोश-विज्ञान** के अन्तर्गत आता है। व्युत्पत्ति-शास्त्र के लिए संस्कृत का निरुक्त शब्द प्रचलित है। इसकी वेद के षडंगों में गणना है। **कोश-विज्ञान** में निर्वचन-शास्त्र का पूरा उपयोग होता है, अतः व्युत्पत्ति-शास्त्र को कोश-विज्ञान के अन्तर्गत माना जाता है।

4) **लिपि-विज्ञान** – इसमें लिपि की उत्पत्ति, विकास और उसकी उपयोगिता आदि पर विचार किया जाता है। लिपि के आधार पर ही किसी भाषा का अध्ययन किया जाता है, अतः इसे भी भाषा-विज्ञान का अंग माना जाता है।

5) **भाषिक-भूगोल** – भौगोलिक क्षेत्र-विस्तार की दृष्टि से किसी क्षेत्र-विशेष में कौन-सी भाषा बोली जाती है? उसकी कितनी उपबोलियाँ हैं और वे कहाँ-कहाँ प्रयुक्त होती हैं? भाषाओं की सीमा का निर्धारण कैसे होता है? सीमाओं की मिलने वाली भाषाएँ या बोलियाँ एक-दूसरी को किस प्रकार प्रभावित करती हैं?

- 6) **प्रागैतिहासिक खोज** – इसमें भाषा विज्ञान के आधार पर प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। भाषा-विज्ञान ही एकमात्र साधन है, जिसके द्वारा प्राचीन संस्कृतियों का यथार्थ ज्ञान हो सकता है।
- 7) **शैली-विज्ञान** – इसमें अध्ययन किया जाता है कि किसी भाषा के लेखक या कवि आदि भाषा के किन शब्दों को मुख्य रूप से अपनाते हैं, उनकी शैली की क्या विशेषताएँ हैं? इस विज्ञान के द्वारा लेखक, कवि और वक्ता का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। व्यक्तिगत अन्तर एवं शैली-सम्बन्धी अन्तर का अध्ययन शैली-विज्ञान का विषय है।
- 8) **भू-भाषा-विज्ञान** – इसमें विश्व की भाषाओं का विभाजन तथा उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव का संग्रह किया जाता है। साथ ही विभिन्न देशों की संस्कृतियाँ किस प्रकार भाषा को प्रभावित करती हैं तथा राष्ट्र भाषा या राजभाषा जैसी समस्याओं का अध्ययन इसके अन्तर्गत आता है।
- 9) **समाज-भाषा-विज्ञान** – इसमें भाषा और समाज का सम्बन्ध तथा समाज के विभिन्न स्तरों पर प्रयुक्त भाषा की ध्वनि, रूप, वाक्य और अर्थ आदि की विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।
- 10) **मनोभाषा विज्ञान** – इसमें भाषा और विचार का सम्बन्ध, भाषा का मानस पटल पर प्रभाव, भाषा और अनुभूति आदि मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है।

इनके अतिरिक्त भाषा-विज्ञान का इतिहास, बोली विज्ञान, सुर-विज्ञान, भाषा-विकास, भाषा के विविध रूप एवं उनके बनने के कारण, भाषा की प्राकृति आदि का भी अध्ययन भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

भाषा-विज्ञान की शाखाएँ – भाषा-विज्ञान में भाषा से सम्बद्ध सभी विषय आते हैं। भाषा-विज्ञान की तीन शाखाएँ हैं –

- 1) **वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान** – इसमें किसी एक भाषा का किसी काल विशेष से सम्बद्ध स्वरूप एवं उसका विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। यह भाषा वर्तमान काल की हो सकती है। यदि उसका प्राचीन साहित्य विद्यमान हो तो वह भूतकाल की भी हो सकती है। जैसे – संस्कृत, ग्रीक, लैटिन और अंग्रेजी आदि का प्राचीन साहित्य उपलब्ध है और इनका वर्णनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। वर्णनात्मक विवेचन में उसका ध्वनि-विज्ञान, रूप-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान और अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से विवेचन किया जाता है। इसे दूसरे शब्दों में व्याकरण कहा जा सकता है। इसका सम्बन्ध उसके विद्यमान स्वरूप से है।
- 2) **ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान** – इसमें भाषा के क्रमिक विकास का इतिहास प्रस्तुत किया जाता है। भाषा का आदि रूप क्या था? उसमें परिवर्तन होते हुए मध्ययुगीन रूप क्या था और उसका वर्तमान रूप क्या है? इसमें कम से कम दो कालों का क्रमिक विकास दिखाना आवश्यक है। ध्वनि, पद और वाक्यों में किस प्रकार क्रमशः विकास आया? किस युग में उसका क्या स्वरूप हुआ और उसका वर्तमान विकसित रूप क्या हुआ? यह ऐतिहासिक

भाषा-विज्ञान बताता है। भाषा में क्या-क्या परिवर्तन हुए? उनके क्या कारण थे? इत्यादि का विवेचन भी इसका विषय है। वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान एककालिक या समकालिक है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान कालक्रमिक है। इसमें विभिन्न कालों के रूपों का अध्ययन किया जाता है।

3) तुलनात्मक भाषा-विज्ञान – इसमें दो या अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। यह तुलना किसी एक काल-विशेष या अनेक कालों के आधार पर की जाती है। इसमें भाषा की ध्वनियाँ, पद और वाक्य सभी दृष्टि से तुलना की जाती है। तुलनात्मक भाषा-विज्ञान में वर्णनात्मक और ऐतिहासिक दोनों प्रणालियों का पूर्ण सहयोग रहता है। संस्कृत, लैटिन और ग्रीक की तुलना ने ही इस तुलनात्मक भाषा-विज्ञान को जन्म दिया है और यह भाषा-विज्ञान की महत्त्वपूर्ण शाखा है।

भाषा-विज्ञान की उपयोगिता एवं महत्त्व

भाषा-विज्ञान एक विज्ञान है और प्रत्येक विज्ञान स्वयं में एक निरपेक्ष अध्ययन होता है। उसके अध्ययन में उपयोगिता की अपेक्षा ज्ञानवर्द्धन का दृष्टिकोण ही अधिक रहता है। अतः भाषा-विज्ञान के अध्ययन की कुछ महत्त्वपूर्ण उपयोगिता का विवरण इस प्रकार है—

1. भाषा-विज्ञान भाषा के सम्बन्ध में उत्पन्न हमारी सभी जिज्ञासाओं का समाधान करके न केवल हमें मानसिक सन्तोष प्रदान करता है, अपितु हमारी भाषा-सम्बन्धी पकड़ को मजबूत बनाता है।
2. भाषा-विज्ञान की सहायता से अनेक भाषाओं का ज्ञान सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। इस विषय में **स्वनिम-विज्ञान** हमारा विशेष सहायक होता है।
3. विभिन्न भाषाओं का अध्ययन न केवल ज्ञानार्जन की दृष्टि से उपयोगी है, अपितु इससे भिन्न-भिन्न जातियों और देशों के विषय में मनुष्य का दृष्टिकोण उदार बनता है और उसके हृदय में **विश्वबन्धुत्व** एवं **विश्व-मैत्री** की भावना प्रबल होती है।
4. प्राचीन ग्रन्थों के पाठ संशोधन एवं अर्थबोध में भाषा-विज्ञान से सहायता मिलती है।
5. प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति के ज्ञान का साधन एकमात्र भाषा-विज्ञान है। आर्य जाति, द्राविड़ जाति, प्राचीन मिश्र और असीरिया की जातियों की संस्कृति का बोध भाषा-विज्ञान के द्वारा ही हुआ है।
6. मानवता के मानसिक विकास की कहानी का ज्ञान भाषा से ही होता है। अदिम मानव से लेकर आज तक के मानव के मानसिक विकास को जानने के लिए भाषाविज्ञान हमारा पथप्रदर्शक बन सकता है।
7. भाषा-विज्ञान सांकेतिक लिपि के उन्नयन के द्वारा लिपियों में संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन करने में सहायक होता है।

8. भाषा-विज्ञान के ज्ञान द्वारा व्याकरण, साहित्य, मनोविान, शरीर-विज्ञान, भूगोल, इतिहास, भौतिक-विज्ञान आदि विषयों का भी परिचय मिल जाता है।
9. भाषा-विज्ञान के द्वारा वाक्-चिकित्सा के अन्तर्गत तुतलाना, हकलाना, अशुद्ध उच्चारण, अशुद्ध या अस्पष्ट श्रवण आदि दोषों को दूर किया जा सकता है।
10. भाषा-विज्ञान भाषा-विषयक यंत्रों के निर्माण में विशेष सहयोगी है। भाषा-विज्ञान इनके लिए शुद्ध एवं उपयोगी संकेत चिह्न प्रदान करता है।
11. भाषा-विज्ञान वेदार्थ-ज्ञान में सहायक है तथा लैटिन, ग्रीक, अवेस्ता आदि भाषाओं के अध्ययन ने अनेक वैदिक शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया है।
12. उपर्युक्त उपयोगिताओं के अतिरिक्त अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करने में भी भाषा-विज्ञान हमारे लिए सहायक सिद्ध होता है। संसार के सारे ही ज्ञान-विज्ञान भाषा का ही आधार लेकर चलते हैं और भाषा का सम्बन्ध भाषा-विज्ञान से होने के कारण सभी विज्ञानों का सम्बन्ध भाषा-विज्ञान से जुड़ जाता है। इस दृष्टि से भी भाषा-विज्ञान का महत्त्व एवं उपयोगिता सर्वमान्य है।

11.5 सारांश

उपर्युक्त पाठ में यह स्पष्ट किया गया है कि भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा-विज्ञान कहलाता है। जिस प्रकार विज्ञान प्रत्येक वस्तु के अंग-प्रत्यंग एवं सूक्ष्मतम अवयव का विवेचन और विश्लेषण करता है, उसी प्रकार भाषा-विज्ञान वर्ण, पद और वाक्य के सूक्ष्मतम अवयवों का विवेचन एवं विश्लेषण करता है। विश्व की समस्त भाषाओं का अध्ययन भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। भाषा-विज्ञान के मुख्यतः चार अंग हैं – ध्वनि-विज्ञान, पद-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान एवं अर्थ-विज्ञान। इनके अतिरिक्त कोष-विज्ञान, लिपि-विज्ञान, शैली-विज्ञान एवं भू-भाषा विज्ञान का अध्ययन भी भाषा विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। भाषा-विज्ञान भाषा के सम्बन्ध में उत्पन्न हमारी सभी जिज्ञासाओं का समाधान करने में सहायक है। विश्व के समस्त ज्ञान-विज्ञान भाषा का ही आधार लेकर चलते हैं और भाषा का सम्बन्ध भाषा-विज्ञान से होने के कारण सभी विज्ञान भाषा-विज्ञान से सम्बद्ध हैं।

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भाषा-विज्ञान की परिभाषा एवं महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
2. भाषा-विज्ञान के विविध अंगों का परिचय दीजिए।
3. भाषा-विज्ञान की उपयोगिता सिद्ध कीजिए।

11.7 सहायक ग्रन्थ

1. भाषा-विज्ञान – डॉ० भोलानाथ तिवारी।
2. भाषा-विज्ञान – डॉ० कर्ण सिंह।
3. भाषा-विज्ञान – डॉ० चक्रधर कर्णाटक।
4. तुलनात्मक भाषा विज्ञान – डॉ० पाण्डुरंग दामोदर गुणे।

अनुवाद – डॉ० भोलानाथ तिवारी।

भाषा की परिभाषा एवं विशेषताएँ

- 12.1 शीर्षक
- 12.2 प्रस्तावना
- 12.3 उद्देश्य
- 12.4 विषय सामग्री
- 12.5 सारांश
- 12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 12.7 सहायक ग्रन्थ

12.1 शीर्षक

भाषा की परिभाषा एवं विशेषताएँ

12.2 प्रस्तावना

‘भाषा’ का जीवन में पग-पग पर व्यवहार करने पर भी ‘भाषा’ शब्द का अर्थ बतलाना उतना सरल नहीं है। सामान्य अर्थ में मानव के भाव एवं विचार के संचार-माध्यम को ‘भाषा’ कहते हैं। भाषा की परिभाषा के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत किये हैं। प्रस्तुत पाठ में उन सभी मतों का समीक्षात्मक वर्णन प्रस्तुत कर भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

12.3 उद्देश्य

- ❖ विद्यार्थियों को ‘भाषा’ शब्द के वास्तविक अर्थ से अवगत करवाना।
- ❖ विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी भाषा की विविध विशेषताओं से परिचित करवाना।
- ❖ भाषा की विशेषताओं से पाठकों को अवगत करवाना।

12.4 विषय सामग्री

(i) भाषा की परिभाषा

भाषा-विज्ञान में जिस भाषा का ग्रहण है वह सांकेतिक आदि से भिन्न मानवीय व्यक्त वाणी है। भाषा शब्द की व्युत्पत्ति किस प्रकार से होती है। 'भाषा' शब्द संस्कृत की भाष् (भ्वादिगणी) धातु से बना है। भाष् धातु का अर्थ है – (भाषा व्यक्तायां वाचि) व्यक्त वाणी।

'भाष्यते व्यक्तवाग् रूपेण अभिव्यज्यते इति भाषा'

अर्थात् व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है, उसे भाषा कहते हैं। मुख्य रूप से भाषा शब्द से मानवीय व्यक्त-वाणी का ही ग्रहण होता है।

भाषा की परिभाषा के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, अभी तक कोई विद्वान भाषा का सर्वसम्मत लक्षण नहीं दे सका है। संघटनात्मक दृष्टि से भाषाशास्त्रियों ने भाषा की परिभाषा यह की है –

भाषा यादश्छिक वाचिक ध्वनि-संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है।

इस परिभाषा में चार बातों पर ध्यान देना जरूरी है –

1. भाषा एक पद्धति है।
2. भाषा संकेतात्मक है।
3. भाषा वाचिक ध्वनि-संकेत है।
4. भाषा यादश्छिक संकेत है।

भाषा की कतिपय परिभाषाएँ इस प्रकार से हैं –

1. **प्लेटो के अनुसार** – प्लेटो ने विचार और भाषा के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है कि विचार और भाषा में थोड़ा ही अन्तर है। विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है, तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।
2. **स्वीट के अनुसार** – ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।
3. **भोलानाथ तिवारी के अनुसार** – अपने व्यापकतम रूप में भाषा का अर्थ है – हमारे विचारों और

मनोभावों को व्यक्त करने वाले ऐसे संकेतों का कुल योग जो देखे या सुने जा सकें और इच्छानुसार उत्पन्न किए एवं दोहराए जा सकें।

4. **श्री श्याम सुन्दर दास के अनुसार** – “विचार की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों के व्यवहार को भाषा कहते हैं।”

5. **ब्लाक तथा ट्रैगर के अनुसार** – A language is a system of arbitrary vocal symbol by means of which a society group co-operates.

6. **विश्वकोशों के अनुसार भाषा की परिभाषा** – A language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which, human beings, as member of a social group and participants in culture interact and communicate.

भाषा की अधिक व्यवस्थित और सर्वसमावेशी परिभाषा इस प्रकार से है –

“भाषा मानव उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह संरचनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचार विनिमय करते हैं। लेखक, कवि या वक्ता के रूप में अपने भावों या अनुभावों को व्यक्त करते हैं तथा अपने व्यक्तित्व और सामाजिक व्यक्तित्व, विशिष्टता तथा अस्मिता के सम्बन्ध में जाने-अनजाने जानकारी देते हैं”।

भाषा की विशेषताएँ

1. **भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है**

मानवीय भाषा पैतृक परम्परा से नहीं अपितु शिक्षा के द्वारा एक व्यक्ति तक संक्रमित होती है। अन्य पैतृक सम्पत्ति की भांति भाषा हमें यों हि अपने माँ बाप से नहीं मिलती। बाल्यकाल में हम अपनों से बड़ों का तथा अपने समकालीन व्यक्तियों का अनुकरण करके भाषा सीखते हैं। इस प्रकार तथा अन्य साधनों से जो ज्ञान अर्जित किया जाता है, उसे हम अपनी अगली पीढ़ी को दे देते हैं। इस तरह पूर्वजों के ज्ञान का लाभ उठाते हुए शीघ्र ज्ञान-वृद्धि का अवसर मिलता है।

2. **भाषा में विशेषीकरण**

प्रत्येक मानवीय भाषा की अपनी एक विशेष पद्धति है, जिसके द्वारा अपने ढाँचे और अर्थ में सीमित रहते हुए वह भाव-संप्रेषण का कार्य सरलता से करती है। अपने बोध्य अर्थ या क्रिया से इसका साक्षात् भौतिक सम्बन्ध नहीं के बराबर होता है।

3. भाषा सर्वव्यापक होते हुए भी स्थानीकृत होती है

भाषा के सर्वव्यापक होने पर भी हम देखते हैं कि सभी मनुष्य एक ही भाषा का प्रयोग नहीं करते हैं। भारत, जर्मन, रूस, अमेरिका आदि देशों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। हमारे देश भारत में ही अनेक भाषाएँ हैं। फिर थोड़े-थोड़े स्थानभेद से भी भाषा-भेद हो जाता है। इस भाषा-भेद को भाषा का स्थानीकृत रूप कहा जाता है। इस स्थानीकृत का मुख्य आधार भी भौगोलिक होता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषा में बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि भेद स्थानीकृत ही हैं। कभी-कभी इससे छोटे भूभागों में भी भाषा स्थानीकृत हो जाती है।

4. भाषा सामाजिक वस्तु है

बच्चा जिस समाज में जन्मता, पलता है, वह उसी समाज की भाषा को सीखता-बोलता है। इतना ही नहीं, भाषा पूर्णतः आदि से अंत तक समाज से सम्बंधित है। उसका विकास समाज में ही होता है और इसलिए यह एक सामाजिक संस्था है। यों, अकेले में, हम भाषा के सहारे सोचते अवश्य हैं किन्तु वह भाषा इस सामान्य मुखर भाषा से भिन्न है जिसकी परिभाषा पीछे की जा चुकी है।

5. भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा होता है

भाषा को हम 'अनुकरण द्वारा' सीखते हैं। शिशु के समक्ष माँ 'दूध' कहती है। वह सुनता है और धीरे-धीरे उसे स्वयं कहने का प्रयास करता है। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक **अरस्तु** के शब्दों में अनुकरण मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है। वह भाषा सीखने में भी उसी गुण का उपयोग करता है।

6. भाषा चिर परिवर्तनशील है

अनुकरण-प्रिय प्राणी होने पर भी मनुष्य अनुकरण की कला में पूर्ण नहीं है। अनुकरण का 'पूर्ण' या 'ठीक' न होना कई बातों पर आधारित है। भाषा के दो आधार माने गये हैं-शारीरिक (भौतिक) और मानसिक। परिवर्तन में ये दोनों ही कार्य करते हैं। अनुकरणकर्ता की शारीरिक और मानसिक परिस्थिति सर्वदा ठीक वैसी ही नहीं रहती जैसी कि उसकी रहती है जिसका अनुकरण किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक अनुकरण में कुछ न कुछ विभिन्नता आ जाना उतना ही स्वभाविक है जितना कि अनुकरण करना। ये साधारण और छोटी-छोटी विभिन्नताएँ ही भाषा में परिवर्तन उपस्थित किया करती हैं।

7. भाषा का कोई अन्तिम स्वरूप नहीं है

भाषा कभी पूर्ण नहीं हो सकती अर्थात् यह कभी नहीं कहा जा सकता कि अमुक भाषा का अमुक रूप अन्तिम है। मृत भाषा का अन्तिम रूप तो अवश्य ही अन्तिम होता है पर जीवित भाषा में यह बात नहीं है। जैसा कि अन्य सभी

के लिए सत्य है, भाषा के विषय में असत्य नहीं है कि परिवर्तन और अस्थैर्य ही उसके जीवन का द्योतक है। पूर्णता और स्थिरता मृत्यु है, या मृत्यु ही पूर्णता या स्थिरता है।

8. प्रत्येक भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है

हर भाषा की अपनी एक भौगोलिक सीमा होती है। सीमा के भीतर ही उस भाषा का अपना वास्तविक क्षेत्र होता है। उस सीमा के बाहर उसका स्वरूप थोड़ा या अधिक परिवर्तित हो जाता है, या उस सीमा के बाहर किसी पूर्णतः भिन्न भाषा की सीमा शुरू हो जाती है।

9. प्रत्येक भाषा की एक ऐतिहासिक सीमा होती है

प्रत्येक भाषा इतिहास के किसी निश्चित काल से प्रारम्भ होकर इतिहास के निश्चित काल तक व्यवहृत होती है तथा वह भाषा अपने काल की परिवर्ती या पूर्ववर्ती भाषा से भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, मोटे रूप से **प्राकृत** भाषा का काल पहली ईस्वी से 500 ई0 तक माना जाता है। इस कड़ी में इसके पूर्व पालि भाषा थी, तथा इसके बाद अपभ्रंश और ये दोनों भाषाएँ (पालि तथा अपभ्रंश) प्राकृत से भिन्न हैं।

10. प्रत्येक भाषा की अपनी संरचना अलग होती है

दूसरे शब्दों में किन्हीं भी दो भाषाओं का ढाँचा पूर्णतया एक नहीं होता है। उनमें ध्वनि, शब्द, रूप वाक्य या अर्थ आदि में किसी भी एक स्तर पर या एक से अधिक स्तरों पर संरचना या ढाँचे में अन्तर अवश्य होता है। यही अन्तर उनकी अलग या स्वतन्त्र सत्ता का कारण बनता है।

11. भाषा की धारा स्वभावतः कठिनता से सरलता की ओर जाती है

सभी भाषाओं के इतिहास से भाषा के कठिनता से सरलता की ओर जाने की बात स्पष्ट है। मनुष्य का यह जन्मजात स्वभाव है कि कम से कम प्रयास में अधिक से अधिक लाभ उठाना। इसी 'कम प्रयास' के प्रयास में वह 'सत्येन्द्र' को 'सतेन्द्र' और फिर 'सतेन' कहने लगता है और एक अवस्था ऐसी आ जाती है जब यह केवल 'सति' कहकर ही काम चलाना चाहता है। यह उदाहरण 'ध्वनि' से सम्बन्धित है। किन्तु व्याकरण के रूपों के बारे में भी यही बात है। **ग्रीक, संस्कृत** आदि पुरानी भाषाओं में रूपों और अपवादों का बाहुल्य है किन्तु आधुनिक भाषाओं में रूप कम हो गये हैं, साथ ही नियम बढ़ गये हैं और अपवाद कम हो गये हैं और आगे भी कम होते जा रहे हैं।

12. भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता और अप्रौढ़ता से प्रौढ़ता की ओर जाती है

आरम्भ में भाषा स्थूल थी, सूक्ष्म भावों के लिए या विचारों को गहराई से व्यक्त करने के लिए अपेक्षित सूक्ष्मता उसमें नहीं थी, फिर धीरे-धीरे उसने इसकी प्राप्ति की। इसी प्रकार दिन-पर-दिन भाषा में विकास होता रहा है और

वह अप्रौढ़ से प्रौढ़ और प्रौढ़ से प्रौढतर होती जा रही है। यह एक सामान्य सिद्धान्त तो है, किन्तु प्रयोग पर भी निर्भर करता है। आज की हिन्दी की तुलना में कल की हिन्दी अधिक सूक्ष्म और प्रौढ़ होगी, किन्तु संस्कृत की तुलना में आज की हिन्दी को सूक्ष्म और प्रौढ़ नहीं कह सकते, क्योंकि उन अनेक क्षेत्रों में प्रयुक्त होकर अभी तक हिन्दी विकसित नहीं हुई, जिनमें संस्कृत हजारों वर्ष पूर्व हो चुकी हो।

13. भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती है

पहले लोगों का विचार था कि भाषा वियोग या विश्लेष से संयोग या संश्लेष की ओर जाती है। कुछ लोगों का यह भी मत रहा है कि बारी-बारी से भाषाओं की जिन्दगी दोनों स्थितियों से गुजरती रहती है। किन्तु अब ये मत प्रायः भ्रामक सिद्ध हो चुके हैं। नवीन मत के अनुसार भाषा संयोग से वियोग की ओर जाती है। संयोग का अर्थ हे मिली होने की स्थिति, जैसे 'रामःगच्छति' तथा वियोग का अर्थ है अलग हुई स्थिति, जैसे 'रामः जाता है'। संस्कृत केवल 'गच्छति' (संयुक्त रूप) से काम चल जाता है पर हिन्दी में 'जाता है' (वियुक्त रूप) का प्रयोग करना पड़ता है।

14. हर भाषा का स्पष्टतः या अस्पष्टतः एक मानक रूप होता है।

15. यादृच्छिकता

भाषा के किसी अवयव (संज्ञा, क्रिया आदि) और अर्थ के मध्य में कोई जन्म सिद्ध निश्चित सम्बन्ध नहीं है। सभी शब्दों के अर्थ यादृच्छिक (स्वेच्छा से रखे गये) हैं। वे प्रत्येक भाषा में संकेत-जन्य हैं।

12.5 सारांश

सामान्यतः अभिप्राय व्यक्त करने के प्रत्येक साधन को; जैसे – इङ्गित, मुद्रा, मुख-विकार आदि को हम भाषा कह देते हैं। इसके अन्तर्गत पशु-पक्षियों की भाषा भी आ जाती है। यह भाषा का व्यापक अर्थ है। परन्तु भाषा –विज्ञान में केवल मौखिक भाषा, मानवकण्ठ से निःसृष्ट यौक्तिक भाषा का ही अध्ययन किया जाता है। भाषा की भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक परिभाषाएँ दी हैं; जिनके आधार पर भाषा की अनेक विशेषताएँ हमारे सामने आती हैं। इन विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है न कि पैतृक-सम्पत्ति। भाषा परिवर्तनशील है और इसका अर्जन अनुकरण द्वारा होता है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा की एक ऐतिहासिक एवं भौगोलिक सीमा भी होती है।

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी भाषा की परिभाषाएँ वर्णित करें।
2. भाषा की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. 'भाषा' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुये उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

12.7 सहायक ग्रन्थ

1. भाषा -विज्ञान – डॉ० भोलानाथ तिवारी।
2. भाषा -विज्ञान – डॉ० कर्ण सिंह।
3. भाषा -विज्ञान – डॉ० चक्रधर कर्णाटक।
4. तुलनात्मक भाषा विज्ञान – डॉ० पाण्डुरंग दामोदर गुणे।

अनुवाद – डॉ० भोलानाथ तिवारी।



**भाषा के विविध रूप – बोली, परिनिष्ठित भाषा,
साहित्यिक भाषा, राष्ट्रभाषा।**

- 13.1 शीर्षक
- 13.2 प्रस्तावना
- 13.3 उद्देश्य
- 13.4 विषय सामग्री
- 13.5 सारांश
- 13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 13.7 सहायक ग्रन्थ

13.1 शीर्षक

भाषा के विविध रूप – बोली, परिनिष्ठित भाषा, साहित्यिक भाषा, राष्ट्रभाषा।

13.2 प्रस्तावना

‘भाषा’ के विविध रूप हैं। कालभेद, स्थानभेद, देशभेद, एवं स्तरभेद आदि के आधार पर भाषाओं की अनेक रूपता दृष्टिगोचर होती है। इन रूपों में बोली, भाषा, मूल भाषा, राष्ट्र भाषा, साहित्यिक भाषा, परिनिष्ठित भाषा, कृत्रिम-भाषा, मिश्रित भाषा आदि प्रमुख हैं। प्रस्तुत पाठ में भाषा के बोली, परिनिष्ठित-भाषा, साहित्यिक-भाषा एवं राष्ट्र-भाषा आदि रूपों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

13.3 उद्देश्य

- ❖ पाठकों को भाषा के विविध रूपों से परिचित करवाना।
- ❖ भाषा के विविध रूपों के बनने का कारण स्पष्ट करना।

- ❖ भाषा के विविध रूपों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत कराना।
- ❖ विद्यार्थियों को भाषा के विभिन्न रूपों की भौगोलिक पृष्ठभूमि का ज्ञान देना।

13.4 विषय सामग्री

भाषा के अन्तर्गत भाषा के बहुत से रूप आते हैं। ये रूप प्रमुखतः दो आधारों पर आधारित हैं इतिहास और भूगोल। इन दोनों आधारों पर भाषा के विभिन्न रूप बनते हैं। भारत में कभी संस्कृत बोली जाती थी, फिर पालि बोली जाने लगी, फिर प्राकृत और फिर अपभ्रंश। भाषा के ये भेद ऐतिहासिक हैं। एक ही भाषा का इतिहास के एक समय में जो रूप था उसे 'संस्कृत' कहते हैं और दूसरे समय में जो रूप था उसे 'पालि' कहते हैं। इसी प्रकार प्राकृत और अपभ्रंश भी। किन्तु एक – दूसरे प्रकार के भी रूप हैं जिन्हें भौगोलिक रूप कह सकते हैं। अपभ्रंश के बाद संस्कृत, पालि, प्राकृत का परम्परा में जो रूप (ऐतिहासिक रूप) आया उसे 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषा' कह सकते हैं, किन्तु इस ऐतिहासिक रूप के आज बहुत से भौगोलिक रूप हैं, जैसे – पंजाबी, हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा बंगला आदि। भौगोलिक दृष्टि से अधिक व्यापक रूप भाषा है, फिर बोली, फिर स्थानीय बोली और इसका संकीर्णतम रूप है व्यक्ति-बोली या एक व्यक्ति की भाषा।

इन दो प्रमुख आधारों – इतिहास और भूगोल के अतिरिक्त भाषा के कुछ अन्य रूपों को दृष्टि में रखते हुए कुछ अन्य आधार भी माने जा सकते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण आधार है 'प्रयोग'। प्रयोग के आधार पर ही जातीय भाषा, व्यवसायिक भाषा, राजभाषा, साहित्यिक भाषा, गुप्त-भाषा तथा राजनयिक भाषा जैसे प्रयोग चलते हैं। दूसरा आधार है साधुता। इसी आधार पर परिनिष्ठत-भाषा, टकसाली भाषा, साधु-भाषा, असाधु-भाषा, शुद्ध-भाषा, अशुद्ध-भाषा तथा विकृत-भाषा जैसे प्रयोग चलते हैं। तीसरा आधार है प्रचलन। प्रचलन के आधार पर मृत-भाषा, जीवित-भाषा, अप्रचलित-भाषा, अल्प-प्रचलित-भाषा जैसे प्रयोग होते हैं। चौथा आधार है निर्माता। यदि किसी भाषा का निर्माता समाज है और वह परम्परागत रूप से चली आ रही है तो उसे भाषा कहते हैं और यदि एक-दो व्यक्तियों ने उसका निर्माण किया है तो उसे कृत्रिम-भाषा कहते हैं। इस प्रकार भाषा के विभिन्न रूपों के उल्लेख आधार 6 हैं :-

1. इतिहास,
2. भूगोल,
3. प्रयोग,
4. साधुता,
5. प्रचलन और
6. निर्माता ।

इन 6 आधारों पर भाषा के सैकड़ों भेद-विभेद हो सकते हैं, यद्यपि प्रयोग में इतने भेद किए नहीं जाते, फिर भी लगभग तीन दर्जन भेद तो काफी प्रचलित हैं। यहाँ इनमें से कुछ प्रमुख भेदों या रूपों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

बोली

जैसे बहुत-सी व्यक्ति-भाषाओं – जो आपस में प्रायः पर्याप्त साम्य रखती हों, उनका सामूहिक रूप बोली है और मिलती-जुलती बोलियों का सामूहिक रूप भाषा है, दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि एक भाषा-क्षेत्र

में कई बोलियाँ होती हैं (जैसे हिन्दी क्षेत्र में खड़ी बोली, ब्रज, अवधी आदि बोलियाँ हैं) और एक बोली में कई उपबोलियाँ (जैसे बुन्देली बोली के अन्तर्गत लोधान्ती, राठौरी तथा पँवारी आदि उपबोलियाँ)। बोली शब्द यहाँ अँग्रेज़ी डाइलेक्ट (dialect) का प्रतिशब्द है। कुछ हिन्दी के भाषा-विज्ञानविद बोली के लिए 'विभाषा', 'उपभाषा' या 'प्रान्तीय भाषा' का भी प्रयोग करते हैं। एक भाषा के अन्तर्गत कई बोलियाँ होती हैं, या बोली का क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा होता है। इस रूप में बोली का स्वरूप स्पष्ट है।

'बोली' किसी भाषा के एक ऐसे सीमित क्षेत्रीय रूप को कहते हैं, जो ध्वनि, रूप, वाक्य-गठन, अर्थ, शब्द-समूह तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से उस भाषा के परिनिष्ठित तथा अन्य क्षेत्रीय रूपों से भिन्न होता है, किन्तु इतना भिन्न नहीं कि अन्य रूपों के बोलने वाले उसे समझ न सकें, साथ ही जिसके अपने क्षेत्र में कहीं भी बोलने वालों के उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-गठन, अर्थ, शब्द-समूह तथा मुहावरों आदि में कोई बहुत स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण भिन्नता नहीं होती।

एक भाषा के अन्तर्गत जब कई अलग-अलग रूप विकसित हो जाते हैं तो उन्हें 'बोली' कहते हैं। सामान्यतः कोई 'बोली' तभी तक 'बोली' कही जाती है। जब तक उसे

- 1) (साहित्य, धर्म, व्यापार या राजनीति के कारण) महत्त्व न प्राप्त हो, या
- 2) जब तक पड़ोसी बोलियों के बोलने वाले उसे समझ न सकें।

इन दोनों में किसी एक (या दोनों) की प्राप्ति करते ही बोली 'भाषा' बन जाती है। अँग्रेज़ी, हिन्दी, रूसी, संस्कृत, ग्रीक तथा अरबी आदि विश्व की सभी भाषाएँ अपने आरम्भिक रूप में बोली रही होंगी और बाद में महत्त्व प्राप्त होने पर या विकास के कारण पूर्णतः भिन्न हो जाने पर वे भाषा बन गईं। इसी प्रकार आज बोली कहलाने वाली भोजपुरी, अवधी तथा मैथिली आदि उपर्युक्त कारणों से भाषाएँ बन सकती हैं।

बोलियों के बनने के कारण प्रमुखतः भौगोलिक है। किसी भाषा की एक शाखा का अन्य से सम्बन्ध-विच्छेद या अलग होना ही बोली के बनने का प्रधान कारण है। ऐसा भी होता है कि यदि कोई भाषा बहुत दिन से एक बड़े क्षेत्र में बोली जा रही है और उस क्षेत्र में एक उपक्षेत्र के लोग दूरी के कारण दूसरे उपक्षेत्र के लोगों से नहीं मिल पाते, तो उन दोनों या अधिक उपक्षेत्रों में भी बोलियाँ विकसित हो जाती हैं। हिन्दी में अवधी, ब्रज आदि इसी प्रकार विकसित हो गई हैं। भूकंप या जलप्लावन से भी ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं। एक क्षेत्र के बीच में व्यवधान आ जाता है, अतः लोग मिल नहीं पाते और बोलियाँ विकसित हो जाती हैं।

कभी-कभी राजनैतिक या आर्थिक कारणों से कुछ लोग अपनी भाषा के क्षेत्र से बहुत दूर जाकर बस जाते हैं और वहाँ भी उनकी नई बोली विकसित हो जाती है। कभी आसपास की भाषाओं या दूर की भाषाओं के प्रभाव के कारण भी एक भाषा में एक क्षेत्रीय रूप विकसित हो जाता है और वह बोली का रूप धारण कर लेता है।

साहित्य की श्रेष्ठता के कारण भी कुछ बोलियाँ महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। प्राचीन काल में मध्यदेशीय बोली साहित्य के लिए प्रयुक्त होती थीं, अतः उसका अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाना स्वाभाविक था।

बोली के प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण होने का सबसे बड़ा कारण है राजनीति। जहाँ राजनीति का केन्द्र होगा, वहाँ की बोली अवश्य ही महत्त्वपूर्ण होकर भाषा बन जाएगी। दिल्ली के समीप की खड़ी बोली आज हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों की प्रमुख भाषा है और उसने मैथिली, अवधी और ब्रज जैसी प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण बोलियों को भी दबाकर भाषा ही नहीं राज एवं राष्ट्र-भाषा के स्थान को अपना लिया है।

इस प्रसंग में एक बात की ओर संकेत कर देना आवश्यक है कि यह आवश्यक नहीं है कि महत्त्व प्राप्त करके बोली भाषा बन ही जाए। यह भी होता है कि महत्त्व प्राप्त करके भी बोली, बोली ही रह जाती है, या कभी-कभी थोड़े दिन के लिए महत्त्व मिलता है और फिर छिन जाता है। 'ब्रज' के सम्बन्ध में ऐसा ही हुआ है।

परिनिष्ठित भाषा

इसे 'टकसाली भाषा' भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'Standard language' या 'Koine' कहते हैं। 'Koine' शब्द यूनानी का है। 'ज्ञवपदम' यूनानी भाषा के विशेष रूप को कहते थे, जो एक क्षेत्र विशेष की टकसाली भाषा थी। नए टेस्टामेंट की भाषा यही है। परिनिष्ठित भाषा को 'आदर्श भाषा' भी कहा जाता है। सम्यता के विकसित होने पर यह आवश्यक हो जाता है कि एक भाषा-क्षेत्र (जिसमें कई बोलियाँ हो) की कोई एक बोली आदर्श मान ली जाए और पूरे क्षेत्र से सम्बन्धित कार्यों के लिए उसका प्रयोग हो। उसे आदर्श या परिनिष्ठित भाषा कहा जाता है और वह पूरे क्षेत्र की प्रमुखतः शिक्षित वर्ग के लोगों की शिक्षा, पत्र-व्यवहार या समाचार-पत्रादि की भाषा हो जाती है। साहित्य आदि में भी प्रायः उसी का प्रयोग होता है।

एक बोली जब आदर्श भाषा बनती है और प्रतिनिधि हो जाती है तो आसपास की बोलियों पर उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। आज की खड़ी बोली ने ब्रज, अवधी, भोजपुरी सभी को प्रभावित किया है। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि परिनिष्ठित भाषा आसपास की बोलियों को बिल्कुल समाप्त कर देती है। रोम की लैटिन जब इटली की आदर्श भाषा या परिनिष्ठित भाषा बनी तो आसपास की बोलियाँ शीघ्र ही समाप्त हो गईं। पर ऐसा बहुत ही कम होता है।

परिनिष्ठित भाषा के तत्कालीन रूप को लेकर उसका उच्चारण और व्याकरण आदि निश्चित कर दिया जाता है और फल यह होता है कि परिनिष्ठित भाषा स्थिर हो जाती है और कुछ दिन में उसका रूप प्राचीन पड़ जाता है। उदाहरणार्थ – आज की खड़ी बोली का लिखित रूप जीवित बोली से उच्चारण तथा शब्द-समूह आदि सभी दृष्टियों से कम से कम चालीस वर्ष पीछे है। व्याकरण में भी कुछ परिवर्तन आ गया है।

परिनिष्ठित भाषा के रूप पूरे क्षेत्र में एक ही नहीं होता। प्रादेशिक बोलियों का प्रभाव भी उस पर कुछ पड़ता है। यह प्रभाव व्याकरण और शब्द-समूह तथा उच्चारण, तीनों में ही देखा गया है। भोजपुरी लोग 'दिखाई दे रहा है'

के स्थान पर 'लौक रहा है' तथा 'हमने काम किया' के स्थान पर 'हम काम किये' का प्रयोग करते हैं। पंजाबी लोगों ने भी आदर्श हिन्दी पर अपनी पालिश कर दी है और खड़ी बोली हिन्दी का 'हमको जाना है' वाक्य उनके बीच 'हमने जाना है' हो गया है।

परिनिष्ठित भाषा के दो रूप हैं –

क) मौखिक और (ख) लिखित रूप।

परिनिष्ठित भाषा के प्रादेशिक रूपों के अतिरिक्त लिखित और मौखिक रूप भी होते हैं। सभी मौखिक भाषाएँ अपने लिखित रूपों से प्रायः भिन्न होती हैं। बोलने में सर्वदा ही वाक्य छोटे-छोटे रहते हैं पर लिखित रूप के वाक्य अधिकतर बड़े हो जाते हैं। 'कादम्बरी' के वाक्य कहीं-कहीं पृष्ठ पार कर जाते हैं, पर बोलचाल की संस्कृत कभी भी ऐसी न नहीं होगी। इस प्रकार मौखिक रूप स्वाभाविक है और लिखित रूप कृत्रिम। ये बातें परिनिष्ठित भाषा में भी पायी जाती हैं।

परिनिष्ठित भाषा के लिखित रूप पर मौखिक रूप की अपेक्षा प्रादेशिकता की छाप कम रहती है, क्योंकि लिखने में लोग हँसी और अशुद्धि आदि के भय से काफी सोच-समझ कर लिखते हैं।

लिखित रूप मौखिक की अपेक्षा अधिक संस्कृत रहता है।

साहित्यिक भाषा

जिस भाषा में प्रचुर साहित्य की रचना होती है, वह साहित्यिक भाषा कही जाती है। बोलचाल की भाषा की तुलना में प्रायः यह कुछ कम विकसित, कुछ अलंकृत, कुछ कठिन तथा कुछ परम्परानुगामिनी होती है। जब कोई बोली किसी कारण प्रधानता प्राप्त कर लेती है, तो वह शिक्षितों की तथा साहित्य की भाषा बन जाती है। साहित्यिक भाषा स्थानीय प्रभावों से अछूती रहती है। विभिन्न क्षेत्रों या प्रान्तों के शिक्षित लोगों के पारस्परिक व्यवहार में भी प्रायः इसी का प्रयोग होता है। अपने साहित्य के कारण साहित्यिक-भाषा बहुत समय तक अपनी स्थिरता तथा अस्तित्व को बनाये रखती है। यह व्याकरण द्वारा नियमित होती है। प्राचीन संस्कृत या आधुनिक हिन्दी आदि इसके उदाहरण हैं।

भाषा के अन्य रूपों की अपेक्षा सर्वसाधारण की भाषा या बोली तथा साहित्यिक भाषा में बहुत ही निकट का सम्बन्ध है।

सर्वसाधारण की भाषा ही जिसे बोलचाल की भाषा भी कहते हैं, परिस्थितिवश महत्त्व प्राप्त कर लेने से साहित्यिक भाषा का रूप ले लेती है। इस महत्त्व-प्राप्ति का कारण या तो राजनीतिक होता है या धार्मिक। यही कारण है कि प्रत्येक साहित्यिक भाषा या तो किसी धर्म की होती है या किसी राज्य की। शिक्षित तथा सभ्य लोगों की भाषा होने के कारण धीरे-धीरे साहित्यिक भाषा सर्वसाधारण की भाषा से पृथक् हो जाती है। उसका रूप कुछ परिनिष्ठित

भाषा जैसा हो जाता है। वह स्थानीय विशेषताओं से रहित तथा प्रान्तीय प्रभावों से परे हो जाती है। संक्षेप में, शिक्षा-दीक्षा, पठन-पाठन, पत्र-लेखन तथा पत्र-पत्रिकाओं की भाषा होने से उसका स्तर सर्वसाधारण की भाषा से कुछ ऊँचा हो जाता है।

साहित्यिक भाषा की तुलना एक कृत्रिम, बनावटी, कलात्मक झील से की जाती है। जैसी झील का सौन्दर्य कलात्मक होने से अधिक भले ही हो, किन्तु फिर भी उसमें एक प्रकार की कृत्रिमता रहती है तथा उसका पानी रुका हुआ होने के कारण निर्जीव-सा प्रतीत होता है, उसमें स्वच्छता तथा सजीवता का अभाव रहता है, उसी प्रकार साहित्यिक भाषा भी नियमों के बाँधों से बंधी, अलंकारों की छटा से अलंकृत तथा व्याकरण के नियमों से परिष्कृत होती है। उसमें सौन्दर्य तो होता है, किन्तु कृत्रिम। इसी कारण कुछ समय पश्चात् साहित्यिक भाषा जीवनहीन-सी प्रतीत होने लगती है। साहित्यिक भाषा स्थिर रहती है। यह व्याकरण के नियमों से जकड़ी होने के कारण तथा लिखित रूप में परिवर्तन का कम अवकाश होने के कारण चिरकाल तक स्थिर बनी रहती है। उपर्युक्त झील के उदाहरण से भी यह बात भली-भान्ति स्पष्ट हो जाती है।

जिन भाषाओं का बोलचाल का स्वरूप सुरक्षित नहीं है, जैसे प्राचीन भाषाएँ – वैदिक, संस्कृत, प्राकृत आदि उनके अध्ययन के लिए भाषावैज्ञानिकों को साहित्यिक भाषाओं का ही आश्रय लेना पड़ता है, क्योंकि उनके बोलचाल वाले भाषा के स्वरूप की कल्पना तत्कालीन साहित्य के आधार पर ही की जा सकती है।

राष्ट्रभाषा

आदर्श या परिनिष्ठित भाषा तो केवल उसी क्षेत्र में रहती हैं जिसकी वह एक बोली होती है जैसे- हिन्दी खड़ी बोली राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा बिहार आदि की परिनिष्ठित या आदर्श भाषा है। किन्तु जब कोई बोली परिनिष्ठित भाषा बनने के बाद भी उन्नति करती है और महत्त्वपूर्ण बन जाती है तथा पूरे राष्ट्र या देश में अन्य भाषा-क्षेत्र तथा अन्य परिवार-क्षेत्र में भी उसका प्रयोग सार्वजनिक कामों आदि में होने लगता है तो वह राष्ट्र-भाषा का पद पा जाती है। राष्ट्रीय पर्वों, उत्सवों तथा राष्ट्रीय महत्त्व के अवसरों पर इसी भाषा का प्रयोग होता है। इसे राष्ट्रीय ध्वज से सम्बन्धित करके हम इसके महत्त्व को सहज समझ सकते हैं।

हिन्दी को धीरे-धीरे भारतवर्ष में लगभग यही स्थान प्राप्त हो रहा है। वह अपने परिवार के अहिन्दी प्रान्तों (बंगाल, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि) तथा अन्य परिवार के प्रान्तों (मद्रास आदि) में भी धीरे-धीरे व्यवहार में आ रही है। पूर यूरोप में कुछ दिन तक फ्रेंच को भी यही स्थान प्राप्त था। कुछ तो आज भी हैं। व्यापार आदि के क्षेत्र में अंग्रेज़ी आज विश्व-भाषा या विश्व की अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। किसी बोली की उन्नति की चरम सीमा उसका किसी रूप में विश्व-भाषा होना ही है।

13.5 सारांश

उपर्युक्त पाठ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता आदि के आधार पर भाषा के विविध रूप देखने को मिलते हैं, जिनमें बोली, परिनिष्ठित-भाषा, साहित्यिक-भाषा एवं राष्ट्र-भाषा आदि प्रमुख हैं, जहाँ 'बोली' किसी भाषा का सीमित क्षेत्रीय रूप होता है तो वहीं 'परिनिष्ठित-भाषा', स्तरीय-भाषा होती है। इसे 'टकसाली भाषा' भी कहते हैं। 'साहित्यिक-भाषा' वह कही जाती है, जिसमें प्रचुर साहित्य की रचना होती है। जब कोई भाषा अपने सीमित क्षेत्र से निकलकर सभी प्रदेशों में बोलने वालों को प्रभावित करती है तो वह 'राष्ट्रभाषा' का पद प्राप्त कर लेती है।

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भाषा के विविध रूपों का उल्लेख कीजिए।
2. बोली, भाषा और परिनिष्ठित भाषा का परिचय दीजिए।
3. 'राष्ट्रभाषा' और 'साहित्यिक भाषा' का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

13.7 सहायक ग्रन्थ

1. भाषा –विज्ञान – डॉ० भोलानाथ तिवारी।
2. भाषा –विज्ञान – डॉ० कर्ण सिंह।
3. भाषा –विज्ञान – डॉ० चक्रधर कर्णाटक।
4. तुलनात्मक भाषा विज्ञान – डॉ० पाण्डुरंग दामोदर गुणे। अनुवाद – डॉ० भोलानाथ तिवारी।



भाषा और बोली

- 14.1 शीर्षक
- 14.2 प्रस्तावना
- 14.3 उद्देश्य
- 14.4 विषय सामग्री
- 14.5 सारांश
- 14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 14.7 सहायक ग्रन्थ

14.1 शीर्षक

– भाषा और बोली।

14.2 प्रस्तावना

कतिपय विद्वान् 'विभाषा' और 'बोली' को समानार्थक मानते हैं और इसे 'डायलेक्ट' का अनुवाद मानते हैं। 'विभाषा' और 'बोली' में आपेक्षिक अन्तर है। जो भाषाएँ प्रान्तीय स्तर पर शासन द्वारा स्वीकृत हो जाती हैं, उनका स्तर उच्च का हो जाता है, और वे विभाषा की श्रेणी में आती हैं। इसके अतिरिक्त जो भाषाएँ प्रान्तीय स्तर पर स्वीकृत न होकर मण्डलीय स्तर पर स्वीकृत रहती हैं 'वे भाषाएँ' 'बोली' की श्रेणी में आती हैं। प्रस्तुत पाठ में इसी विषय पर प्रकाश डाला गया है।

14.3 उद्देश्य

- ❖ विद्यार्थियों को भाषा और बोली में अन्तर बतलाना।
- ❖ 'बोली' का 'भाषा' बनने का कारण स्पष्ट कराना।

❖ 'बोली' और 'भाषा' के कार्यक्षेत्र से अवगत करवाना।

15.4 विषय सामग्री

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने के नाते उसे आपस में सर्वदा ही विचार-विनिमय करना पड़ता है। कभी वह शब्दों या वाक्यों द्वारा अपने आपको प्रकट करता है तो कभी सिर हिलाता है, परन्तु मानव अपनी भावना को व्यक्त करने के लिए जिस सार्थक मौखिक साधन को अपनाता है, वह भाषा है। यद्यपि संकेत आदि के द्वारा भी कुछ भावों की अभिव्यक्ति हो जाती है, परन्तु अपने भावों को सूक्ष्म और स्पष्ट रूप से व्यक्त करने का साधन भाषा ही है। मनन, चिन्तन और विचार का साधन भी भाषा ही है। भाषा ही वह एक जीवन-ज्योति है, जो एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है। मानव के विचार ही उसका समाज से सम्पर्क स्थापित करते हैं। यदि मनुष्य के पास भाषा जैसा अमोघ अस्त्र न होता तो मनुष्य भी पशु-पक्षियों के तुल्य अपने भावों को अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रकट करने में असमर्थ रहता। विश्व के प्रत्येक देश में कोई न कोई भाषा बोली जाती है और वही उनके विचार-विनिमय का माध्यम है। यह भाषा वस्तुतः मानव शरीर में दैवी अंश है, जो इस सृष्टि में केवल मनुष्य मात्र को ही प्राप्त है। भाषा मानव की प्रगति में विशेष रूप से सहायक रही है। हमारे पूर्व पुरुषों के सारे अनुभव हमें भाषा के माध्यम से ही प्राप्त हुए हैं। हमारे सभी शास्त्र और उनसे होने वाला सम्पूर्ण लाभ भाषा का ही परिणाम है। महाकवि 'दण्डी' के शब्दों में भाषा की उपयोगिता इस प्रकार से है—

“इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।” – काव्यादर्श।

अर्थात् यह दिव्य ज्योति ही समस्त संसार में अपना प्रकाश फैलाए हुए है, इस भाषा रूपी ज्योति के बिना संसार घोर अन्धकारमय होता।

भाषारूपी इस दैवी अंश के द्वारा ही मनुष्य इस संसार में सर्वोत्तम जीव माना जाता है। वह अपने वाग्-व्यवहार के द्वारा ही ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व स्थापित किए हुए है, साथ ही वह चर और अचर का स्वामी भी भाषा के कारण बना हुआ है। इससे भाषा के महत्त्व का अनुमान लगाया जा सकता है। वैदिक ऋषियों ने सर्वप्रथम ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 125 में वाग् सूक्त के 8 मंत्रों में इस विषय की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि वाक् तत्त्व या भाषा ही वह दिव्य ज्योति है, जो मानव को ऋषि, देवता या विद्वान् बनाती है :-

“अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।”

वस्तुतः हमारी लोक यात्रा वाग्देवी की कृपा से ही सम्भव हो पाती है—

वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते।

अपने व्यापकतम् रूप से तो 'भाषा' वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं, किन्तु भाषा-विज्ञान में हम जिस भाषा का अध्ययन-विश्लेषण करते हैं, वह इतनी व्यापक नहीं है। उसमें हम उन सभी साधनों को नहीं लेते जिनके द्वारा विचारों को व्यक्त करते हैं और न उसे लिया जाता है, जिनके द्वारा हम सोचते हैं। भाषा उसे कहते हैं जो बोली और सुनी जाती है और बोलना भी पशु-पक्षियों का नहीं, गूँगे मनुष्यों का भी नहीं केवल बोलने वाले मनुष्यों का।

भाषा का अर्थ

भाषा शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में प्रचलित है। भावाभिव्यक्ति के सभी साधनों को सामान्य रूप से भाषा कह दिया जाता है। इस प्रकार के अर्थों में पशु-पक्षियों की बोली, इंगित, विभिन्न संकेत और मानव की भाषा को भाषा शब्द के द्वारा ग्रहण किया जाता है।

भाषा-विज्ञान में जिस भाषा का ग्रहण है वह सांकेतिक आदि से भिन्न मानवीय व्यक्त वाणी है। भाषा शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से होती है। 'भाषा' शब्द संस्कृत की भाष् (भादिगणी) धातु से बना है। भाष् धातु का अर्थ है – (भाष् व्यक्तायां वाचि) व्यक्त वाणी।

'भाष्यते व्यक्तवाग् रूपेण अभिव्यज्यते इति भाषा'

अर्थात् व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है, उसे भाषा कहते हैं। मुख्य रूप से भाषा शब्द से मानवीय व्यक्त-वाणी का ही ग्रहण होता है।

भाषा की परिभाषा

भाषा की परिभाषा के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, अभी तक कोई विद्वान् भाषा का सर्वसम्मत लक्षण नहीं दे सका है। संघटनात्मक दृष्टि से भाषाशास्त्रियों ने भाषा की परिभाषा यह की है –

भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि-संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है।

इस परिभाषा में चार बातों पर ध्यान देना जरूरी है –

1. भाषा एक पद्धति है।
2. भाषा संकेतात्मक है।
3. भाषा वाचिक ध्वनि-संकेत है।

4. भाषा यादृच्छिक संकेत है ।

भाषा की कतिपय परिभाषाएँ इस प्रकार से हैं—

1. **प्लेटो के अनुसार**— प्लेटो ने विचार और भाषा के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है कि विचार और भाषा में थोड़ा ही अन्तर है। विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है, तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।

2. **स्वीट के अनुसार**— ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।

3. **भोलानाथ तिवारी के अनुसार**— अपने व्यापकतम् रूप में भाषा का अर्थ है— हमारे विचारों और मनोभावों को व्यक्त करने वाले ऐसे संकेतों का कुल योग जो देखे या सुने जा सकें और इच्छानुसार उत्पन्न किए एवं दोहराए जा सकें।

4. **श्री श्याम सुन्दर दास के अनुसार**— “विचार की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों के व्यवहार को भाषा कहते हैं।”

5. **ब्लाक तथा टैगोर के अनुसार** — A Language is a system of arbitrary vocal symbol by means of which a society group co-operates.

6. **विश्वकोशों के अनुसार भाषा की परिभाषा**— A language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which, human beings, as member of a social group and participants in culture interact and communicate.

भाषा की अधिक व्यवस्थित और सर्वसमावेशी परिभाषा इस प्रकार से है —

“भाषा मानव उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह संरचनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचार विनिमय करते हैं। लेखक, कवि या वक्ता के रूप में अपने भावों या अनुभावों को व्यक्त करते हैं तथा अपने व्यक्तित्व और सामाजिक व्यक्तित्व, विशिष्टता तथा अस्मिता के सम्बन्ध में जाने-अनजाने जानकारी देते हैं”।

भाषा के अनेक रूप

भाषा की अनेकरूपता को संक्षेप में इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है :-

1. मूल-भाषा
2. परिनिष्ठित या परिष्कृत भाषा
3. विभाषा

4. बोली
5. व्यक्तिगत बोली
6. अपभाषा
7. विशिष्ट भाषा
8. कूट-भाषा
9. कृत्रिम-भाषा एवं मिश्रित भाषा।

इनमें से **बोली** का विस्तृत वर्णन इस प्रकार से है –

बोली— बोली भाषा की छोटी इकाई है। इसका सम्बन्ध ग्राम या मण्डल से रहता है। इसमें व्यक्तिगत बोली की प्रधानता रहती है। इसमें घरेलु शब्द और देशज शब्दों का भी पर्याप्त प्रभाव रहता है। यह मुख्य रूप से बोलचाल की भाषा होती है। इसमें साहित्यिक रचना आदि का अभाव रहता है। एक विभाषा में स्थानीय भेदों के आधार पर कई बोलियाँ प्रचलित रहती हैं। इसके लिए फ्रांसीसी शब्द **पात्वा (Patois)** प्रचलित है। भाषा-शास्त्रियों ने **पात्वा** की चार विशेषताएँ मानी हैं –

- क) यह डाएलेक्ट का छोटा या स्थानीय रूप है।
- ख) यह साहित्यिक भाषा नहीं होती है।
- ग) यह व्याकरण की दृष्टि से असाधु भाषा होती है।
- घ) इसके प्रयोक्ता अशिक्षित एवं निम्न स्तर के ही व्यक्ति होते हैं।

पात्वा की अधिकांश विशेषताएँ **बोली** में प्राप्त होती हैं, अतः **बोली** को सामान्य रूप से **पात्वा** कहा जा सकता है।

जो भाषाएँ प्रान्तीय स्तर पर स्वीकृत न होकर मण्डलीय स्तर पर स्वीकृत रहती हैं तथा जिनमें साहित्यिक रचनाएँ भी विद्यमान रहती हैं, उन भाषाओं को बोली की श्रेणी में लिया जाना उचित है। जैसे— हिन्दी की बोलियाँ **ब्रज, अवधी, बुन्देली, कुमायूनी, भोजपुरी** आदि।

एक भाषा के अन्तर्गत कई बोलियाँ होती हैं, 'भाषा' की अपेक्षा 'बोली' का क्षेत्र, उसके बोलने वालों की संख्या और उसका महत्त्व कम होता है। इसे 'बोली' भी सापेक्षिक दृष्टि से कहा जाता है।

'बोली' किसी भाषा के एक ऐसे सीमित क्षेत्रीय रूप को कहते हैं जो ध्वनि, रूप, वाक्य-गठन, अर्थ, शब्द-समूह तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से उस भाषा के परिनिष्ठित तथा अन्य क्षेत्रीय रूपों से भिन्न होता है, किन्तु इतना भिन्न नहीं कि अन्य रूपों के बोलने वाले उसे समझ न सकें।

एक भाषा के अन्तर्गत जब कई अलग रूप विकसित हो जाते हैं तो उन्हें 'बोली' कहते हैं। सामान्यतः कोई 'बोली' तभी तक 'बोली' कही जाती है, जब तक उसे—

- 1) साहित्य, धर्म, व्यापार या राजनीति के कारण महत्त्व न प्राप्त हो या
- 2) जब तक पड़ोसी बोलियों से उसे भिन्न करने वाली उसकी विशेषताएँ इतनी न विकसित हो जाएँ कि पड़ोसी बोलियों के बोलने वाले उसे समझ न सकें। इन दोनों में से किसी एक (या दोनों) की प्राप्ति करते ही बोली भाषा बन जाती है।

भाषा का मानक रूप होता है, बोली का नहीं। लोक-साहित्य और बोलचाल में ही बोली प्रयुक्त होती है।

बोली की परिभाषा

डा० पी० डी० गुणे ने 'बोली' की परिभाषा इस प्रकार से की है —

-Dialect is constituted by the speech of all those persons, in whose utterances, variations are not sensibly perceived or attended to"

-An Introduction to comparative philology.

अर्थात् बोली उन सभी लोगों की बोलचाल की भाषा का वह मिश्रित रूप है, जिनकी भाषा में पारस्परिक भेद को अनुभव नहीं किया जाता है।

किसी बोली का भाषा बनने का कारण— उस बोली द्वारा महत्त्व प्राप्त कर लेना है। बोली को यह महत्त्व कई कारणों से प्राप्त हो सकता है। उनमें से कुछ कारण निम्न प्रकार से हैं—

कारण इस प्रकार से है—

- क) धार्मिक श्रेष्ठता के कारण भी कोई बोली भाषा बन जाती है।
- ख) राजनीति के कारण भी 'बोली' भाषा का पद प्राप्त कर लेती है।
3. **उपबोली**— 'बोली' की अपेक्षा और भी सीमित क्षेत्र में व्यवहृत होने वाली बोलचाल की भाषा 'उपबोली' कहलाती है।
4. **परिनिष्ठित भाषा**— इसे आदर्श भाषा या टकसाली भाषा भी कहते हैं। इसका प्रयोग सभी शिक्षित सभ्य व्यक्ति शिक्षा-दीक्षा, साहित्य-रचना, पत्र-व्यवहार आदि में करते हैं।
5. **राष्ट्र-भाषा**— राष्ट्र की एकता को ध्यान में रखते हुए सभी राष्ट्रवासी जिस भाषा का प्रयोग सार्वजनिक कार्यों के लिए करते हैं, उसे 'राष्ट्रभाषा' कहा जाता है।

6. **राजभाषा**— राजकीय कार्यालयों, राजाज्ञाओं आदि में प्रयुक्त भाषा ही राजभाषा कहलाती है।
7. **अन्तर्राष्ट्रीय भाषा**— किसी प्रकार के शासन या किसी प्रभाव से जब किसी भाषा का प्रयोग एक से अधिक राष्ट्रों में होने लगता है, उसे अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कहते हैं। जैसे आजकल अंग्रेजी का प्रयोग कई राष्ट्रों में होता है।
8. **कृत्रिम भाषा**— किसी भी मनुष्य-समूह द्वारा अपने निजी या सीमित व्यवहार के लिए कुछ विशेष नियमों के आधार पर बनाई गई कोई भी भाषा 'कृत्रिम-भाषा' कहलाती है।
9. **साहित्यिक भाषा**— जिस भाषा में प्रचुर साहित्य की रचना होती है, वह साहित्यिक भाषा कही जाती है।
भाषा के अन्य रूपों की अपेक्षा सर्व-साधारण की भाषा या बोली तथा साहित्यिक भाषा में बहुत ही निकट का सम्बन्ध है।

इस प्रकार से भाषा तथा बोली की परिभाषा बताई गई है। भाषा मानव की पूँजी है, अतः भाषा में ही वह शक्ति है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध सके।

14.5 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'बोली' लोगों की बोलचाल की भाषा का वह मिश्रित रूप है, जिनकी भाषा में पारस्परिक भेद को अनुभव नहीं किया जाता है और यह भाषा के अन्य रूपों की अपेक्षा सर्वसाधारण की भाषा होती है। कभी-कभी यही बोली धार्मिक श्रेष्ठता या राजनीतिक कारणों से महत्त्व प्राप्त करने के कारण 'भाषा' का पद प्राप्त कर लेती है।

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'बोली' का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2. 'भाषा' का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
3. 'बोली' और 'भाषा' में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

14.7 सहायक ग्रन्थ

1. भाषा-विज्ञान – डॉ० भोलानाथ तिवारी।
2. भाषा-विज्ञान – डॉ० कर्ण सिंह।
3. भाषा-विज्ञान – डॉ० चक्रधर कर्णाटक।
4. तुलनात्मक भाषा विज्ञान – डॉ० पाण्डुरंग दामोदर गुणे।

अनुवाद – डॉ० भोलानाथ तिवारी।

**प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताएँ,
वैदिक-संस्कृत और लौकिक-संस्कृत।**

- 15.1 शीर्षक
- 15.2 प्रस्तावना
- 15.3 उद्देश्य
- 15.4 विषय सामग्री
- 15.5 सारांश
- 15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 15.7 सहायक ग्रन्थ

15.1 शीर्षक

प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताएँ, वैदिक-संस्कृत और लौकिक-संस्कृत।

15.2 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं का काल सामान्यतः 1500 ई० पू० से 500 ई० पू० तक माना जाता है। इस वर्ग की भाषा के दो रूप उपलब्ध होते हैं— (क) वैदिक संस्कृत, तथा (ख) लौकिक संस्कृत। प्रस्तुत पाठ में वैदिक भाषा का स्वरूप, काल, ध्वनि-समूह एवं विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

15.3 उद्देश्य

- ❖ पाठकों को प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के वैदिक स्वरूप से परिचित करवाना।
- ❖ वैदिक भाषा के ध्वनि समूह से अवगत कराना।

❖ वैदिक भाषा की विशेषता स्पष्ट करना।

15.4 विषय सामग्री

भारतीय आर्यभाषा का महत्त्व संसार की सभी भाषाओं में अधिक है। इस महत्त्व का श्रेय प्रमुख रूप से संस्कृत भाषा को है। इसके महत्त्व के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. भारतीय आर्यभाषा की प्राचीनतम भाषा, वैदिक भाषा का साहित्यिक ग्रन्थ 'ऋग्वेद' विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है।
2. विश्व की किसी भी अन्य प्राचीन भाषा का साहित्य न इतना विस्तृत है और न ही इतना प्रामाणिक।
3. ग्रीक तथा लैटिन यूरोप की इन दोनों प्राचीन भाषाओं का साहित्य मिलकर भी मात्रा में संस्कृत-साहित्य से कम ही रहता है।
4. इस वर्ग में वैदिक, बौद्ध और जैन, इन तीनों प्रमुख धर्मों का तथा अन्य कई धर्मों का साहित्य उपलब्ध होता है।
5. यूरोप में संस्कृत भाषा के अध्ययन के साथ ही भाषा-विज्ञान को एक विज्ञान के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।

प्राचीन आर्यभाषा का स्वरूप ऋग्वेद से प्राप्त होता है। सामान्यतया प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं का काल 1500 ई० पू० से 500 ई० पू० तक माना जाता है, परन्तु भारतीय और पाश्चात्य विद्वान ऋग्वेद का समय 2500 ई० पू० से बाद का नहीं मानते हैं, अतः काल-विभाजन में प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं का आरम्भ 2500 ई० पू० तक माना जाता है।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ विकासक्रम के अनुसार दो भागों में विभक्त हैं— 1) वैदिक संस्कृत 2) लौकिक संस्कृत।

1. वैदिक संस्कृत

वैदिक संस्कृत को 'वैदिक', 'वैदिकी', 'छन्दस', 'छान्दस' आदि नाम से भी कहा जाता है। इसका प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में मिलता है। यद्यपि अन्य तीनों संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि की भाषा भी वैदिक ही है किन्तु इन सभी में भाषा का एक ही रूप नहीं मिलता। ऋग्वेद के दूसरे से नौवें मण्डल तक की भाषा ही सर्वाधिक प्राचीन है। अन्य वेदों का समय इसके बाद का माना गया है। वैदिक काल की समाप्ति 500 ई० पू० में मानी गई है।

ऋग्वेद छन्दोबद्ध है, अतः उसे 'छन्दस' कहा जाता है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में गद्य अंश भी है, इससे प्राचीन गद्य का स्वरूप ज्ञात होता है। ब्राह्मण ग्रन्थ भी गद्य में है, इनसे प्रचलित भाषा का स्वरूप ज्ञात होता है।

वैदिक संस्कृत किसी समय जनभाषा थी। यह मुख्य रूप से साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यों के लिए प्रयुक्त होती थी। अतः समस्त प्राचीनतम संस्कृत वाङ्मय वैदिक संस्कृत में मिलता है। इसके साथ ही लोकभाषाएँ भी प्रचलित रही होंगी, उनसे संस्कृत के विभिन्न रूप प्रचलित हुए। पाणिनि आदि ने इनको 'प्राचाम्' (पूर्वी), उदीचाम् (उत्तरी) आदि कहकर स्पष्ट किया है। संस्कृत के इन विभिन्न रूपों से विभिन्न प्राकृतों और अपभ्रंशों का विकास हुआ और अन्त में हिन्दी आदि प्रान्तीय भाषाओं का विकास हुआ। विद्वानों का विचार है कि वैदिक भाषा का जो रूप हमें आज वैदिक साहित्य, विशेषतः ऋग्वेद में मिलता है, वह तत्कालीन साहित्यिक भाषा ही थी, बोलचाल की भाषा नहीं। तत्कालीन बोलचाल की भाषा को जानने का कोई साधन आज हमें उपलब्ध नहीं है। हाँ वैदिक साहित्यिक के आधार पर हम उसका कुछ अनुमान अवश्य ही कर सकते हैं।

वैदिक भाषा की ध्वनियाँ

वैदिक भाषा की ध्वनियाँ मूल भारोपीय ध्वनियों से कई बातों में भिन्न हैं—

1. मूल भारोपीय तीन मूल ह्रस्व स्वरों— अ, ए, ओ के स्थान पर वैदिक में केवल एक 'अ' ही मूल ह्रस्व स्वर शेष है।
2. मूल भारोपीय तीन मूल ह्रस्व स्वरों— आ, ए, ओ के स्थान पर वैदिक में केवल एक 'आ' ही मूल दीर्घ शेष है।
3. मूल भारोपीय में प्राप्त न्, म् अन्तस्थ ध्वनियों का वैदिक में लोप हो गया है।
4. मूल भारोपीय में तीन प्रकार की कवर्ग ध्वनियाँ थीं, किन्तु वैदिक में एक ही प्रकार की कवर्ग (क, ख, ग, घ) ध्वनियाँ हैं।
5. मूल भारोपीय में चवर्ग तथा टवर्ग का नितान्त अभाव था, जब कि वैदिक ध्वनियों में ये नये दो वर्ग आ मिले हैं। मूर्धन्य टवर्ग ध्वनियों का आगमन वैदिक संस्कृत की बहुत बड़ी विशेषता है, जिसका कारण द्रविड़ भाषा का प्रभाव है।
6. मूल भारोपीय में एक ही 'स्' (रूष्म) ध्वनि थी। वैदिक में इसके साथ ही श् तथा ष् ये दो (रूष्म) ध्वनियाँ और जुड़ी हैं।

इस प्रकार वैदिक ध्वनि समूह में निम्नलिखित ध्वनियाँ हैं।

वैदिक ध्वनि—समूह

मूल स्वर	—	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ए, ओ	= 11
संयुक्त स्वर	—	ऐ, (अइ), औ (अउ)	= 2

कण्ठ्य	—	क, ख, ग, घ, ङ (कवर्ग)	= 5
तालव्य	—	च, छ, ज, झ, ञ (चवर्ग)	= 5
मूर्धन्य	—	ट, ठ, ड, ढ, ढ्ह, ण (टवर्ग)	= 7
दन्त्य	—	त, थ, द, ध, न् (तवर्ग)	= 5
ओष्ठ्य	—	प, फ, ब, भ, म् (पवर्ग)	= 5
दन्तोष्ठ्य	—	व्	= 1
अन्तस्थ	—	य, र, ल, व्	= 4
शुद्ध अनुनासिक	—	अनुस्वार (ँ)	= 1
संघर्षी	—	श, ष, स, ह जिह्वामुलीय (क, ख से पूर्व अर्द्धविसर्ग सदृश), उपध्मानीय (प, फ से पूर्व अर्द्धविसर्ग सदृश)	= 6
		कुल	= 52

वैदिक भाषा की विशेषताएँ

प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है। प्रत्येक भाषा अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण अपना पृथक् अस्तित्व रखती हैं। किसी भाषा की ऐसी विशेषताएँ ही उसे अन्य भाषाओं से पृथक् करती हैं। इस दृष्टि से वैदिक भाषा की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ यहाँ प्रस्तुत हैं—

1. वैदिक भाषा में स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ उच्चारण के साथ ही उनका प्लुत उच्चारण भी होता है, जैसे, आसी३त्, विन्दती३ इत्यादि।
2. वैदिक भाषा में 'लृ' स्वर का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है।
3. वैदिक भाषा में संगीतात्मक स्वराघात का बहुत महत्त्व है। इसमें तीन प्रकार के स्वर हैं—उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित। वैदिक मन्त्रों के उच्चारण में इनका ध्यान रखना अनिवार्य होता है। स्वर-परिवर्तन से शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है। 'इन्द्रशत्रुः' इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी वैदिक भाषा का स्वराघात प्रधानता का बहुत महत्त्व है।
4. वैदिक भाषा की व्यञ्जन ध्वनियों में ळ और ऴ दो ऐसी ध्वनियाँ हैं जो उसे अन्य भाषाओं से पृथक् करती हैं, जैसे इळा, अग्निमीळे आदि में।
5. प्राचीन वैदिक में 'लृ' के स्थान पर प्रायः 'रृ' का व्यवहार मिलता है; जैसे— 'सलिल' के स्थान पर 'सरिर'।

6. वैदिक भाषा में सन्धि-नियमों में पर्याप्त शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। अनेक बार सन्धि-योग्य स्थलों पर भी सन्धि नहीं होती और दो स्वर साथ-साथ प्रयुक्त हो जाते हैं; जैसे- 'तितउ' (अ, उ) गोओपशा (ओ, ओ)।
7. वैदिक भाषा में शब्द-रूपों में पर्याप्त अनेकरूपता मिलती है। उदाहरण के लिए प्रथमा विभक्ति, द्विवचन में 'देवा' और 'देवौ' ; प्रथमा विभक्ति बहुवचन में 'जनाः' और 'जनासः'; तृतीया विभक्ति बहुवचन में 'देवैः' और 'देवेभिः' दो-दो रूप मिलते हैं। यह विविधता कुछ अन्य रूपों में भी मिलती है।
8. यही विविधता धातुरूपों में भी उपलब्ध होती है। एक ही 'कृ' धातु के लट् लकार प्रथम पुरुष में 'कृणोति' 'कृणुते', 'करोति' 'कुरुते' 'करति' आदि अनेक रूप मिलते हैं।
9. धातुओं से एक ही अर्थ में अनेक प्रत्यय लगते हैं। जैसे, एक ही 'तुमुन्' प्रत्यय के अर्थ में 'तुमुन्', 'से', 'सेन', 'असे', 'असेन्', 'कसे', 'कसेन्', 'अध्यै', 'अध्यैन्', 'कध्यै', 'कध्यैन्', 'शध्यै', 'शध्यैन्', 'तवै', 'तवैङ्', और 'तवेन्'-ये 16 प्रत्यय मिलते हैं। यही विविधता क्त्वा आदि अन्य अनेक प्रत्ययों में भी है।
10. वैदिक भाषा में उपसर्गों का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से होता था। उदाहरणार्थ- "अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि"-ऋग्वेद- 1/19/9, यहाँ 'अभि' उपसर्ग का प्रयोग 'सृजामि' क्रियापद से पृथक् स्वतन्त्ररूप से हुआ है। इसी प्रकार "मानुषान् अभि" (ऋ० 1/48/7) में 'अभि' स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त है।
11. पदरचना की दृष्टि से वैदिक भाषा श्लिष्ट योगात्मक है। सम्बन्ध तत्त्व (प्रत्यय) के जुड़ने पर यहाँ अर्थतत्त्व (प्रकृति) में कुछ परिवर्तन हो जाता है, किन्तु अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व को पृथक्-पृथक् पहचाना जा सकता है। जैसे- 'गृहाणाम्', यहाँ 'गृह' प्रकृति तथा 'नाम्' प्रत्यय स्पष्ट रूप से पहचाने जाते हैं।

2. लौकिक संस्कृत

लौकिक संस्कृत को प्रायः संस्कृत ही कहा जाता है। यह प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का दूसरा रूप है। यूरोप में जो स्थान 'लैटिन' भाषा का है, वही स्थान भारत में संस्कृत का है। संस्कृत का सबसे प्राचीन एवं आदि काव्य **वाल्मीकि रामायण** 500ई०पू० का है। महाभारत, पुराण, काव्य, नाटक आदि ग्रन्थ 500ई० पू० से आज तक अविच्छिन्न रूप से अपना गौरव स्थापित किए हुए हैं। **यास्क**, **कात्यायन**, **पतंजलि** आदि के लेखों से सिद्ध है कि ईसा पूर्व तक संस्कृत लोक-व्यवहार की भाषा थी। गुप्तकाल में संस्कृत की सर्वाधिक उन्नति हुई थी। इसका साहित्य विश्व के समृद्धतम साहित्यों में से एक है। **वाल्मीकि**, **व्यास**, **कालिदास** आदि इसकी महान विभूतियाँ हैं। विश्व-विख्यात महाकवि **कालिदास** का **अभिज्ञानशाकुन्तल** नाटक संस्कृत भाषा का शृंगार है। विश्व की अनेक भाषाओं में संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हुआ है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत का महत्त्व बहुत अधिक है। संस्कृत के अध्ययन के कारण ही यूरोप में आधुनिक युग में 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' का प्रारम्भ हुआ है। संस्कृत साहित्य आर्य-जाति का प्राण है। संस्कृत में ही समस्त प्राचीन ज्ञान, विज्ञान, कला, पुराण, काव्य, नाटक आदि हैं। संस्कृत ने न केवल भारतीय भाषाओं को अनुप्राणित किया है, अपितु विश्व, भाषाओं, मुख्यतया भारोपीय भाषा को भी प्रभावित किया है।

15.5 सारांश

संक्षेप में, वैदिक भाषा में प्रयोगों की अनेकरूपता को देखने से प्रतीत होता है कि आज वैदिक भाषा का जो स्वरूप हमें उपलब्ध होता है, वह तत्कालीन अनेक बोलियों का मिला-जुला रूप है, जिनमें देश-भिन्नता तथा काल-भिन्नता, दोनों का ही होना सम्भव है। सम्भवतः, उस काल की जन सामान्य की विविध बोलियों का ही, हिन्दी की खड़ी बोली के समान, एक परिनिष्ठित साहित्यिक रूप वह वैदिक भाषा है जो हमें आज 'ऋग्वेद' आदि में उपलब्ध होती है।

15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वैदिक भाषा का सामान्य परिचय दीजिए।
2. वैदिक-भाषा के ध्वनि-समूह का परिचय दीजिए।
3. वैदिक भाषा की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

15.7 सहायक ग्रन्थ

1. भाषा-विज्ञान – डॉ० भोलानाथ तिवारी।
2. भाषा-विज्ञान – डॉ० कर्ण सिंह।
3. भाषा-विज्ञान – डॉ० चक्रधर कर्णाटक।
4. तुलनात्मक भाषा विज्ञान – डॉ० पाण्डुरंग दामोदर गुणे।

अनुवाद – डॉ० भोलानाथ तिवारी।

**भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताएँ,
वैदिक-संस्कृत और लौकिक-संस्कृत।**

- 16.1 शीर्षक
- 16.2 प्रस्तावना
- 16.3 उद्देश्य
- 16.4 विषय सामग्री
- 16.5 सारांश
- 16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 16.7 सहायक ग्रन्थ

16.1 शीर्षक

भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताओं, वैदिक-संस्कृत और लौकिक-संस्कृत।

16.2 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के द्वितीय रूप को 'संस्कृत' या 'क्लासिकल संस्कृत' भी कहते हैं। इस भाषा का सबसे प्राचीन एवं आदि काव्य 'वाल्मीकि रामायण' है। 'भाषा-विज्ञान की दृष्टि से 'संस्कृत' का बहुत अधिक महत्त्व है। प्रस्तुत पाठ में संस्कृत भाषा का स्वरूप, काल, ध्वनि-समूह एवं विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। इनके अतिरिक्त वैदिक संस्कृत एवं लौकिक में अन्तर स्पष्ट किया गया है।

16.3 उद्देश्य

- ❖ विद्यार्थियों को प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के 'संस्कृत' रूप से परिचित करवाना।
- ❖ 'संस्कृत' भाषा के ध्वनि समूह से अवगत कराना।

- ❖ 'संस्कृत' भाषा की विशेषता स्पष्ट करना।
- ❖ वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत में अन्तर स्पष्ट करवाना।

16.4 विषय सामग्री

प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं को मुख्यतः दो भागों में बाँटा गया है—

1. वैदिक संस्कृत अथवा वैदिक।
2. लौकिक संस्कृत अथवा संस्कृत।

यहाँ पर **लौकिक संस्कृत** का विस्तारपूर्वक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है :-

'लौकिक संस्कृत' को 'क्लासिकल संस्कृत' भी कहते हैं। भाषा के अर्थ में संस्कृत शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है, जिसका अर्थ है— 'संस्कार की गई, शिष्ट या अप्रकृत भाषा'। वैदिक काल में भाषा के तीन भौगोलिक रूपों— उत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी— का उल्लेख मिला है। लौकिक संस्कृत का मूल आधार इनमें उत्तरी बोली थी, क्योंकि वही प्रामाणिक मानी जाती थी। पाणिनि आचार्य ने अन्यो के भी कुछ रूप आदि लिए हैं और उन्हें वैकल्पिक कहा है। इस प्रकार मध्यदेशी तथा पूर्वी का भी संस्कृत पर कुछ प्रभाव है। लौकिक या क्लासिकल संस्कृत साहित्यिक भाषा है। अतः जिस प्रकार हिन्दी में जयशंकर प्रसाद की गद्य या पद्य भाषा को बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते उसी प्रकार पाणिनीय संस्कृत को भी तत्कालीन बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार प्रसाद जी की भाषा का आधार परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी है, जो बोलचाल की भी भाषा है, उसी प्रकार पाणिनीय संस्कृत भी तत्कालीन पण्डित समाज की बोलचाल की भाषा पर ही आधारित है। 'पाणिनि' द्वारा उसके लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग, सूत्र 'प्रत्यभिवादेऽशुद्धे', दूर से बुलाने में 'प्लुत' के प्रयोग का उनके द्वारा उल्लेख, बोलचाल के कारण विकसित संस्कृत को व्याकरण की परिधि में बाँधने के लिए 'कात्यायन' द्वारा वार्तिकों की रचना आदि बातें यह सिद्ध करती हैं कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा थी। अतः हार्नले, वेबर तथा ग्रियर्सन आदि पश्चिमी विद्वानों का यह कथन कि संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं थी, निराधार है। संस्कृत भारतीय भाषाओं— आर्य तथा आर्येतर की जीवनमूल तो रही ही है, साथ ही तिब्बती, अफगानिस्तानी, चीनी, जापानी, कोरियाई, सिंहली, बर्मी तथा पूर्वी द्वीप—समूह की भी अनेकानेक भाषाओं को इसने अनेक— विशेषतः शाब्दिक—स्तरों पर प्रभावित किया है।

लौकिक संस्कृत या संस्कृत की वर्णमाला या ध्वनि—समूह

स्वर

मूलस्वर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए ओ

— 11

संयुक्त स्वर	अ इ (ऐ) अ उ (औ)		- 2
			= 13
व्यञ्जन			
स्पर्श	क् ख् ग् घ् ङ्	(कण्ठ्य)	
	च् छ् ज् झ् ञ्	(तालव्य)	
	ट् ठ् ड् ढ् ण्	(मूर्धन्य)	
	त् थ् द् ध् न्	(दन्त्य)	
	प् फ् ब् भ् म्	(ओष्ठ्य)	- 25
अन्तःस्थ	य् र् ल् व्		4
अघोष संघर्षी	श् ष् स्		3
घोष ऊष्म	ह्		1
अघोष ऊष्म	(विसर्ग)		1
शुद्ध अनुनासिक	(अनुस्वार)		1
			= 48

इस प्रकार से लौकिक संस्कृत में कुल मिलाकर ध्वनियाँ की संख्या 48 है ।

यूरोप में जो स्थान 'लैटिन' भाषा का है, वही स्थान भारत में संस्कृत का है । भारत में 'रामायण', 'महाभारत' से भी पहले से लेकर आज तक संस्कृत में साहित्य-रचना हो रही है । गुप्तकाल में संस्कृत की सर्वाधिक उन्नति हुई थी । इसका साहित्य विश्व के समृद्धतम साहित्यों में से एक है । वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि इसकी महान् विभूतियाँ हैं । विश्व-विख्यात महाकवि कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक संस्कृत भाषा का शृंगार है । विश्व की अनेक भाषाओं में संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हुआ है ।

भाषाविज्ञान की दृष्टि से संस्कृत का महत्त्व बहुत अधिक है । संस्कृत के अध्ययन के कारण ही यूरोप में आधुनिक युग में 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' का प्रारम्भ हुआ है ।

संस्कृत का विकास उत्तरी भारत में बोली जाने वाली वैदिककालीन भाषा से माना जाता है, यद्यपि भारत के मध्य भाग तथा पूर्वी भाग की बोलचाल की भाषाओं का प्रभाव भी उस पर रहा होगा । लगभग 8वीं शताब्दी ई० पू० में इसका प्रयोग साहित्य में होने लगा था । यह वह अवस्था है, जब संस्कृत की आधारभूत भाषा का प्रयोग बोलचाल की भाषा और साहित्य की भाषा दोनों के रूप में हो रहा था । अनुमान किया जाता है कि लगभग ई० पू० 5वीं शताब्दी या कुछ क्षेत्रों में उसके भी बाद तक संस्कृत की आधारभूत यह भाषा बोली जाती थी और तब तक उत्तर भारत में

कई अन्य ऐसी बोलियाँ भी जन्म ले चुकी थीं, जिनसे आगे चलकर अनेक प्राकृतों अपभ्रंशों तथा आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास हुआ है ।

लगभग ई० पू० 5वीं शताब्दी या 7वीं शताब्दी में 'पाणिनि' ने संस्कृत की उस आधारभूत भाषा को व्याकरण के नियमों से बद्ध करके एकरूपता प्रदान की और यह भाषा 'संस्कृत' कहलाने लगी । अर्थात् अपने स्वाभाविक विकास के कारण नियन्त्रण के अभाव में जो भाषा प्राकृत रूप में चल रही थी, वह तब 'संस्कृत' हो गई । उसका संस्कार कर दिया गया, उसे शुद्ध रूप प्रदान कर दिया गया ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस काल में 'संस्कृत' साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर रही थी, उस समय भारत में स्वयं साहित्यिक संस्कृत की आधारभूत बोली तथा उससे मिलती-जुलती कई अन्य बोलियाँ भी व्यवहार में थीं, किन्तु उन सबसे 'संस्कृत' ही शिष्ट साहित्यिक या राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी ।

वैदिक संस्कृत में 52 ध्वनियाँ थीं, संस्कृत में ध्वनियों की संख्या केवल 48 है । अर्थात् वैदिक भाषा की ध्वनियाँ ँ, ऌ, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय— संस्कृत में नहीं मिलती है ।

इसके साथ ही अनेक ध्वनियों के उच्चारण में परिवर्तन भी मिलता है । उदाहरण के लिए वैदिक में 'ऋ' और 'लृ' का उच्चारण स्वर-ध्वनियों के रूप में था, किन्तु संस्कृत में इनकी स्वरता नष्ट हो गयी और इनका उच्चारण 'र्' और 'लृ' व्यञ्जनों जैसा होने लगा । दन्तोष्ठ्य 'वृ' का उच्चारण भी अन्तःस्थ 'वृ' जैसा ही हो गया है । वैदिक भाषा की शुद्ध 'अनुस्वार' (ँ) ध्वनि भी संस्कृत में अनुनासिक (ँ) हो गयी है । 'ऐ' तथा 'औ' का उच्चारण संयुक्त स्वरों जैसा न होकर मूलस्वरों जैसा होने लगा है ।

संस्कृत भाषा की विशेषताएँ

संस्कृत, लौकिक संस्कृत वा क्लासिकल संस्कृत की सबसे प्रमुख विशेषता पाणिनिकृत नियमबद्धता है । संस्कृत की यह विशेषता ही उसे वैदिक से पृथक् करती है । जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, वैदिक भाषा में शब्दरूपों तथा क्रियारूपों की विविधता है, सन्धि-नियमों आदि में भी पर्याप्त शिथिलता है । एक ही अर्थ में विभिन्न प्रत्ययों का प्रयोग है, आदि आदि । इन सबके साथ ही वैदिक भाषा में अपवादों की संख्या भी बहुत अधिक है तथा भाषा में स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है ।

इसके विपरीत संस्कृत या लौकिक संस्कृत बहुत ही नियमबद्ध तथा नियन्त्रित है । उसकी विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

1. वैदिक भाषा में प्रयुक्त ँ, ऌ, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ध्वनियाँ का संस्कृत में लोप हो गया है ।
2. पाणिनिकृत नियमों (अष्टाध्यायी-सूत्रों) के द्वारा उसमें शब्द-रूपों तथा क्रियारूपों में एकरूपता आ गयी है ।

3. 'लेट्' लकार का प्रयोग समाप्त हो गया है।
4. एक ही अर्थ में प्रयुक्त अनेक प्रत्ययों के स्थान पर केवल एक ही प्रत्यय का प्रयोग रूढ़ हो गया; जैसे तमुन्, क्त्वा आदि।
5. अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग बन्द हो गया; जैसे- 'दर्शत'- (सुन्दर), दृशीक- (सुन्दर), 'रपस्'- (चोट, दुर्बलता, रोग), अमूर- (बुद्धिमान), मूर (मूढ), ऋदूदर (दयालु), अक्तु (रात्रि), अमीवा (व्याधि) आदि।
6. अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग संस्कृत में भिन्न अर्थों में होने लगा। जैसे-

	शब्द	वैदिक अर्थ	संस्कृत-अर्थ
1.	अराति	शत्रुता	शत्रु
2.	अरि	ईश्वर, धार्मिक, शत्रु	शत्रु
3.	न	उपमावाचक (जैसा), निषेधवाचक (नहीं)	निषेधवाचक (नहीं)
4.	मृळीक	कृपा	शिव का एक नाम
5.	क्षिति	गृह, निवासस्थान, बस्ती, मनुष्य	पृथ्वी
6.	वध	भयङ्कर शस्त्र	हत्या करना
7.	सन्धि-कार्य अनिवार्य सा हो गया।		
8.	उपसर्गों का स्वतन्त्र प्रयोग बन्द हो गया।		
9.	स्वरों में से 'लृ' लुप्त-सा हो गया। स्वरों का उदात्त-अनुदात्त और स्वरित उच्चारण समाप्त हो गया।		
10.	स्वरभक्ति अप्रचलित हो गयी।		

इस प्रकार वैदिक भाषा की अपेक्षा संस्कृत भाषा अधिक नियमित एवं व्यवस्थित हो गयी तथा वैदिक भाषा की अपेक्षा संस्कृत के स्वरूप में पर्याप्त परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तन को जानने के लिए यहाँ दोनों की तुलना प्रस्तुत करना आवश्यक है।

वैदिक भाषा तथा संस्कृत की तुलना

वैदिक भाषा तथा संस्कृत भाषा की स्वरूपगत विशेषताओं को पृथक्-पृथक् जानने के पश्चात् यहाँ तुलनात्मक दृष्टि से उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

क) वैदिक तथा संस्कृत में रचनात्मक साम्य

1. दोनों भाषाएँ शिल्पयोगात्मक थीं।
2. दोनों ही भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों में धातुओं का अर्थ प्रायः सुरक्षित था।
3. दोनों में ही तीन लिङ्ग (पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग) तथा तीन वचन— (एकवचन, द्विवचन, बहुवचन) थे।
4. दोनों में ही वाक्य में शब्दों का स्थान निश्चित नहीं था।
5. दोनों में ही 6 कारक— कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण (सम्बन्ध तथा सम्बोधन को कारक नहीं मानना चाहिए) तथा सात विभक्तियाँ— प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी (सम्बोधन को छोड़कर) थीं।

ख) वैदिक तथा संस्कृत में रचनात्मक वैषम्य

वैदिक	संस्कृत
1. वैदिक भाषा में संगीतात्मक स्वराघात की प्रधानता थी।	संस्कृत में बलात्मक स्वराघात की प्रधानता थी।
2. स्वरों में उदात्तादि गुण थे।	स्वरों में उदात्तादि गुण नहीं थे।
3. स्वरों का ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत उच्चारण होता था।	स्वरों का केवल ह्रस्व और दीर्घ उच्चारण होता था। प्लुत उच्चारण समाप्त हो गया था।
4. वैदिक भाषा में 'लृ' स्वर का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता था।	'लृ' स्वर का लोप हो गया।
5. वैदिक भाषा में ऌ ड्ह जिह्वमूलीय तथा उपमध्मानीय व्यञ्जन ध्वनियाँ थीं।	संस्कृत में इन चारों व्यञ्जनो ध्वनियों का लोप हो गया था।
6. स्वरभक्ति का प्रयोग होता था।	स्वरभक्ति का प्रयोग नहीं होता था।
7. सन्धि—नियमों का पालन अनिवार्य नहीं था। अनेक अपवाद उपलब्ध होते हैं।	सन्धि—नियमों का पालन अनिवार्य था, अपवाद नहीं मिलते।
8. शब्द—रूपों में विविधता है। एक ही शब्द के, एक ही विभक्ति तथा वचन में अनेक रूप मिलते हैं।	शब्दरूपों में एकरूपता है। विविधता और अपवाद कम हो गए हैं।
9. धातुरूपों की दृष्टि से वैदिक भाषा अधिक सम्पन्न है। एक ही धातु का अनेक रूपों तथा अर्थों में प्रयोग मिलता है।	धातुरूपों में विविधता कम हो गयी, कालों और विभक्तियों का स्वरूप बहुत नियमित हो गया।
10. आत्मनेपद और परस्मैपद का कोई विशेष नियम नहीं था।	आत्मनेपद और परस्मैपद का प्रयोग नियमानुसार है।

11.	वैदिक भाषा में लङ्, लुङ् और लिट् लकार का प्रयोग किसी भी काल में हो सकता था।	इनका प्रयोग केवल भूतकाल में ही होता था।
12.	वैदिक भाषा में 'लेट्' लकार सहित 11 लकार थे।	'लेट्' लकार नहीं रहा। अतः लकारों की संख्या 10 रह गयी।
13.	वैदिक भाषा में एक ही अर्थ में प्रत्ययों के विविध रूप मिलते हैं। जैसे तुमुन् अर्थ में, तुमुन् के अतिरिक्त 15 प्रत्यय और भी हैं। क्त्वा अर्थ में भी 3 अन्य प्रत्यय मिलते हैं।	प्रत्ययों के विविध रूप समाप्त हो गए।
14.	उपसर्गों का प्रयोग धातु से पृथक् स्वतन्त्र हो सकता था।	उपसर्गों का स्वतन्त्र प्रयोग समाप्त हो गया। संस्कृत में वे धातु के साथ ही प्रयुक्त होने लगे।
15.	श्रेष्ठतावाचक प्रत्ययों का प्रयोग संज्ञाओं के साथ मिलता है, जैसे कवितरः, कण्वतमः आदि।	संस्कृत में श्रेष्ठतावाचक प्रत्ययों का प्रयोग विशेषणों के साथ मिलता है; जैसे सुन्दरतरः, सुन्दरतमः आदि।
16.	वैदिक भाषा में— 'अक्तु', 'अमूर', 'ईम', 'उक्थ', 'ऊति', 'ऋदूदर' 'दृशीक', 'विचर्षणी', 'सीम' आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है।	ये शब्द प्रयोग से बाहर हो गए हैं।
17.	वैदिक भाषा के निम्नलिखित शब्द और उनका अर्थ इस प्रकार हैं— क) अरि = ईश्वर, धार्मिक, शत्रु ख) अराति = शत्रुता, कृपणता ग) क्षिति = निवासस्थान, गृह, बस्ती, मनुष्य घ) न = जैसे, नहीं ङ) मृळीक = कृपा, अनुग्रह च) वध = भयानक शस्त्र	संस्कृत में इनके अर्थों में इस प्रकार परिवर्तन हो रहा है— अरि = शत्रु अराति = शत्रु क्षिति = पृथ्वी न = नहीं मृळीक = शिव का एक नाम वध = हत्या

16.5 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'संस्कृत' प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का दूसरा रूप है। यूरोप में जो स्थान 'लैटिन' भाषा का है, भारत में वही स्थान 'संस्कृत' का है। संस्कृत में ही समस्त प्राचीन ज्ञान-विज्ञान, कला, पुराण, काव्य नाटकादि हैं। विश्व की अनेक भाषाओं में संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद हो चुका है, जिससे इस भाषा की श्रेष्ठता सिद्ध होती है। वैदिक-संस्कृत तथा लौकिक-संस्कृत में कुछ समानताओं के साथ ही साथ अनेक विषमताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं।

16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लौकिक संस्कृत का सामान्य परिचय दीजिए।
2. लौकिक-संस्कृत की ध्वनियों का परिचय दीजिए।
3. लौकिक संस्कृत की विशेषताओं स्पष्ट कीजिए।
4. वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

17.7 सहायक ग्रन्थ

1. भाषा-विज्ञान – डॉ० भोलानाथ तिवारी।
2. भाषा-विज्ञान – डॉ० कर्ण सिंह।
3. भाषा-विज्ञान – डॉ० चक्रधर कर्णाटक।
4. तुलनात्मक भाषा विज्ञान – डॉ० पाण्डुरंग दामोदर गुणे। अनुवाद – डॉ० भोलानाथ तिवारी।



मध्यकालीन आर्य भाषा (पालि)

- 17.1 शीर्षक
- 17.2 प्रस्तावना
- 17.3 उद्देश्य
- 17.4 विषय सामग्री
- 17.5 सारांश
- 17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 17.7 सहायक ग्रन्थ

17.1 शीर्षक मध्यकालीन आर्य भाषा (पालि)

17.2 प्रस्तावना

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का काल 500 ई० पू० से 1000 ई० पू० तक माना जाता है। इस पूरे काल की भाषा को सामान्य रूप से 'प्राकृत' कहा गया है। इस 'प्राकृत' को पुनः तीन भागों में विभाजित किया जाता है –

- (क) प्राचीन प्राकृत या पालि
- (ख) मध्यकालीन प्राकृत, तथा
- (ग) परकालीन प्राकृत या अपभ्रंश।

प्रस्तुत पाठ में 'पालि' भाषा का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

17.3 उद्देश्य

- ❖ विद्यार्थियों को मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के 'पालि' रूप से परिचित कराना।

- ❖ 'पालि' भाषा के भौगोलिक क्षेत्र से परिचित करवाना।
- ❖ पालि की विशेषताओं से अवगत कराना।

17.4 विषय सामग्री

यह संकेत किया जा चुका है कि प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल में जनभाषा पर आधारित भाषा के दो रूप वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त हुए। इनमें प्रथम रूप **वैदिक भाषा** के नाम से जानी जाती है। दूसरे रूप— **लौकिक संस्कृत** को 'पाणिनि' ने अपने व्याकरण में जकड़ कर उसे सदा सर्वदा के लिए स्थायी रूप दे दिया, किन्तु जनभाषा ने इस बन्धन को नहीं माना, वह अबाधगति से परिवर्तित होती रही, बढ़ती रही। इस जनभाषा के मध्यकालीन रूप को ही '**मध्यकालीन आर्यभाषा**' की संज्ञा दी गई है। इसका काल 500 ई० पू० से 1000 ई० तक का है। इस पूरे काल की भाषा को सामान्यरूप से '**प्राकृत**' कहा गया है। इस प्राकृत को पुनः तीन भागों में विभाजित किया जाता है—

- क) **प्रथम प्राकृत** (500 ई० पू० से लेकर ईस्वी सन् के आरम्भ तक)
- ख) **द्वितीय प्राकृत** (काल ई० सन् के आरम्भ से 500 ई० तक)
- ग) **तृतीय प्राकृत** (काल 500 ई० से लेकर 1000 ई० तक)

प्रथम प्राकृत— इसमें **पालि** तथा **अभिलेखी** प्राकृत आती है।

क) **पालि**— पालि बौद्ध धर्म (विशेषतः दक्षिणी बौद्धों) की भाषा है। इसे '**मागधी**', 'देशभाषा' तथा '**प्रथम प्राकृत**' कहा गया है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद है। **पालि** शब्द के पुराने प्रयोग 'भाषा' के अर्थ में नहीं मिलते। इसका प्राचीनतम प्रयोग चौथी सदी में लंका में लिखित ग्रन्थ '**दीपवंस**' में हुआ है। वहाँ इसका अर्थ 'बहुवचन' है। बाद में प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष ने भी इसका प्रयोग लगभग इसी अर्थ में किया है। तबसे काफी बाद तक पालि शब्द का प्रयोग पालि साहित्य में हुआ है, किन्तु कभी भी भाषा के अर्थ में नहीं। भाषा के अर्थ में वहाँ **मगध भाषा**, **मागधी**, **मागधिक भाषा** आदि का प्रयोग हुआ है। सिंहल के लोग इसे अब भी **मागधी** कहते हैं। भाषा के अर्थ में '**पालि**' का प्रयोग अत्याधुनिक है और यह प्रयोग यूरोप के लोगों द्वारा हुआ है।

पालि की व्युत्पत्ति प्रमुखतः दो प्रकार की है। एक तो वे हैं, जिनमें '**पालि**' के प्राचीनतम प्राप्त अर्थ का ध्यान रखा गया है और दूसरी वे हैं, जिनमें अन्य आधार लिए गए हैं। यहाँ संक्षेप में कुछ प्रमुख मतों का उल्लेख किया जा रहा है।

- 1) श्री विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसार '**पालि**' का सम्बन्ध संस्कृत '**पक्ति**' (झपन्ति झ पत्ति झ पट्टि झ पल्लि

अ **पालि**) से है। शुरु में बुद्ध की पंक्तियों के लिए इसका प्रयोग हुआ और बाद में उसी से विकसित होकर भाषा के अर्थ में। किन्तु 'पंक्ति' से 'पालि' हो जाना तत्कालीन ध्वनि-परिवर्तन के नियमों के अनुकूल नहीं है।

2) एक अन्य मत के अनुसार **वैदिक** और **संस्कृत** आदि की तुलना में यह 'पल्लि' या 'गाँव' की भाषा थी। 'पालि' शब्द 'पल्लि' का ही विकास है अर्थात् इसका अर्थ है 'गाँव की भाषा'। 'पल्लि' की 'पालि' बन तो सकता है किन्तु यह प्रवृत्ति पालि काल के बहुत बाद में मिलती है।

3) तृतीय मत के अनुसार यह सबसे पुरानी प्राकृत है। इसलिए शायद इसे '**प्राकृत**' नाम दिया गया और 'पालि' शब्द 'प्राकृत' (अ **पाकट** अ **पाअड** अ **पाअल** अ **पालि**) का ही विकसित रूप है। यह विकास भी बहुत तर्क-सम्मत नहीं है।

4) कोसाम्बी नामक बौद्ध विद्वान् के अनुसार इसका सम्बन्ध 'पाल्' अर्थात् 'रक्षा करना' से हैं। इसने बुद्ध के उपदेशों को सुरक्षित रखा है। इसलिए यह नाम पड़ा है।

5) 'पा पालेति रक्खतीति' रूप में भी कुछ लोगों ने 'पा' में 'लि' (णिच्) प्रत्यय लगाकर इसकी व्युत्पत्ति दी है। 'अत्थान पाति रक्खतीति तस्मात् पालि' अर्थात् यह अर्थों की रक्षा करती है, अतः पालि है। इस प्रकार की व्युत्पत्ति कुछ प्राचीन आचार्यों ने भी दी है किन्तु यह भी तर्क-सम्मत नहीं है।

6) एक अन्य मत में '**प्रलेय**' या '**प्रालेयक**' (पड़ोसी) से पालि का सम्बन्ध है।

7) भिक्षु सिद्धार्थ सं० '**पाठ**' से (बुद्ध पाठ या बुद्ध वचन) इसे (पाठअपालि अ पाळि; पालि में संस्कृत 'ल' का 'ळ' हो जाता है) निकला मानते हैं।

8) कुछ लोग '**पालि**' को **पंक्ति** अर्थ का बोधक एक संस्कृत शब्द मानते हैं। इनके अनुसार यही शब्द पहले बुद्ध की पंक्तियों के लिए फिर उनके उपदेशों के लिए और फिर पुस्तक के लिए और फिर उस भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा।

9) राजवाडे के अनुसार कुछ लोग **पालि** का सम्बन्ध संस्कृत प्रकट (पाअड अ पाअल अ पालि) से भी जोड़ने के पक्ष में हैं।

10) डॉ० मैक्सवेल्लेसर ने '**पालि**' को 'पाटलि' (पाटलीपुत्र की भाषा) से व्युत्पन्न माना है, किन्तु पालि वहाँ की भाषा नहीं थी।

11) सबसे प्रामाणिक व्युत्पत्ति भिखु जगदीश कश्यप द्वारा दी गई है। प्रायः बहुत से भारतीय विद्वान् इससे सहमत हैं। इनके अनुसार '**पालि**' का सम्बन्ध **परियाय** (सं० पर्याय) से है। 'धम्म-परियाय' या 'पलियाय' का प्रयोग प्राचीन बौद्ध साहित्य में बुद्ध के उपदेश के लिए मिलता है। इसकी विकास परम्परा **परियाय** अ **पलियाय** अ **पालियाय** अ **पालि** है।

‘पालि’ भाषा का प्रदेश

यह प्रश्न भी कम विवादास्पद नहीं है कि पालि मूलतः किस प्रदेश की भाषा थी। अनेक विद्वानों के मतों को ध्यान में रखते हुए एक बात स्पष्ट होती है कि पालि में विभिन्न प्रदेशों की बोलियों के तत्त्व हैं, इसी कारण विभिन्न लोगों ने इसे विभिन्न स्थानों से सम्बद्ध किया है। वस्तुतः अपने मूल में पालि मध्यप्रदेश की भाषा है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि वस्तुतः ‘पालि’ बुद्ध की भाषा नहीं है। सम्भवतया बुद्ध ने तो अपने उपदेश मागधी भाषा में ही दिए थे, किन्तु कुछ सौ वर्षों के बाद उसका अनुवाद उस समय की जिस अन्तर्-प्रान्तीय भाषा में हुआ वही भाषा ‘पालि’ कहलाई। इसका मूल आधार तो उस काल की मध्यदेश की बोली ही है, किन्तु इस पर उस काल की अन्य बोलियों का प्रभाव भी अवश्य ही रहा होगा।

पालि साहित्य का सम्बन्ध प्रमुखतः भगवान् बुद्ध से है। इसमें उन्हीं से सम्बद्ध काव्य, कथाओं या अन्य साहित्य-विधाओं की रचना प्रमुखतः हुई। यों इसमें कुछ विशेष संस्कृति या दर्शन से सम्बद्ध पुस्तकें भी लिखी गई हैं। इसी प्रकार कोश, छन्दशास्त्र या व्याकरण की भी कुछ पुस्तकें लिखी गई हैं। परम्परागत रूप से पालि साहित्य को पिटक और अनुपिटक दो वर्गों में बाँटते हैं, जिनमें ‘जातक’, ‘धम्मपद’ ‘मिलिन्दपञ्चो’, ‘बुद्धघोष की अट्टकथा तथा महावंश आदि प्रमुख हैं। पालि भाषा का प्रभाव भारत की भाषाओं के अतिरिक्त श्रीलंका, बर्मा ओर स्याम की भाषा पर विशेष तथा तिब्बत, चीन और जापान आदि की भाषाओं पर कुछ-कुछ पड़ा है।

पालि भाषा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ

ध्वनिया- पालि के प्रसिद्ध वैयाकरण ‘कच्चायन’ के अनुसार पालि में 41 ध्वनियाँ थी- ‘अक्खरापादयो एकचत्तालीस’। दूसरे प्रसिद्ध वैयाकरण ‘मोग्गलान’ के अनुसार 43 ध्वनियाँ थी- ‘अआदयो तितालिस वण्णा’। किन्तु वस्तुतः पालि में कुल 47 ध्वनियाँ हैं :- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, य, य, र, ल, क्, क्, व, व, स्, ह निगगहीत।

- 1) अर्थात् स्वरों में ह्रस्व **एँ,ओँ** इन दो का विकास हो गया था। ऐसा बलाघात के कारण हुआ। शब्द में संयुक्त या द्वित्व व्यञ्जन होने पर बलाघात उस पर चला जाता था, अतः पूर्ववर्ती स्वर ह्रस्व हो जाता था- सं : मैत्री झ पा0 मेंती, सं0 ओष्ठ पा0 ओहँ।
- 2) ऋ, ॠ, लृ ध्वनियाँ पूर्णतः समाप्त हो गईं। ऋ का पालि में प्रायः अ (हृदय-हृदय, कृषि-कसि), इ (ऋण-इण), अथवा उ (पृथिवी-पुथवी) हो गया। कभी-कभी रु (वृक्ष-रुक्ख) या र आदि अन्य ध्वनियाँ भी हो गईं। लृ का उ (क्लृप्त - कुत्त) हो गया।
- 3) ऐ,औ भी नहीं रहे। ‘ऐ’ वर्ण कहीं ए (ऐरावण-एरावण) हो गया और कहीं ऐँ (मैत्री-मेंती)। इसी प्रकार औ का ओ (गौतम-गोतम) अथवा ओ हो गया है। इस तरह कुल स्वर 10 थे।

4) व्यञ्जनों में, वैदिक की तरह ही, पालि में भी ळ, ळ्ह ध्वनियाँ थीं। यह उल्लेख्य है कि लौकिक संस्कृत के लिखित रूप में ये दोनों नहीं थीं।

5) विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय भी नहीं रहे।

6) वैदिक तथा संस्कृत में श् ष् स् तीन थे। पालि में तीनों के स्थान में स् हो गया। वैदिक शवशान (श्मशान) – पा० सुसान, शय्या–सेय्या, निषण्ण–निसिन्न, तृष्णा–तसिण, साधु–साहू।

7) अनुस्वार पालि में स्वतन्त्र ध्वनि है, जिसे पालि वैयाकरणों ने **निग्गहीत** नाम से अभिहित किया है।

तुलनात्मक दृष्टि से यह उल्लेख्य है कि वैदिक में कुल ध्वनियाँ **55**, लौकिक संस्कृत में **52**, किन्तु पालि में **47** थीं। ध्वनि–प्रक्रिया की दृष्टि से पालि में निम्नांकित परिवर्तन उल्लेख्य हैं–

1. **घोषीकरण**– स्वर मध्यग अषोष व्यञ्जन के घोष होने की कुछ प्रवृत्ति है –माकन्दिय झ मागन्दिय, उताहो झ उदाहु। प् ब् होकर नहीं रुकता अपितु वह व् के रूप में परिवर्तित हो जाता है : कपित्थ झ कवित्थ। ट् ड् होकर ळ् हो जाता है : स्फटिक झ पळिक।

2) **अघोषीकरण**– यह प्रवृत्ति अधिक नहीं है। इसका कारण सम्भवतः पैशाची प्रभाव है। मृदग झ मुतिंग, परिघ झ परिख, अगुरु झ अकलु, कुसीद झ कुसीत, छगल झ छकल।

3) **महाप्राणीकरण**– सुकुमार झ सुखुमाल, परशु झ फरसु, कील झ खील, पल झ फल।

4) **अल्प–प्राणीकरण**– भगिनी झ बहिणी।

5) **समीकरण**– यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है : चत्वर झ चच्चर, निम्न झ निन्न, सर्व झ सब्, मार्ग झ मग्ग, धर्म झ धम्म, कर्म झ कम्म, जीर्ण झ जिण्ण।

6) स्वर मध्यग संस्कृत ङ्, ढ् का ळ् ळ्ह : आपीड झ आवेळ, मीढ झ मीळ्ह।

7) र् ल् का आपसी परिवर्तन र झ ल, परि झ पलि, तरुण झ तलुण; ल झ र, किल झ किर। र् का ल् पूर्वी प्रभाव है तो ल् का र् पश्चिमी।

8) महाप्राण के ह हो जाने की भी कुछ प्रवृत्ति है : भवति झ होति, लघु झ लहु, रुधिर झ रुहिर। यह प्रवृत्ति घोष महाप्राणों की है।

मात्रा– पालि में विशेष मात्रा–नियम (**Law of Mora**) मिलता है। कुछ थोड़े अपवादों को छोड़कर भाषा में अक्षर एक या दो मात्राओं से अधिक का नहीं होता। जहाँ भी संस्कृत शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन या द्वित्व व्यञ्जन के पूर्व दीर्घ स्वर है, पालि में या तो (1) संयुक्त या द्वित्व, व्यञ्जन रहता है तथा उसके पूर्व का स्वर ह्रस्व हो जाता है जैसे कार्य झ कय्य, जीर्ण झ जिण्ण, मार्ग झ मग्ग या फिर (2) व्यञ्जन संयुक्त या द्वित्व न होकर एक या सामान्य हो

जाता है और स्वर दीर्घ : दीर्घ झ दीघ, लाक्षा झ लाखा। ए, ऐ, ओ, औ के द्वस्व रूप प्रायः एँ औँ मिलते हैं : श्लेषम झ सँम्ह, मैत्री झ मेंती झ, ओष्ठ झ औँट्ट।

स्वराघात- पालि में स्वराघात की स्थिति विवादास्पद है। टर्नर के अनुसार पालि में वैदिकी की भाँति ही संगीतात्मक एवं बलात्मक दोनों स्वराघात था। ग्रियर्सन पालि में केवल बलात्मक स्वराघात मानते हैं। जूल ब्लाक को पालि में किसी भी स्वराघात के होने के बारे में संदेह है। कुछ लोग पालि में केवल संगीतात्मक स्वराघात मानते हैं।

व्याकरण- पालि भाषा, व्याकरणिक दृष्टि से वैदिक संस्कृत की भाँति ही स्वच्छंद एव विविध रूपों वाली है किन्तु साथ ही वैदिक या संस्कृत की तुलना में उसमें पर्याप्त सरलीकरण भी हुआ है। यह सरलीकरण, उच्चारण में, समीकरण आदि के रूप में तो हुआ ही है, साथ ही, सादृश्य के आधार पर विकास के कारण व्याकरण के क्षेत्र में भी हुआ है।

- 1) व्यञ्जनांत प्रातिपदिक प्रायः नहीं हैं। अन्त्य व्यञ्जन-लोप के सामान्य नियम के कारण या तो अन्त्य व्यञ्जन लुप्त हो गए हैं। (विद्युत् झ विज्जु) या अन्त्य स्वरागम के कारण शब्द स्वरान्त (शरत्-शरद) हो गए हैं।
- 2) सादृश्य के कारण अनेक भिन्न-भिन्न स्वरान्त शब्दों के बहुत से रूप भी समान हो गए हैं। इस दिशा में अकारान्त शब्दों ने अपने प्रयोग-बाहुल्य के कारण अन्यो को प्रभावित किया है। उदाहरणार्थ- इकारान्त (अग्नि), उकारान्त (भिक्षु) के सम्प्रदान एवं सम्बन्ध के रूप अकारान्त के समान (अग्निस्स, भिक्षुस्स) मिलते हैं।
- 3) **लिंग** तीन हैं। यों अपने बहुप्रयोग के कारण पुल्लिंग ने नपुंसकलिंग को प्रभावित किया है : जैसे 'सुखैः' के लिए 'सुखो'।
- 4) द्वे, उभो जैसे दो-एक को छोड़कर पालि में द्विवचन नहीं है।
- 5) वैदिक की तरह रूपाधिक्य भी पालि में है। उदाहरणार्थ धर्म का संस्कृत में सप्तमी में एकवचन में केवल 'धर्मे' होगा किन्तु पालि में **धम्मे** के अतिरिक्त, **धम्मस्मि** तथा **धम्महि** भी।
- 6) पालि सर्वनाम प्रायः पूर्ववर्ती सर्वनाम रूपों के ही ध्वनि नियमों के अनुकूल विकास हैं। इनमें एक ही अन्तर है, वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में सभी मध्यम पुरुष बहुवचन के रूप य - से शुरू होते हैं, किन्तु पालि में सभी 'त' से शुरू होते हैं। जैसे- युष्मे- तुम्हे, युष्माकम्- तुम्हाकं आदि।
- 7) क्रिया रूपों में तीन पुरुष तथा दो वचन हैं। **पद** केवल **परस्मै** है। **आत्मने** कुछ अपवादों को छोड़कर नहीं है। धातुओं के दसों गण हैं, यद्यपि संस्कृत की तुलना में कुछ मिश्रण हो गया है। एक ही धातु के कुछ रूप एक गण के समान हैं तो कुछ दूसरे के। क्रियार्थ चार- निश्चयार्थ, आज्ञार्थ, आदरार्थ आज्ञा तथा सम्भावनार्थ एवं काल चार- लट्, लुङ्, लृट्, लृङ् हैं। पालि में लिट् नहीं है।

शब्द— तद्भव शब्द अधिक हैं। **तत्सम** उससे बहुत कम।

पालि में विभिन्न तत्त्व— पालि में अनेक व्याकरणिक एवं ध्वन्यात्मक तत्त्व मिलते हैं।

- 1) इसमें ळ, ळ्ह, कुछ संगीतात्मक स्वराघात, नाम तथा क्रिया रूपों की विविधता— उदाहरणार्थ वैदिक में प्रथमा बहुवचन के देवाः, देवासः; दो रूप थे। संस्कृत में केवल 'देवाः' रूप है किन्तु पालि में देवा, देवासे दोनों हैं; भवामि और विकसित रूप 'होमि', पालि में दोनों हैं। अनेक वैदिक रूपों के समान रूप (नपुं० प्रथमा बहु **रूपा, रूपानि** भी है, जो नियमित है, और वैदिक रूपों से प्रभावित है) एवं लेट् आदि का होना इसे वैदिक के समीप सिद्ध करता है।
- 2) अनेक शब्दों में र् के स्थान पर ल् का हो जाना मागधी जैसा है : एरड झ एलंद।
- 3) कुछ में र-ल दोनों हैं (तरुण झ तरुण; तलुणः, त्रयोदश झ तेरस, तेलस); श एवं ष का स् हो गया है (शिशु झ सिसु, घोष झ घोस), तथा अकारान्त पुं० एवं नपुं० लिङ्ग के शब्दों का प्रथमा एक० ओकारान्त 'धम्मो' है। ये बातें पालि को मध्यदेशीय प्राकृत या शौरसेनी के निकट ले जाती हैं।
- 4) परिघ झ पलिख, कुसीद झ कुसीत, अगुरु झ अकलु जैसे उदाहरणों में अघोषीकरण की प्रवृत्ति इसमें पेशाची प्राकृत की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करती है। इस तरह पालि में अनेक प्रवृत्तियों एवं तत्त्वों का मिश्रण है।

बोलियाँ एवं भाषा रूप— पालि काल में आर्य-भाषी भारत में वे ही चार बोलियाँ थीं, जिनके नाम हैं— **पश्चिमोत्तरी, दक्षिणी, मध्यवर्ती** तथा **पूर्वी**। पालि साहित्य में आद्यंत पालि का एक रूप नहीं रहा है। भाषा की पहली सीढ़ी **त्रिपिटक** (सुत्त, विनय, अभिधम्म) की गाथाओं में मिलती है। यह पालि का प्राचीनतम रूप है। इसमें रूपों का बाहुल्य है। भाषा का इससे कुछ विकसित रूप **त्रिपिटक** के गद्य भाग में मिलता है। यहाँ रूप कम हैं और भाषा में अपेक्षाकृत एकरूपता है। इसमें कुछ ऐसे नए रूप भी मिलते हैं, जो प्रथम में नहीं हैं, साथ ही प्रथम के कई पुराने रूपों को इसमें स्थान नहीं मिला है। पालि के विकास की तीसरी सीढ़ी और बाद के गद्य जैसे **'मिलिन्दपञ्च'** या बुद्धघोष की **'अट्ठकथा'** आदि में मिलती है। चौथी सीढ़ी उत्तरकालीन काव्य-ग्रन्थों— जैसे **दीपवंस, महावंस** आदि— की भाषा में मिलती है। इस रूप पर संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव है, साथ ही इस भाषा में जीवन के लक्षण नहीं हैं। एक कृत्रिमता—सी है, जो यह स्पष्ट कर देती है कि पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर इसका भवन खड़ा है।

(ख) शिलालेखी प्राकृत

मध्यकालीन भारतीय **आर्यभाषा प्रथम प्राकृत** के दो रूप उपलब्ध होते हैं— क) पालि और (ख) शिलालेखी प्राकृत। 'पालि' का विवरण पीछे किया जा चुका है। यहाँ शिलालेखी प्राकृत का परिचय दिया जा रहा है—

- 1) **शिलालेखी प्राकृत** को ही कुछ लोग **अशोकी प्राकृत, अशोकन प्राकृत** या **लाट प्राकृत** या **लेण बोली** कहते हैं, किन्तु इन सब नामों में सर्वोपयुक्त नाम **शिलालेखी प्राकृत** ही है।

2) जैसा कि सर्वविदित है अशोक ने अपने राज्य में अपने प्रशासनिक तथा धार्मिक सिद्धान्तों को अभिलेखों के रूप में चट्टानों तथा स्तम्भों (लाटों) पर खुदवाया था। इनकी लिपि **ब्राह्मी** तथा **खरोष्ठी** है। अभी तक ऐसे लगभग 20 अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं।

3) **भाषा-विज्ञान** की दृष्टि से इन अभिलेखों का महत्त्व बहुत अधिक माना जाता है, क्योंकि इनमें तत्कालीन (इ0 पू0 दूसरी सदी) भाषा के स्वरूप का ज्ञान होता है। इन अभिलेखों की भाषा में स्थान-भेद से बोली-भेद विद्यमान है, जिससे ज्ञात होता है कि ये अपने-अपने प्रदेश (स्थान) की बोली के आधार पर ही तैयार कराए गए थे। अतः इनसे उस-उस स्थान की विभिन्न बोलियों (प्राकृतों) का ज्ञान होता है जहाँ-जहाँ अशोक के ये अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

4) अशोक के अभिलेखों की भाषा का अध्ययन करने के उपरान्त 'फ्रैंक', 'सेनार्ट' तथा 'डॉ० गुणे' आदि विद्वान् किसी एक ही निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पायें। विभिन्न मतों के आधार पर अभिलेखों में 2 से लेकर 5 बोलियों तक का स्वरूप ज्ञात होता है। संक्षेप में, इन शिलालेखों से तत्कालीन-

(क) उत्तर-पश्चिमी

(ख) दक्षिण-पश्चिमी और

(ग) पूर्वी

इन तीन बोलियों का ज्ञान तो स्पष्ट रूप से होता है, साथ ही इनसे-

घ) मध्यदेशी तथा

ङ) दक्षिणी बोलियों का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

शिलालेखी प्राकृत की कुछ प्रमुख विशेषताएँ

1) ध्वनियाँ प्रायः वही हैं, जो पालि में हैं। स्, र्, ल्, ज् तथा ण् ध्वनियों के प्रयोग में स्थल-भेद से अन्तर मिलता है। उदाहरणार्थ- उत्तरी-पश्चिमी बोली में जहाँ, 'श्' 'स्' और 'ष्' तीनों ध्वनियाँ मिलती हैं, वहाँ दक्षिण-पश्चिमी में पालि की भाँति केवल एक 'स्' ध्वनि ही मिलती है।

2) संस्कृत की तुलना में जिस प्रकार का ध्वनि-विकास पालि में मिलता है, उसी प्रकार का ध्वनि-विकास शिलालेखी प्राकृत में भी मिलता है।

3) पालि की भाँति ही अधिकांश प्रातिपदिक स्वरान्त ही हैं।

4) पालि की भाँति ही द्विवचन नहीं हैं।

5) पालि की अपेक्षा, अधिक रूप-सादृश्य के कारण **शिलालेखी प्राकृत** में रूपों की संख्या और भी कम हो गयी है।

6) आत्मनेपद का नितान्त अभाव है।

संक्षेप में शिलालेखी प्राकृत अनेक बातों में पालि से समानता रखते हुए भी (1) एकतो अधिक विकासोन्मुख है तथा (2) दूसरे इसमें बोली-भेद के लक्षण भी स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

17.5 सारांश

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन प्राकृत (पालि) प्राचीन जनभाषा है। यह संस्कृत का ही विकृत रूप है। 'पालि' साहित्य का सम्बन्ध प्रमुखतः भगवान् बुद्ध से है। इसमें उन्हीं से सम्बद्ध काव्य, कथाओं या अन्य साहित्य-विधाओं की रचना प्रमुखतः हुई। प्राचीन प्राकृत (पालि) के अन्तर्गत अशोक के शिलालेखों की प्राकृत भी आ जाती है। इस भाषा का प्रभाव भारत की भाषाओं के अतिरिक्त श्रीलंका, बर्मा, तिब्बत, चीन, और जापान आदि देशों की भाषाओं पर भी पड़ा है।

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'पालि' भाषा का सामान्य परिचय दीजिए।
2. 'पालि' भाषा की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

17.7 सहायक ग्रन्थ

1. भाषा-विज्ञान – डॉ० भोलानाथ तिवारी।
2. भाषा-विज्ञान – डॉ० कर्ण सिंह।
3. भाषा-विज्ञान – डॉ० चक्रधर कर्णाटक।
4. तुलनात्मक भाषा विज्ञान – डॉ० पाण्डुरंग दामोदर गुणे।

अनुवाद – डॉ० भोलानाथ तिवारी।



मध्यकालीन आर्यभाषा (प्राकृत)

- 18.1 शीर्षक
- 18.2 प्रस्तावना
- 18.3 उद्देश्य
- 18.4 विषय सामग्री
- 18.5 सारांश
- 18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 18.7 सहायक ग्रन्थ

18.1 शीर्षक

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा (प्राकृत)

18.2 प्रस्तावना

कालविभाजन की दृष्टि से मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के दूसरे काल की भाषा 'प्राकृत' है। यद्यपि मध्यकाल की सभी भारतीय आर्यभाषाएँ सामान्यतया प्राकृत ही कही जाती हैं, तथापि मुख्यरूप से 'प्राकृत' नाम इसके काल की साहित्यिक भाषाओं का ही है। इनका समय ईस्वी प्रथम शताब्दी से ईस्वी पञ्चम शताब्दी तक है। प्रस्तुत पाठ में तृतीय एवं तृतीय 'प्राकृत' भाषा के स्वरूप, भेद एवं विशेषताओं का उल्लेख किया गया है।

18.3 उद्देश्य

- ❖ पाठकों को 'प्राकृत' भाषा के स्वरूप से परिचित करवाना।
- ❖ छात्रों को प्राकृत भाषा के भेदों से अवगत कराना।

❖ प्राकृत भाषा की विशेषताओं से परिचित करवाना।

18.4 विषय सामग्री

द्वितीय प्राकृत या 'प्राकृत'

कालविभाजन की दृष्टि से मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के दूसरे काल की भाषा 'प्राकृत' है। यद्यपि मध्यकाल की सभी भारतीय आर्यभाषाएँ सामान्यतया प्राकृत ही कही जाती हैं, तथापि मुख्यरूप से 'प्राकृत' नाम इसके काल की साहित्यिक भाषाओं का ही है। इनका समय ईस्वी प्रथम शताब्दी से ईस्वी पञ्चम शताब्दी तक है।

'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति

1. 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति कुछ वैयाकरणों के अनुसार 'प्राक्+कृत' है, अर्थात् जो संस्कृत से पूर्व की बनी हुई है। पाश्चात्य विद्वान् 'पिशेल' ने भी इसी मत का उल्लेख किया है। इस अर्थ में संस्कृत की मूल भाषा ही 'प्राकृत' भाषा है।
2. हेमचन्द्र, मार्कण्डेय तथा वासुदेव आदि प्राकृत वैयाकरणों के अनुसार— 'प्रकृतिः संस्कृतम्, तत्र भवं प्राकृतमुच्यते' अर्थात् प्रकृति = संस्कृत से उत्पन्न भाषा ही प्राकृत है।
3. किन्तु 'प्राकृत' शब्द का सही अर्थ है— प्राकृत अर्थात् असंस्कृत या स्वाभाविक। जब एक भाषा को संस्कृत कर दिया गया और वह शिष्टजनों, पण्डितों की भाषा बन गयी तो उसके समानान्तर जो जनसामान्य की बोलचाल की स्वाभाविक भाषा थी, और जिसका प्रवाह वैदिक काल से ही चला आ रहा था, वह 'प्राकृत' कही गयी। इस प्रकार 'प्राकृत' भाषा वैदिक और संस्कृत काल की जनभाषा का ही विकसित रूप है।

प्राकृत के भेद

धर्म, साहित्य तथा भाषाविज्ञान के आधार पर 'प्राकृत' के अनेक भेद किए गए हैं।

- 1) धर्म के आधार पर इसके 4 भेद हैं—
 - क) (मागधी) पालि
 - ख) अर्धमागधी
 - ग) जैन महाराष्ट्री तथा
 - घ) जैन शौरसेनी ।
- 2) साहित्य के आधार पर भी इसके चार भेद हैं— किन्तु नामों में भिन्नता है
 - क) महाराष्ट्री
 - ख) शौरसेनी

- ग) मागधी तथा
घ) पैशाची ।
- 3) प्राकृत वैयाकरणों, 'वररुचि' और 'हेमचन्द्र' आदि के दिए गए नामों की संख्या लगभग 20-25 है ।
4) किन्तु भाषा-विज्ञान की दृष्टि से प्राकृत के केवल 5 रूप ही मान्य हैं—
- क) मागधी
ख) अर्धमागधी
ग) महाराष्ट्री
घ) शौरसेनी तथा
ङ) पैशाची ।

इनका परिचय क्रमशः दिया जा रहा है—

क) 'मागधी' प्राकृत

इसका विकास मगध की निकटवर्ती भाषा से है। इसमें रचित कोई साहित्यिक रचना उपलब्ध नहीं होती। संस्कृत के नाटकों में इसका प्रयोग निम्न श्रेणी के पात्रों द्वारा किया गया है। इसके प्राचीनतम प्रयोक्ता 'अश्वघोष' हैं। 'गौडी' इसका एक अन्य नाम है।

'मागधी' प्राकृत की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

- 1) मागधी प्राकृत में 'स्' तथा 'ष्' के स्थान पर 'श्' ही मिलता है। जैसे— सप्त झ शत तथा पुरुष झ पुलिश आदि ।
- 2) 'र्' के स्थान पर सर्वत्र 'ल्' मिलता है । जैसे— पुरुष झ पुलिश, राजा झ लाजा ।
- 3) स् तथा र् से संयुक्त 'थ्' 'स्त' हो जाता है, उपस्थित झ उवस्तिद्, अर्थ झ अस्त आदि ।
- 4) 'ज्' के स्थान पर कहीं-कहीं 'य्' मिलता है, जैसे जाणदि झ याणादि ।
- 5) संयुक्त व्यञ्जन में यदि प्रथम ध्वनि ऊष्म हो, तो समीकरण, नहीं होता, जैसे हस्त झ हशत ।
- 6) संस्कृत, प्रथमा विभक्ति, एकवचन के विसर्गों (:) को मागधी में 'ए' हो जाता है, जैसे, सः झ शे, देवः झ देवे आदि ।

ख) 'अर्धमागधी' प्राकृत

यह मगध तथा शूरसेन प्रदेशों के मध्य क्षेत्र (प्राचीन कोसल प्रदेश) की बोली से विकसित भाषा है। क्योंकि इसमें मागधी प्राकृत की भी कुछ प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, अतः इसे अर्धमागधी कहा गया है। जैन साहित्य की यही प्रमुख

भाषा है। साथ ही संस्कृत-नाटकों- 'मुद्राराक्षस' तथा 'प्रबोधचन्द्रोदय' में इसका प्रयोग मिलता है। आचार्य 'विश्वनाथ' ने इसे चरों, सेठों तथा राजपुत्रों की भाषा कहा है। कुछ विद्वानों ने कहा है कि अशोक के अभिलेखों की मूलभाषा अर्द्धमागधी ही थी, जिसे स्थानीय पुट दे दिया गया था।

अर्द्धमागधी की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

- 1) 'श्' तथा 'ष्' के स्थान पर प्रायः 'स्' हो जाता है, जैसे- श्रावक झ सावग ।
- 2) **दन्त्य तवर्ग** ध्वनियों के स्थान पर **मूर्धन्य टवर्ग** ध्वनियाँ पायी जाती हैं। कृत्वा झ कट्टु तथा स्थित झ ठिय आदि ।
- 3) कहीं-कहीं 'च्' के स्थान पर 'त्' ध्वनि मिलती है, **चिकित्सा झ तेइच्छा** ।
- 4) स्वरों के मध्य लुप्त व्यञ्जन के स्थान पर '**य**' श्रुति मिलती है, जैसे सागर झ सायर , गगन झ गयन आदि ।
- 5) संस्कृत, प्रथमा विभक्ति, एकवचन के विसर्गों के स्थान पर गद्य में 'ए' और पद्य में प्रायः 'ओ' मिलता है। इस प्रकार इसके गद्य एवं पद्य रूपों में भिन्नता रहती है ।

ग) 'महाराष्ट्री' प्राकृत

इसका मूल आधार महाराष्ट्र प्रदेश है। कुछ लोग महा+राष्ट्र से तात्पर्य सम्पूर्ण भारत लेते हैं और इसे तत्कालीन भारत की राष्ट्रभाषा मानते हैं। महाराष्ट्री प्राकृत काव्य की भाषा थी ; अतः इसमें प्रचुर साहित्य मिलता है। गद्यरूप में इसका प्रयोग **श्वेताम्बर जैनियों** के धार्मिक ग्रन्थों में हुआ है। **कालिदास, हर्ष** आदि के नाटकों में, गीतों की भाषा यही है। **महाराष्ट्री प्राकृत** सभी प्राकृतों में एक परिनिष्ठत भाषा मानी जाती है। सभी वैयाकरणों ने इसी को आधार मानकर प्राकृतों के व्याकरण लिखे हैं। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

- 1) महाराष्ट्री प्राकृत में दो स्वरों के मध्यवर्ती अल्पप्राण स्पर्शों (क्, त्, प्, ग्, द्, ब् आदि) का प्रायः लोप हो जाता है; जैसे नुपुर झ णेउर,

प्राकृत > पाअड
लोको > लोओ
गच्छति > गच्छइ आदि ।

- 2) दो स्वरों की मध्यवर्ती महाप्राण ध्वनियों (ख्, थ्, फ्, ध्, घ्, भ्) के स्थान पर केवल 'ह' रह जाता है; जैसे-

शाखा > शाहा
नाथः > नाहो

क्रोधः > कोहो आदि ।

3) ऊष् ध्वनियों के स्थान पर प्रायः 'ह' ध्वनि ही मिलती है; जैसे—

पाषाण > पाहाण

दिवस > दिवह

तस्य > ताह

दश > दह आदि।

4) कर्मवाच्य के 'गमयते' आदि रूपों के स्थान पर 'गामिज्ज' जैसे रूप मिलते हैं। अर्थात् 'य' के स्थान पर 'इज्ज' हो जाता है ।

5) पूर्वकालिक क्रिया का प्रत्यय 'ऊण' मिलता है; जैसे संस्कृत 'पृष्ट्वा' के स्थान पर 'पुच्छिऊण' ।

घ) 'शौरसेनी' प्राकृत

यह शूरसेन (मथुरा) प्रदेश में विकसित बोली थी। इस पर संस्कृत का प्रभाव है, क्योंकि उस समय मध्य प्रदेश संस्कृत का केन्द्र था। संस्कृत नाटकों में गद्य इसी शौरसेनी प्राकृत में है। 'कर्पूरमञ्जरी' का गद्यभाग इसी में रचित है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैनों के धार्मिक ग्रंथों में भी इसी का प्रयोग हुआ है।

शौरसेनी प्राकृत की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1) दो स्वरों का मध्यवर्ती संस्कृत 'त्' झ 'द्' तथा 'थ' झ 'ध' हो जाता है; उदाहरणार्थ—

भवति > होदि

कथय > कधोहि आदि ।

2) दो स्वरों की मध्यवर्ती द, ध ध्वनियाँ अपरिवर्तित ही रहती हैं; जैसे—

जलद > जलदो

क्रोधः > क्रोधो आदि ।

3) 'क्ष' के स्थान पर 'क्ख' मिलता है; जैसे—

संस्कृत इक्षु > इक्खु

4) शब्दरूपों तथा धातुरूपों की दृष्टि से यह संस्कृत से प्रभावित है। साथ ही कुछ अंशों में महाराष्ट्री से भी प्रभावित है।

5) आत्मनेपद का लोप हो गया है । अतः केवल परस्मैपद का ही प्रयोग मिलता है।

ड) 'पैशाची' प्राकृत

पैशाची के आधार के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। 'महाभारत' में 'पिशाच' नाम की एक जाति का उल्लेख हुआ है, जिसकी निवासभूमि उत्तर-पश्चिम में कश्मीर के आसपास मानी गई है। इसी आधार पर 'ग्रियर्सन' ने पैशाची को 'दरद' भाषा से प्रभावित माना है। 'हार्नली' के अनुसार यह द्रविड़ों की प्राकृत है। एक अन्य विद्वान् 'पुरुषोत्तमदेव' ने इसे संस्कृत और शौरसेनी का बिगड़ा हुआ रूप स्वीकार किया है। किन्तु 'वररुचि' के अनुसार इसका आधार संस्कृत ही है।

सामान्यतया, यह भाषा साहित्य शून्य है। 'हम्मीरमर्दन' जैसे बहुत कम नाटकों में, कुछ ही पात्रों ने इसका व्यवहार किया है। 'प्राकृतसर्वस्व' में इसके 11 भेद दिए गए हैं, जिनका आधार या तो कोई देश है या कोई जाति। इतने अधिक भेदों के आधार पर कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह केवल एक अपने ही प्रदेश की भाषा न होकर, अपने चारों ओर के प्रदेशों के निम्न जाति के लोगों द्वारा बोली जाती थी।

'पैशाची' प्राकृत की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1) दो स्वरों के मध्यवर्ती वर्गों के तृतीय, चतुर्थ घोष स्पर्श पैशाची में वर्गों के प्रथम और द्वितीय अघोष हो जाते हैं; उदाहरणार्थ—

गगन > गकन

मेघ > मेखो

राजा > राचा आदि

2) र् के स्थान पर ल् तथा ल् के स्थान पर र् मिलता है। जैसे—

रुधिरं > लुधिरं

कुमारं > कुमालं आदि ।

3) 'ष्' कहीं 'श्' मिलता है और कहीं 'स्' भी। उदाहरणतया, विषम झ विसमो; तथा तिष्ठति झ चित्ति आदि।

4) स्वरों के मध्यवर्ती स्पर्शों का इसमें लोप नहीं होता, जैसा कि अन्य प्राकृतों में प्रायः होता है।

द्वितीय प्राकृत की कुछ सामान्य विशेषताएँ

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा द्वितीय प्राकृत के अनेक भेदों का पृथक्-पृथक् परिचय रूपर दिया जा चुका है। उन भेदों की विशेषताओं को संकलित करने पर 'प्राकृत' भाषा की कुछ सामान्य विशेषताओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

अ) ध्वनि सम्बन्धी

- 1) 'प्राकृत' की ध्वनियाँ प्रायः 'पालि' के ही समान हैं; किन्तु ऊष्म ध्वनियाँ (श्, ष्, स्) के प्रयोग में कुछ विभिन्नता है। पालि में जहाँ केवल 'स्' का ही प्रयोग मिलता है, वहाँ प्राकृतों के विभिन्न भेदों में से अधिकांश में केवल 'स्' कुछ में केवल 'श्' कुछ अन्य में 'स्' और श् तथा अन्य कुछ में केवल श् और ष् का प्रयोग मिलता है ।
- 2) प्राकृत के विभिन्न भेदों में 'र्' और 'ल्' में परस्पर विपर्यय की प्रवृत्ति देखी जाती है।
- 3) प्राकृत में 'य्' प्रायः 'ज्' हो जाता है।
- 4) प्राकृत-ध्वनियों के सम्बन्ध में सबसे विचित्र बात है, कि इनमें तथाकथित आधुनिक ग्, घ्, ज्, आदि संघर्षो-स्पर्शों का प्रयोग भी मिलता है।
- 5) 'न्' प्रायः 'ण्' हो जाता है।

आ) ध्वनि-परिवर्तन सम्बन्धी

- 6) पालि में प्रारम्भ हुई ध्वनि-परिवर्तन की प्रवृत्तियाँ (लोप, स्वरभक्ति, समीकरण) प्राकृत-काल में पूर्णतया नियमित हो गयीं।
- 7) स्वरों के मध्यवर्ती अल्पप्राण स्पर्श लुप्त हो गए।
- 8) स्वरों के मध्यवर्ती महाप्राण स्पर्शों का स्थान 'ह्' ने ले लिया ।
- 9) संस्कृत विसर्ग (:) कहीं 'ए' और कहीं 'ओ' हो गया ।
- 10) 'म्' का स्थान 'व्' ने ले लिया ।
- 11) **घोष स्पर्श**, अघोष हो गए और **अघोष स्पर्श**, घोष हो गए ।

इ) शब्द-रूप-सम्बन्धी

- 12) प्राकृतकाल में प्रायः सभी व्यञ्जनान्त शब्द स्वरान्त हो गए ।
- 13) शब्दरूपों में द्विवचन का लोप हो गया ।
- 14) सादृश्य के कारण शब्दरूप कम हो गए ।

ई) क्रिया रूप-सम्बन्धी

- 15) क्रियारूपों में भी द्विवचन का लोप हो गया ।
- 16) 'आत्मनेपद' नहीं रहा ।
- 17) सादृश्य के कारण रूपों में कमी आ गयी ।

उ) वाक्यरचना-सम्बन्धी

18) वैदिक, संस्कृत तथा पालि भाषाएँ संयोगात्मक थीं अर्थात् वाक्यरचना में सम्बन्ध तत्त्व, अर्थतत्त्व से जुड़ा रहता था, उदाहरणार्थ-

“रमेशस्य गृहम्” (संस्कृत)

किन्तु प्राकृत भाषाएँ वियोगात्मक हो गयी, अर्थात् सम्बन्धतत्त्व का प्रयोग अर्थतत्त्व से पृथक् रूप में भी होने लगा; जैसे-

रमसस्स केरक घरम् (प्राकृत)।

ऊ) अर्थसम्बन्धी

19) अनेक संस्कृत-शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हो गया। शब्दों के अर्थ अपने धातु से बहुत दूर चले गए तथा कहीं-कहीं नितान्त ही भिन्न हो गए।

ए) शब्दसमूह-सम्बन्धी

20) अधिकांश शब्द तद्भव हैं, कुछ देशज भी हैं।

ऐ) सामान्य

21) प्राकृत भाषा में बलात्मक स्वराघात था।

22) पालि में सरलीकरण की जो प्रवृत्ति आरम्भ हुई थी, उसका यहाँ पर्याप्त विकास हुआ।

23) संगीतात्मक स्वराघात समाप्त-सा हो गया और बलात्मक स्वराघात कुछ उभर आया।

24) संस्कृत के माध्यम से या सीधे कुछ ग्रीक, ईरानी, तुर्की एवं अरबी शब्द भी प्रयुक्त होने लगे थे। जैसे ग्रीक खलीन, सुरंग तथा ईरानी शाह, लिपि, दिपि, नमदक आदि। तुर्क और कतक शब्द कदाचित् तुर्की के हैं। 'ताजक' अरबी है। नीय प्राकृत में विदेशी शब्दों की संख्या 150 के लगभग है। ये शब्द ईरानी और कोरेनी के हैं।

तृतीय प्राकृत या अपभ्रंश

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा की, तृतीय प्राकृत-काल की भाषा अपभ्रंश कहलाती है। 'अपभ्रंश' का अर्थ है- विकृत, भ्रष्ट या पतित। जब प्राकृत भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगा और वे व्याकरणबद्ध हो गयीं, तो धीरे-धीरे साहित्यिक प्राकृत और बोलचाल की प्राकृत भिन्न-भिन्न हो गयीं। आगे चलकर स्वतन्त्र रूप से विकसित होती हुई उसी बोलचाल की प्राकृत से अपभ्रंश भाषा का विकास हुआ और तत्कालीन प्राकृत-पण्डितों ने परिनिष्ठित प्राकृत की तुलना में इसे विकृत, बिगड़ा हुआ या अपने उच्च स्थान से भ्रष्ट हुआ माना। इस प्रकार 'अपभ्रंश' भाषा का अपना

नाम सार्थक हुआ। यह प्राकृतों तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के मध्य की कड़ी है। आगे चलकर अपभ्रंश से ही आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास हुआ है।

अपभ्रंश का काल

यद्यपि पूर्व किए गए विभाजन की दृष्टि से तृतीय प्राकृत या अपभ्रंश का काल 500 ई० से 1000 ई० तक माना जाता है, किन्तु इसका प्रयोग साहित्य में सम्भवतः इससे भी पूर्व से लेकर लगभग 15वीं, 16वीं शताब्दी तक होता रहा है।

'अपभ्रंश' का बिगड़े हुए शब्दरूप के अर्थ में प्रयोग, सर्वप्रथम 'व्याडि' तथा 'पतञ्जलि' ने किया है। भाषा के अर्थ में इसका उल्लेख सर्वप्रथम, 6वीं शताब्दी ई० में 'भामह' ने अपने 'काव्यालंकार' तथा 'चण्ड' ने अपने 'प्राकृतलक्षणम्' में किया है।

अपभ्रंश का साहित्य

अपभ्रंश के उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं— रङ्गकृत, 'करकण्डचरित', धर्मसूरीकृत 'जम्बूस्वामीरासा', पुष्पदन्तकृत 'आदिपुराण', सरहकृत 'दोहाकोश', स्वयंभूकविकृत 'पउमचरित', धनपालकृत 'भविस्सयंतकहा' तथा रामसिंहकृत 'पाहुडदोहा' आदि।

अपभ्रंश का प्रदेश

अधिकांश विद्वानों के अनुसार इसका विकास सर्वप्रथम भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में हुआ; किन्तु इसके परिनिष्ठत रूप का विकास डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी मध्यप्रदेश की भाषा से तथा डॉ० बाबूराम सक्सेना मध्यप्रदेशीय या शौरसेनी अपभ्रंश से मानते हैं।

अपभ्रंश के भेद

अपभ्रंश के भेदों पर विचार करने वाले विद्वानों में— 1) डॉ० याकोबी, 2) डॉ० तगारे, 3) डॉ० नामवरसिंह आदि प्रमुख हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में इतना अधिक मतभेद है कि अपभ्रंश के भेदों की संख्या 2 से लेकर 27 तक मानी गयी है। संक्षेप में, अपभ्रंश के निम्नलिखित 7 रूप अधिक मान्य हैं, जिनसे 13 आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास माना जाता है।

अपभ्रंश—रूप —उनसे निकली हुई आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ इस प्रकार हैं—

- | | |
|------------|-----------|
| 1. मागधी — | 1. बिहारी |
| | 2. बंगला |

- | | | |
|----|---------------|--|
| | 3. | उड़िया |
| | 4. | असमिया |
| 2. | अर्धमागधी – | 5. पूर्वी हिन्दी |
| 3. | महाराष्ट्री – | 6. मराठी |
| 4. | खास – | 7. पहाड़ी – इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का और उसके नागररूप से विकसित पुरानी राजस्थानी का प्रभाव है । |
| 5. | ब्राचड़ – | 8. सिन्धी |
| 6. | शौरसेनी – | 9. पश्चिमी हिन्दी |
| | | 10. शौरसेनी अपभ्रंश के नागर रूप से विकसित राजस्थानी तथा |
| | | 11. गुजराती |
| 7. | पैशाची | 12. लहँदा, पञ्जाबी – यह भी शौरसेनी अपभ्रंश से प्रभावित हैं । |

इस प्रकार पूर्व से पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर भारत की ओर बढ़ते हुए उपर्युक्त अपभ्रंशों के स्थानों का अनुमान भी सहज ही हो जाता है।

अपभ्रंश भाषा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ

ध्वनि-सम्बन्धी

- 1) अपभ्रंश की ध्वनियाँ प्रायः वहीं हैं, जो पालि तथा प्राकृत की हैं।
- 2) ऋ स्वर ध्वनि केवल लेखन में थी, उच्चारण में नहीं।
- 3) श् तथा ष् के स्थान पर प्रायः स् ही मिलता है।
- 4) ऋ के अतिरिक्त सभी स्वरों के अनुनासिक रूप मिलते हैं।
- 5) अपभ्रंश में 'उ' ध्वनि की बहुलता है; जैसे – जग्गु, एक्कु, कारणु आदि ।

ध्वनि परिवर्तन-सम्बन्धी

- 6) पालि तथा प्राकृत वाली, ध्वनि-परिवर्तन की प्रवृत्तियाँ अपभ्रंश में और अधिक विकसित हो गईं ।
- 7) शब्द का अन्तिम स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाता है और कभी-कभी लुप्त भी; जैसे – **गर्भिणी** (संस्कृत) – **गभिणि** (अपभ्रंश) और **कीटक** (सं०) – **कीड** (अपभ्रंश)।

- 8) आद्यक्षर में प्रायः कोई परिवर्तन नहीं होता है ।
- 9) 'म' के स्थान पर 'वँ' जैसे –
कमल – कवँल
'व' के स्थान पर 'ब' जैसे –
वचन – बचन
'ष्ण' के स्थान पर 'न्ह' जैसे –
कृष्ण – कान्ह
'क्ष' के स्थान पर – कख् जैसे – पक्षी झ पक्खी,
च्छ जैसे – पक्षी झ पक्खी
'स्म' के स्थान पर 'म्ह' जैसे –
अस्मै – अम्ह
'य' के स्थान पर 'ज' जैसे –
युगल – जुगल
ड, द, न के स्थान पर प्रायः 'ल' जैसे –
प्रदीप्त – पलित
उपर्युक्त प्रकार के परिवर्तन प्रायः मिलते हैं ।
10. संयुक्त व्यञ्जनों में से एक का लोप हो जाता है तथा उसकी क्षतिपूर्ति के लिए पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो जाता है, जैसे –
कस्य (सं) – कस्स (प्रा०) – कासु (अप०)

शब्द तथा धातुरूप-सम्बन्धी

- 11) नाम तथा धातुरूपों में कमी हो जाने से अपभ्रंश भाशा अधिक सरल हो गयी ।
- 12) नपुंसकलिङ्ग प्रायः लुप्त हो गया ।
- 13) अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रातिपादिक प्रमुख हो गए ।
- 14) द्विवचन भी प्राकृत की भाँति ही लुप्त रहा ।

कारक-सम्बन्धी

- 15) अपभ्रंश में तीन कारक समूहों – 'कर्ता, कर्म, सम्बोधन', 'करण, अधिकरण' तथा 'सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध' और दो वचनों – 'एकवचन, बहुवचन' में संज्ञा आदि शब्दों के केवल 3ग2= 6= रूप ही शेष रह गए।

प्रत्यय-सम्बन्धी

- 16) स्वार्थिक 'ड' प्रत्यय का प्रयोग बहुत बढ़ गया।

पदरचना तथा वाक्यरचना-सम्बन्धी

- 17) अपभ्रंश में वियोगात्मकता की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से प्रकट हो गयी। कारकों के लिए स्वतन्त्र शब्दों का प्रयोग होने लगा जैसे – **करण कारक** के लिए सहुँ या 'तण', **सम्बन्ध कारक** के लिए 'केर' 'कर' या 'का' तथा **अधिकरण** कारक के लिए 'मज्झ' या 'महँ' आदि का प्रयोग होने लगा।

इसी प्रकार क्रियारूपों में भी संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग होने लगा तथा तिङन्त रूपों के स्थान पर कृदन्त रूपों का प्रयोग बढ़ गया।

- 18) वाक्य में पदों का स्थान निश्चित हो गया।

शब्द-समूह सम्बन्धी

- 19) सर्वाधिक संख्या **तद्भव** शब्दों की है। उसके बाद **देशज** शब्द हैं। **तत्सम** शब्दों की संख्या बहुत कम है। कुछ विदेशी शब्द मिलते हैं – जैसे – तुर्क, तहसील, ठक्कुर, हुद्दादार आदि।
- 20) निष्कर्ष रूप में, **अपभ्रंश** भाषा विकास के उस बिन्दु पर पहुँच गयी, जहाँ पर वह प्राचीन भारतीय भाषाओं से दूर तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के निकट प्रतीत होने लगी।

18.5 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राकृत भाषा के अन्तर्गत द्वितीय प्राकृत या 'प्राकृत' तथा तृतीय प्राकृत या 'अपभ्रंश' का उल्लेख होता है। 'प्राकृत' भाषा में प्रचुर साहित्य उपलब्ध होता है। एक तरफ जब साहित्यिक प्राकृत व्याकरणबद्ध हो गयी तो बोलचाल की प्राकृत स्वतन्त्र रूप से विकसित होती चली गयी और उसी से 'अपभ्रंश' भाषा का विकास हुआ। आगे चलकर आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास इसी 'अपभ्रंश' भाषा से हुआ।

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. द्वितीय प्राकृत 'प्राकृत' भाषा का परिचय दीजिए।

2. तृतीय प्राकृत 'अपभ्रंश' का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
3. 'प्राकृत' और 'अपभ्रंश' में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

18.7 सहायक ग्रन्थ

1. भाषा-विज्ञान – डॉ० भोलानाथ तिवारी।
2. भाषा-विज्ञान – डॉ० कर्ण सिंह।
3. भाषा-विज्ञान – डॉ० चक्रधर कर्णाटक।
4. तुलनात्मक भाषा विज्ञान – डॉ० पाण्डुरंग दामोदर गुणे।

अनुवाद – डॉ० भोलानाथ तिवारी।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

- 19.1 शीर्षक
- 19.2 प्रस्तावना
- 19.3 उद्देश्य
- 19.4 विषय सामग्री
- 19.5 सारांश
- 19.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 19.7 सहायक ग्रन्थ

19.1 शीर्षक

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

19.2 प्रस्तावना

आधुनिक आर्यभाषाओं का काल 1000 ई0 से लेकर वर्तमान काल तक माना जाता है। **आधुनिक आर्यभाषाओं** का विकास मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के तृतीय प्राकृत रूप से या **अपभ्रंश** रूपों से हुआ है। विकसित होती हुई बोलचाल की भारतीय आर्यभाषा का यह अन्तिम एवं वर्तमान विकासस्थल है। भविष्य में जब कभी यह अपने वर्तमान रूप से इतनी अधिक विकसित हो जाएगी कि वह इसके वर्तमान रूप में तथा उस भावी रूप में अन्तर स्पष्ट प्रतीत होने लगेगा, तो यह विकास के एक और सोपान पर पहुँच जाएगी।

20.3 उद्देश्य

- ❖ छात्रों को आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के विविध रूपों से परिचित करवाना।
- ❖ आधुनिक आर्यभाषाओं के भौगोलिक क्षेत्रों का ज्ञान देना।

❖ आधुनिक आर्यभाषाओं की सामान्य विशेषताओं से अवगत करवाना।

19.4 विषय सामग्री

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के विभिन्न रूप

1. बिहारी
2. बंगला
3. उड़िया
4. असमिया
5. पूर्वीहिन्दी

6. मराठी
7. पहाड़ी
8. सन्धी
9. लहँदा
10. पञ्जाबी
11. पश्चिमी हिन्दी
12. राजस्थानी और
13. गुजराती।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के वर्गीकरण की व्यर्थता

- यूरोपीय विद्वानों में से – 1) हार्नले, 2) वेबर, 3) ग्रियर्सन
भारतीय विद्वानों में से – 1) डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी
2) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
3) सीताराम चतुर्वेदी
4) डॉ० भोलानाथ तिवारी आदि

ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर प्रस्तुत किया है, किन्तु किसी वर्गीकरण के द्वारा भी वर्गीकरण का उद्देश्य पूरा नहीं होता है। इस दशा में वर्गीकरण के प्रयासों की प्रशंसा करते हुए भी उन्हें व्यर्थ ही कहना पड़ता है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का परिचय

यहाँ प्रमुख आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का परिचय दिया जा रहा है, जिससे उनकी विशेषताओं को पृथक्-पृथक् रूप से जाना जा सके।

1) बिहारी

यह हिन्दी प्रदेश, बिहार की उपभाषा है। 'ग्रियर्सन' ने इसे यह नाम दिया है। इसके अन्तर्गत तीन बोलियाँ हैं—

क) भोजपुरी, ख) मैथिली और (ग) मगही।

क) भोजपुरी – इसका विकास मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से माना जाता है। उत्तर प्रदेश के जिलों अर्थात् बनारस, मिर्जापुर, गाजीपुर, जौनपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, बस्ती तथा आजमगढ़ और बिहार

प्रदेश के पाँच जिलों अर्थात् शाहबाद, पलामू, राँची, सारन और चम्पारन जिलों की भाषा यही है। इसका नाम भी **शाहबाद** (बिहार) में स्थित एक परगना भोजपुर के नाम पर पड़ा बताया जाता है, जो प्राचीनकाल में इस प्रदेश की राजधानी थी। इसमें लिखित साहित्य का प्रायः अभाव है। आधुनिक काल में **‘राहुल साँकृत्यायन’** तथा कुछ अन्य लोगों ने इसमें कुछ साहित्य अवश्य लिखा है। इसकी लिपि प्रमुख रूप से **नागरी** है।

- ख)** **मैथिली** – इसका विकास **मागधी अपभ्रंश** के मध्य रूप से माना जाता है। मिथिला क्षेत्र की भाषा होने से यह **मैथिली** कहलाती है। इसका क्षेत्र **पूर्वी चम्पारन**, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, दरभंगा, पुर्निया और संधाल परगने का उत्तरी भाग है। इसमें अनेक उपबोलियाँ हैं, जिनमें से उत्तरी मैथिली ही इसका परिनिष्ठित रूप है। यह साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न है। ‘विद्यापति’ ने अपनी रचनाएँ इसी में की हैं।
- ग)** **मगही** – ‘मगही’ शब्द मागधी शब्द से ही विकसित हुआ है। इसका क्षेत्र प्राचीन मगध तक ही है। इस प्रकार यह पूरे गया जिले में तथा आंशिक रूप में पटना, हजारीबाग, मुंगेर, पालामऊ, भागलपुर और राँची जिलों में बोली जाती है। इसमें लिखित साहित्य का अभाव है ; किन्तु लोकसाहित्य पर्याप्त मिलता है। **‘गोपीचन्द्र’** इसके प्रसिद्ध लोककवि हैं ।

2. बंगला

इसका विकास मागधी अपभ्रंश के पूर्वी रूप से लगभग 1000ई0 में हुआ है। बंगाल प्रदेश की भाषा होने से यह **बंगला** कही जाती है। इसमें **संस्कृत-तत्सम** शब्दों की बहुलता है। हिन्दी के भी अनेक शब्द हैं। यह साहित्य-सम्पन्न भाषा है। **चण्डीदास, बंकिमचन्द्र, शरतचन्द्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर** इसके प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। इसकी अपनी पृथक् लिपि है, जिसका विकास प्राचीन **नागरी** या कुटिल लिपि से माना जाता है।

3. उड़िया

उड़ीसा प्रान्त की भाषा होने से यह उड़िया कही जाती है। इसका विकास मागधी अपभ्रंश के दक्षिणी रूप से माना जाता है। ‘बीम्स’ के अनुसार उड़िया भाषा का अस्तित्व बंगाली भाषा से भी पूर्वकाल का है। उड़िया भाषा भी एक साहित्य-सम्पन्न भाषा है। लुइपा, सारलादास, बलरामदास, उपेन्द्रभंज आदि इसके प्रसिद्ध कवि हैं। वर्तमान काल में भी इसमें पर्याप्त साहित्य रचा जा रहा है। उड़िया की लिपि, ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित अपनी पृथक् लिपि है। इसमें सभी वर्ण बर्तुलाकार होते हैं।

4. असमिया

इसे असमी या आसामी भी कहा जाता है। स्पष्ट ही, असम या आसाम प्रदेश की भाषा होने से ही इसका यह नाम पड़ा है। इसका विकास मागधी के **पूर्वोत्तरी अपभ्रंश** से माना जाता है। इसमें साहित्य भी रचा गया है। असमिया का प्राचीनतम काव्य **‘प्रह्लादचरित्र’** 13वीं शताब्दी के आरम्भ में रचा गया है, जिसके कवि **‘हेम सरस्वती’**

हैं। अन्य प्राचीन साहित्यकारों में **शंकरदेव, माधवदेव, पीताम्बर, बलदेव** आदि प्रसिद्ध हैं। असमिया भाषा पर तिब्बती, बर्मी, ऑस्ट्रिक तथा बंगला भाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसकी लिपि नागरी लिपि के पूर्वी रूप से विकसित है।

5) पूर्वी-हिन्दी

हिन्दी क्षेत्र के पूर्वी भाग में इसका क्षेत्र है, अतः यह पूर्वी हिन्दी कही जाती है। 'ग्रियर्सन' के अनुसार इसकी तीन बोलियाँ हैं—

क) बघेली, ख) अवधी और (ग) छत्तीसगढ़ी ।

क) **बघेली** – बघेली का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, यह अवधी का ही दक्षिणी रूप है। अतः इसे पृथक् मानना व्यर्थ है।

ख) **अवधी** – यह पूर्वी हिन्दी की महत्वपूर्ण बोली है। अवधी की भाषा होने से ही यह अवधी कही जाती है। डॉ० ग्रियर्सन ने तथा डॉ० भोलानाथ तिवारी ने इसका सम्बन्ध अर्द्धमागधी से तथा डॉ० बाबूराम सक्सेना ने पालि से माना है। यह साहित्य-सम्पन्न भाषा है। 11वीं शताब्दी से लेकर, आंशिक रूप से वर्तमान काल तक इसमें साहित्य लिखा जाता रहा है। तुलसी के 'रामचरितमानस' की भाषा के साथ ही साथ यह 'जायसी' के 'पद्मावत' तथा अन्य अनेक प्रेमकाव्यों की भाषा है।

लिखित साहित्य के अतिरिक्त इसमें लोकसाहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। इसकी मुख्य लिपि देवनागरी ही है, किन्तु कुछ अंशों में फारसी लिपि का प्रयोग भी इसमें हुआ है।

ग) **छत्तीसगढ़ी** – छत्तीसगढ़ में मुख्य रूप से बोली जाने के कारण ही इसका यह नाम पड़ा। इसका विकास भी अर्द्धमागधी से माना जाता है। आधुनिक काल के कुछ कवियों को छोड़कर इसका प्रयोग साहित्य में नहीं किया गया है। प्राचीनकाल में ब्रज और अवधी तथा आधुनिक काल में खड़ी बोली ही यहाँ साहित्य की भाषा रही है। छत्तीसगढ़ी में लोकसाहित्य पर्याप्त मात्रा में है। इसकी लिपि प्रमुख रूप से देवनागरी ही है।

6) मराठी

यह महाराष्ट्र की भाषा है। इसका नाम तथा रूप दोनों ही महाराष्ट्री अपभ्रंश से विकसित हैं। इसका प्रादुर्भाव 1000ई० से पूर्व ही माना जाता है। मराठी का प्राचीन काल का साहित्य जितना सम्पन्न है, उतना ही आधुनिक काल का भी है। साहित्य में मराठी का प्रयोग लगभग 12वीं शताब्दी से माना जाता है। सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि इसके प्रसिद्ध कवि हैं ।

मराठी में **संस्कृत तत्सम** शब्दों की संख्या पर्याप्त है। साथ ही, इस पर भौगोलिक निकटता के कारण, **द्रविड़ परिवार** की भाषाओं का भी प्रभाव है। इसमें चवर्ग ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं – 1) सामान्य 'च' जैसी तथा 2) **त्स्** जैसी। यह इसकी बहुत बड़ी विशेषता है। इसके साथ ही यह **बलात्मक स्वराघात** वाली भाषा है। इसकी लिपि **देवनागरी** है।

7) पहाड़ी

पहाड़ी प्रदेश में बोली जाने के कारण यह **पहाड़ी** कही जाती है। इसका क्षेत्र हिमालय में भद्रवाह के उत्तर-पश्चिम से **नेपाल** के पूर्वी भाग तक है। इसकी तीन उपबोलियाँ हैं –

क) पश्चिमी पहाड़ी

ख) मध्य पहाड़ी

(ग) पूर्वी पहाड़ी ।

इनकी भी अनेक बोलियाँ हैं ।

क) पश्चिमी पहाड़ी – शिमला तथा इसके निकटवर्ती भागों में बोली जाती है ।

ख) मध्य पहाड़ी – इसकी दो शाखाएँ हैं –

1) **कुमायूनी** – नैनीताल तथा अल्मोड़ा की बोली, इसमें कुछ साहित्य भी मिलता है।

2) **गढ़वाली** – गढ़वाल, मसूरी और उसके निकटवर्ती भागों में बोली जाती है।

(3) **पूर्वी पहाड़ी** – यह **नेपाल** तथा **काठमांडू** घाटी की भाषा है। इसमें भी साहित्य मिलता है। यह नेपाल की राजभाषा भी है।

नेपाली के अतिरिक्त सभी पहाड़ी बोलियों में केवल लोकसाहित्य ही मिलता है। इन सबकी लिपि भी **देवनागरी** ही है।

8) सिन्धी

यह **सिन्ध प्रदेश** की भाषा है। इसका विकास **ब्राह्म अपभ्रंश** से माना जाता है। भरत के **नाट्यशास्त्र** में इसका संकेत मिलने से इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। इसका प्राचीनतम लिखित ग्रन्थ '**महाभारत**' है, जिसका काल 1000 ई0 से भी पूर्व माना जाता है। लगभग 14वीं शताब्दी में इसमें नियमित रूप से साहित्य लिखा जाता रहा है। इसका प्रमुख ग्रन्थ '**शाहजोरिसालो**' तथा प्रसिद्ध कवि **अब्दुलकरीम, शाहलतीफ, सचल, सामी** आदि हैं । इसकी 5-6 बोलियाँ हैं। सिन्धी भाषा की **अन्तःस्फोटक** ध्वनियाँ, ज, ब आदि, इसकी सबसे प्रमुख विशेषता है। वैसे तो सिन्धी की अपनी लिपि '**लंडा**' है किन्तु आजकल इसके लिए **फारसी, नागरी, गुरुमुखी** का भी प्रयोग होता है।

9) लहँदा

यह पश्चिमी पञ्जाब की भाषा है। इसका सम्बन्ध **पैशाची अपभ्रंश** से माना जाता है। **लहँदा** शब्द का अर्थ है – **सूर्यास्त**, लक्षणा से '**पश्चिम**'। इससे ज्ञात होता है कि यह सम्पूर्ण **पञ्जाब** प्रदेश के पश्चिमी भाग की भाषा है। पश्चिमी **पञ्जाबी**, **डिलाही**, **हिन्दकी जटकी** आदि इसके अन्य नाम भी हैं। इसकी कई बोलियाँ भी हैं।

लहँदा, **सिन्धी** तथा **कश्मीरी** भाषा से पर्याप्त प्रभावित है। इसमें लिखित साहित्य के नाम पर केवल **सिक्ख धर्म** का '**जनमसाखी**' ग्रन्थ मिलता है। शेष साहित्य केवल लोकसाहित्य ही है। मुसलमान प्रायः **फारसी** और हिन्दू प्रायः **लंडा** लिपि में इसे लिखते हैं।

10) पञ्जाबी

यह पूर्वी पञ्जाब की भाषा है। इसका सम्बन्ध भी पैशाची अपभ्रंश से माना जाता है। किन्तु इस पर **शौरसेनी अपभ्रंश** का भी प्रभाव है। बोलने वालों में सिक्खों की प्रधानता के कारण इसे **सिक्खी**, **खालसी** तथा **गुरुमुखी** लिपि के कारण इसे कभी-कभी **गुरुमुखी** भी कह दिया जाता है। इसमें **संस्कृत-फारसी** शब्द कम हैं। मुख्यरूप से यह पञ्जाब के किसानों की भाषा है।

पञ्जाबी के दो प्रमुख रूप हैं – (क) **एक परिनिष्ठित पंजाबी** या मझी (माझी)। (ख) दूसरा **डोगरी**। इनके भी कई स्थानीय उपरूप हैं। पञ्जाबी में साहित्य-रचना 12वीं शताब्दी से मिलती है। इसके प्रथम कवि **बाबा फरीद शकरगंज** तथा प्राचीन कवियों में **गुरुनानक**, **गुरु अर्जुनदेव** आदि प्रसिद्ध हैं। **वारिसशाह** की लोकप्रिय रचना '**हीर-राँझा**' इसी में है। आधुनिक साहित्यकारों में **मोहनसिंह**, **अमृता प्रीतम**, **महीपसिंह** आदि प्रसिद्ध हैं। इसमें पर्याप्त साहित्य भी है। आजकल भारत में इसकी प्रमुख लिपि **गुरुमुखी** तथा पाकिस्तान में **फारसी** है।

11) पश्चिमी हिन्दी

यह शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित है। इसकी 5 निम्नलिखित बोलियाँ हैं :-

क) ब्रजभाषा

इसका केन्द्र **अलीगढ़**, **मथुरा**, **आगरा** तथा **धौलपुर** हैं। साहित्यिक दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व है। कई शताब्दियों तक इसमें साहित्य की रचना होती रही है। **सूर**, **बिहारी**, **रसखान**, **रत्नाकर** आदि अनेक कवियों की रचनाएँ ब्रज भाषा में ही हैं। इसकी लिपि प्रायः **देवनागरी** ही है। इसमें **को**, **थोड़ो**, **कियो** – जैसे – ओकारान्त रूपों की बहुलता है।

ख) खड़ी बोली

इसका केन्द्र **बिजनौर** है तथा क्षेत्र **रामपुर**, **मुरादाबाद**, **बिजनौर**, **मुजफ्फरनगर**, **मेरठ**, **सहारनपुर** तथा **देहरादून** तक फैला हुआ है। इसके दो रूप हैं – एक जन-भाषा का, जिसका परिनिष्ठित रूप बिजनौर में बोला

जाता है। यह मेरठ, दिल्ली के आसपास की बोली है इसका दूसरा रूप साहित्यिक है जिसका प्रयोग **कबीर** से लेकर आधुनिक तक के कवियों ने किया है। इसका साहित्यिक रूप जनभाषा वाले रूप पर ही आधारित माना जाता है। इसकी लिपि **देवनागरी** है। साहित्यिक दृष्टि से भी इसके दो रूप हैं – **हिन्दी** तथा **उर्दू**। **हिन्दी** रूप **तत्समप्रधान** है, जबकि **उर्दू** में **अरबी-फारसी** के शब्दों की प्रधानता है तथा इसकी लिपि **फारसी** है। आर्यसमाज के आन्दोलन तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन के कारण खड़ी बोली का बहुत अधिक प्रसार-प्रचार हुआ। स्वतन्त्र भारत में आज यह राष्ट्रभाषा, राजभाषा तथा सम्पर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। इसमें **का, किया, थोड़ा** – जैसे आकारान्त रूपों की प्रधानता है।

(ग) बांगरू

इसका प्रयोग बोली के रूप में **दिल्ली, रोहतक, कसाल, हिसार, पटियाला, नाभा** तथा **जींद** आदि में होता है। वस्तुतः यह खड़ी बोली की राजस्थान तथा पञ्जाबी से प्रभावित केवल एक उपबोली है। 'बांगर' प्रदेश की होने से यह 'बांगरू' कही जाती है। इसमें कोई विशेष साहित्य नहीं मिलता है। लोकसाहित्य इसमें पर्याप्त मात्रा में मिलता है। आजकल इसकी लिपि भी **देवनागरी** है।

घ) कन्नौजी

इसका केन्द्र मुख्यतया **फर्रुखाबाद** है किन्तु सामान्य रूप से इसका प्रयोग **पीलीभीत, शाहजहाँपुर, इटावा** तथा **कानपुर** के आसपास तक होता है। यह ब्रजभाषा की ही एक उपबोली है। इसमें भी साहित्यिक रचनाओं का अभाव –सा ही है।

ङ) **बुन्देली** – इसका प्रयोग **बुन्देलखण्ड** अर्थात् **झाँसी, हमीरपुर, जालोन ग्वालियर, भोपाल, सागर, ओरछा** तथा **नरसिंहपुर** आदि में तथा इनके आसपास होता है। यह ब्रजभाषा से मिलती-जुलती है। इसकी लिपि **देवनागरी** ही है। '**लाल**' कवि ने बुन्देली में 'छत्र-प्रकाश' ग्रन्थ की रचना की है। वैसे साहित्य का इसमें अभाव ही है। कहा जाता है कि इसकी एक उपबोली 'बनाफरी' में ही प्रसिद्ध लोकगाथा 'आल्हा-खण्ड' की रचना सर्वप्रथम हुई थी।

12) राजस्थानी

यह भी **शौरसेनी अपभ्रंश** के नागर रूप से विकसित है। इसकी चार बोलियाँ – 1) **मेवाती**, 2) **मारवाड़ी**, (3) **मालवी** तथा (4) **जयपुरी** हैं।

1) **मेवाती** – अलवर तथा गुड़गाँव का मध्यवर्ती क्षेत्र 'मेवात' कहा गया है। **मेवाती** इसी क्षेत्र की बोली है। ब्रज प्रदेश के निकट होने से इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव है।

2) **मारवाड़ी** – यह मारवाड़ अर्थात् राजस्थान के पश्चिम भाग – **जोधपुर, उदयपुर, जैसलमेर** तथा **बीकानेर** की बोली है। इसका प्राचीन रूप **डिंगल** कहलाता है। यह साहित्यसम्पन्न भाषा है। **नरपति, नाल्ह, पृथ्वीराज** आदि इसके प्रसिद्ध कवि हैं। इसकी लिपि प्रमुख रूप से **नागरी** ही है।

(3) **मालवी** – राजस्थान के दक्षिण-पूर्व भाग में स्थित मालवा की बोली होने से यह मालवी कही जाती है। इसका प्रमुख केन्द्र **इन्दौर** है। इसमें भी साहित्य की रचना कम ही हुई है। इसकी प्रसिद्ध कवयित्री **'चन्द्रसखी'** है।

(4) **जयपुरी** – यह राजस्थान के पूर्वी भाग अर्थात् **जयपुर, कोटा** और **बूँदी** की बोली है। इसे यह नाम यूरोपियन विद्वानों ने दिया है। इसका स्थानीय नाम **ढुंढाली** है। इसमें **दादूपथियों** का साहित्य मिलता है।

13) गुजराती

गुजरात प्रदेश की भाषा गुजराती है। इसका विकास **शौरसेनी अपभ्रंश** से हुआ है। यह पश्चिमी हिन्दी और राजस्थानी से बहुत मिलती है। इसकी लिपि पृथक् है जो **कैथी** लिपि से समानता रखती है। इसकी विभाषाएँ कम ही हैं। इसमें 13वीं शताब्दी से निरन्तर साहित्य रचा जा रहा है। **विनयचन्द्र सूरि, राजशेखर, नरसी मेहता** आदि इसके प्रमुख साहित्यकार हैं। इसकी लिपि **नागरी** से मिलती-जुलती होते हुए भी पृथक् है जिसमें शिरोरेखा का प्रयोग नहीं होता है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की कुछ प्रमुख सामूहिक विशेषताएँ

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के पृथक्-पृथक् रूपों का परिचय प्राप्त कर लेने के उपरान्त यहाँ उनकी कुछ प्रमुख सामूहिक विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है। इन विशेषताओं के आधार पर ही मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं से उनकी भिन्नता को जाना जा सकता है। ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :-

ध्वनि सम्बन्धी

1) आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में ध्वनियाँ प्रायः वही हैं, जो मध्यकालीन प्राकृतों तथा अपभ्रंशों में थीं; तथापि कुछ विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं। **स्वरों** में –

क) कई नवीन स्वरों का विकास हो गया है।

ख) **'ऋ'** का उच्चारण स्वर जैसा नहीं रहा है, अतः यह केवल लिखित स्वर ही रह गया है, उच्चरित नहीं।

व्यञ्जनों में

ग) ऊष्म व्यञ्जन लिखित रूप में तो तीन – **श्, ष, स्** हैं, किन्तु उच्चरितरूप में दो – **श् और स्** ही रह गए हैं। ष का उच्चारण भी 'श्' ही होता है।

घ) **मूर्धन्यों** में – **ड़ और ढ** दो नयी ध्वनियाँ विकसित हो गयी हैं।

ड) च वर्ण का उच्चारण एक-सा न रहकर हिन्दी में चू जैसा, और मराठी में च के साथ ही 'त्स' जैसा भी होता है।

च) ज्ञ(ज+ञ) का शुद्ध उच्चारण लुप्त होकर ज्यँ, ग्यँ और घँ – जैसा हो रहा है।

विदेशी प्रभाववश

छ) क, ख, ग, फ, ळ आदि नवीन ध्वनियाँ आ गयी हैं।

ख) अन्त में आने वाला ह्रस्व 'अ' प्रायः लुप्त हो जाता; जैसे काम्, राम्, कल्, आज् आदि का उच्चारण हलन्त ही होता है।

3. प्राकृत में समीकृत द्वित्व व्यञ्जन में से एक का लोप हो जाता है तथा द्वित्व व्यञ्जन से पहला स्वर क्षतिपूर्ति के रूप में दीर्घ हो जाता है ; जैसे कम्म झ काम, सत्त झ सात आदि। पञ्जाबी, सिन्धी में कम्म, सत्त ही रहता है।

रूप-सम्बन्धी

4. कारकरूप संस्कृत में 24, प्राकृत में 12, अपभ्रंश में 6 थे, किन्तु आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में केवल (क) अविकृत और (ख) विकृत, ये दो ही रह गए हैं। क्रियारूप भी कम हो गए हैं। प्रायः मूल क्रियारूपों के साथ सहायक शब्दों को जोड़कर सभी काल तथा भाव प्रकट कर दिए जाते हैं।

रचना सम्बन्धी

5. संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि भाषाएँ योगात्मक थीं, अपभ्रंश कुछ अयोगात्मक हुई, किन्तु आधुनिक भारतीय आर्यभाषा पूर्णतया अयोगात्मक हो गयी हैं। नामरूपों के साथ 'ने' 'को' 'से' 'में' आदि परसर्गों का और क्रियारूपों में कृदन्त एवं सहायक क्रिया के साथ संयुक्त क्रिया का प्रयोग होता है।

6. आधुनिक आर्यभाषाओं में वचन – एकवचन तथा बहुवचन, दो ही हैं।

7. हिन्दी, राजस्थानी, पञ्जाबी तथा सिन्धी में दो लिंग हैं। गुजराती, मराठी आदि कुछ में अभी तक भी तीन लिंग हैं। वैसे आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की प्रवृत्ति लिङ्गभेद समाप्ति की ओर ही है।

शब्दभण्डार-सम्बन्धी

8. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में से प्रत्येक में ही विदेशी शब्दों की संख्या पर्याप्त है। विदेशी शब्द तुर्की, अरबी, फारसी, पुर्तगाली तथा अंग्रेजी से लिए गए हैं। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में इनका अभाव था।

9. पहले की अपेक्षा अनेक नए अनुकरणात्मक शब्द भी विकसित होते गए हैं।

10. सामान्यतया आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ **बलात्मक स्वराघात** वाली हैं, किन्तु वाक्यों में **संगीतात्मक स्वराघात** का प्रयोग भी मिलता है।

19.5 सारांश

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ सरलता की ओर उन्मुख हैं। धीरे-धीरे शब्दरूपों में और भी कमी की सम्भावना है— उदाहरणार्थ, हिन्दी में एकवचन में 'हम' और बहुवचन में इसके साथ **'सब'** या **'लोग'** शब्द जोड़कर ही काम चलाया जाने लगा है। **लिंगभेद** भी कम हो रहा है। पञ्जाबी में मुख्यरूप से, किन्तु हिन्दी में भी, महिलाओं को भी "आप जा रहे हैं", "आप खा रहे हैं" आदि ही कहा जाने लगा है, जिससे **स्त्रीलिंग**, पुल्लिंग का भेद मिट-सा रहा है। नवीन सामाजिक प्रवृत्तियाँ तथा आधुनिकतम नए-नए फैशन भी इसी का पूर्व संकेत है।

19.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

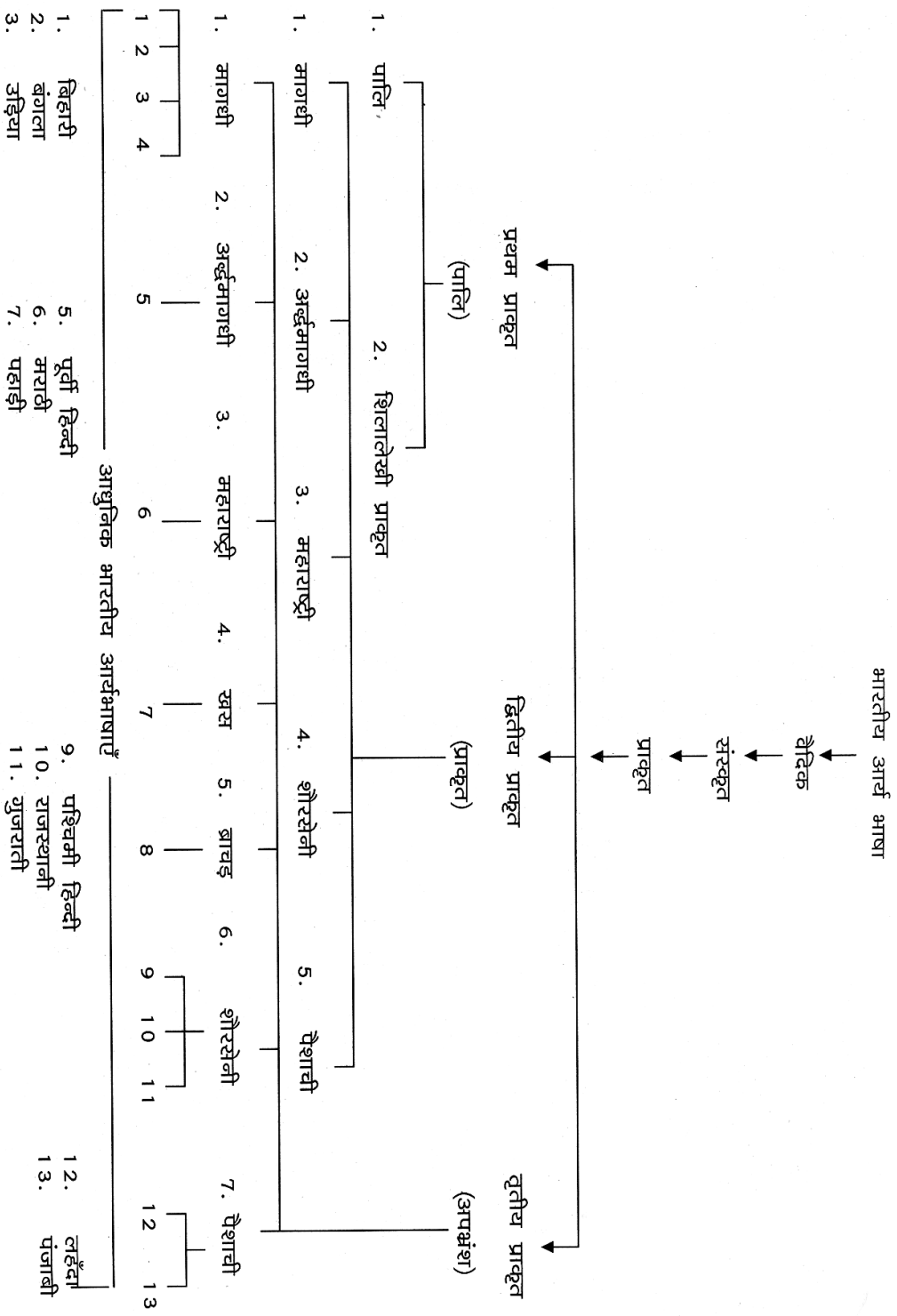
1. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का सामान्य परिचय दीजिए।
2. आधुनिक आर्यभाषाओं की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

19.7 सहायक ग्रन्थ

1. भाषा-विज्ञान – डॉ० भोलानाथ तिवारी।
2. भाषा-विज्ञान – डॉ० कर्ण सिंह।
3. भाषा-विज्ञान – डॉ० चक्रधर कर्णाटक।
4. तुलनात्मक भाषा विज्ञान – डॉ० पाण्डुरंग दामोदर गुणे।

अनुवाद – डॉ० भोलानाथ तिवारी।





संस्कृत भाषायाः महत्त्वम्।

- 20.1 शीर्षक
- 20.2 प्रस्तावना
- 20.3 उद्देश्य
- 20.4 विषय सामग्री
- 20.5 सारांश
- 20.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 20.7 सहायक ग्रन्थ

20.1 शीर्षक

— संस्कृत भाषायाः महत्त्वम्।

20.2 प्रस्तावना

जम्मू विश्वविद्यालय के दूरस्थ शिक्षा निदेशालय के षष्ठ सेमिस्टर के संस्कृत प्रश्नपत्र में विद्यार्थियों से संस्कृत में निर्धारित विषयों पर लघु निबन्ध पूछे जाते हैं। इन निबन्धों के माध्यम से एक तो विद्यार्थियों में संस्कृत भाषा के प्रति अभिरुचि जागृत होगी, वहीं दूसरी तरफ वह सरल संस्कृत भाषा में विभिन्न सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विषयों पर लिखने में सक्षम होंगे। प्रस्तुत पाठ में 'संस्कृत भाषायाः महत्त्वम्' विषय पर लघु निबन्ध प्रस्तुत है, जिसमें संस्कृत भाषा के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।

20.3 उद्देश्य

- ❖ प्रस्तुत निबन्ध के अध्ययन से छात्र संस्कृत-भाषा के महत्त्व से परिचित हो सकेंगे।

- ❖ संस्कृत-साहित्य का संक्षिप्त परिचय उन्हें प्राप्त होगा।
- ❖ विद्यार्थियों में संस्कृत भाषा के प्रति रूचि जागृत होगी।
- ❖ छात्र लघु-निबन्धों के माध्यम से सरल संस्कृत लेखन में सक्षम होंगे।

20.4 विषय सामग्री

भारतस्य प्राचीनाः ग्रन्थाः, चत्वारः वेदाः संस्कृतभाषायां सन्ति । भारतस्य धर्मशास्त्राणि, अष्टादश पुराणाः, स्मृतयः, षड्दर्शनानि, सम्पूर्णः कर्मकाण्डविभागः, सम्पूर्णा च आयुर्वेदपद्धतिः एते सर्वे महाग्रन्थाः संस्कृतभाषायां एव निबद्धाः सन्ति । एतेषाम् अध्ययनेन भारतवर्षस्य, प्राचीनधर्मस्य, आयुर्वेदस्य, संगीतविद्यायाः, विज्ञानस्य, पुरातनसभ्यतायाः च पूर्णाः परिचयः प्राप्यते । संस्कृतग्रन्थैः एतदपि सिध्यति यत् भारते बहुप्राचीनकालाद् आर्याः अत्र वसन्ति स्म । अत्रत्याः जनाः धन-धान्यदिभिः परिपूर्णाः सुखिनः, विद्वांसः, परोपकारिणाश्च आसन् ।

संस्कृतभाषायामेव चाणाक्यस्य नीतिशास्त्रम्, बृहस्पतेः अर्थशास्त्रम्, विष्णुशर्मणः पंचतन्त्रम् अन्ये च नानाविधाः ग्रन्थाः उपलभ्यन्ते । एतेषाम् अध्ययनेन अस्मान् राजनीतेः अर्थशास्त्रव्यवहारस्य च पूर्णं ज्ञानं भवति । अध्यात्मविषयोऽपि ईश्वरेण सह तादात्म्यसम्बन्धकरणे संस्कृते विस्तरेण निबद्धोऽस्ति । अतः वयं कथयितुं शक्नुमः यत् संस्कृतवाङ्मये सम्पूर्णं वस्तुजातम् विस्तारपूर्वकं प्राप्यते ।

मन्ये, यदद्यत्वे अस्माकं राष्ट्रभाषा, व्यवहारभाषा च हिन्दी अस्ति किन्तु हिन्दीभाषायामपि संस्कृतभाषा एव लक्षाणि शब्दाः तत्समरूपेण प्रयुज्यन्ते । तद्वशशब्दास्तु ततोऽप्यधिकम् अवलोक्यन्ते । अतः इदमपि कथायतुम् युज्यते यत् संस्कृतभाषायाः हिन्दीभाषाया च माता-पुत्री सम्बन्धोऽस्ति ।

हिन्दी भाषायां विशेषरूपेण योग्यतां लब्धुं सर्वैः भारतवासिभिः संस्कृतं पठनीयम् । भारतीयाः स्वसंस्कृति, सभ्यतां च जानन्तु, पूर्वजानां राजनीति, धर्म लोकव्यवहारम् अधिगच्छन्तु ।

अतः भारतशासनम् छात्रेभ्यः संस्कृतविद्यायाः पठन-पाठनम् षष्ठं श्रेणीतः अष्टमश्रेणी यावत् निरचिनोत् । समस्तेभ्यः भारतवासिभ्यः इदमुचितं यत् संस्कृतं पठन्तु, विश्वस्य आकाशे च भारतस्य मुखम् उज्ज्वलं कुर्वन्तु । ये कथयन्ति यत् संस्कृतभाषा कठिना वर्तते ते न जानान्ति यत् स्वल्पप्रयासेनैव संस्कृतं पठितुं शक्यते । ते अस्माकं समीपे आगच्छन्तु, संस्कृत शिक्षायाश्च मूलमन्त्रं जानन्तु ।

महर्षिवाल्मीकिरचितस्य रामायणस्य, महर्षिव्यासरचितस्य महाभारतस्य निर्माणपूर्वघटनैव वर्तते विश्वसाहित्ये । तत्र दुर्लभस्य कवित्वस्य, नैसर्गिकसौन्दर्यस्य, अध्यात्मज्ञानस्य नीतिशास्त्रस्य च दर्शनं जायते । ततो भासाश्वघोष-कालिदास-भवभूति-दण्डि-बाणा-सुबन्धु-हर्षप्रभृतयः महाकवयः नाट्यकाराः चायान्ति येषामुदयेन न केवलं आर्यावर्तः अपि तु सकलमेतत् संसारं आत्मानं धन्यं मन्यते ।

संस्कृतसाहित्यं भारतस्य गौरवमुद्घोषयति । समस्तं देशं च एकतासूत्रे तत् बध्नाति । अस्य साहित्यस्य प्रचारः प्रसारश्च नितान्तं लाभप्रदः, एतज्ज्ञानविहीनस्तु पशुरेव । तदुक्तम् –

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीन,
तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद् भागधेयं परमं पशुनाम् ।

20.5 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कृत भाषा विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है। विश्व का सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद' इसी भाषा में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त प्राचीन इतिहास, पुराण, रामायण, महाभारत, षड्दर्शन, आयुर्वेद आदि सभी ग्रन्थ इसी भाषा में लिखे गये हैं। विश्व की अधिकांश भाषाएँ इसी भाषा से उत्पन्न हुई हैं। यह भाषा भारत का गौरव है। समस्त विश्व को यह एकता के सूत्र में बांधती है। अतः इस भाषा का अध्ययन परमावश्यक है।

20.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'संस्कृत भाषायाः महत्त्वम्' विषय पर संस्कृत में एक लघु निबन्ध लिखें।
2. संस्कृत भाषा भारत का गौरव है? इस पर संस्कृत में अपने विचार लिखें।

20.7 सहायक ग्रन्थ

1. प्रस्तावरत्नाकर – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
2. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका – डॉ० कपिल देव द्विवेदी
3. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका – डॉ० चक्रधर नौटियाल
4. संस्कृत निबन्ध शतकम् – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी



विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् / विद्यायाः महत्त्वम्

- 21.1 शीर्षक
- 21.2 प्रस्तावना
- 21.3 उद्देश्य
- 21.4 विषय सामग्री
- 21.5 सारांश
- 21.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 21.7 सहायक ग्रन्थ

21.1 शीर्षक

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् / विद्यायाः महत्त्वम्

21.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत निबन्ध में 'विद्या' का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए विद्या को सभी धनों में श्रेष्ठ कहा गया है। विद्या एकमात्र ऐसा धन है, जो खर्च करने से बढ़ता है और संचय करने से घटता है। इसे चोर चुरा नहीं सकते हैं, भाई-भाई बाँट नहीं सकते हैं और प्रलयकाल में भी यह नष्ट नहीं होता है। अतः इस धन का अर्जन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

21.3 उद्देश्य

- ❖ विद्यार्थियों में संस्कृत भाषा के प्रति अभिरूचि जागृत करना।
- ❖ पाठकों को 'विद्या' की उपयोगिता से अवगत कराना।

- ❖ विद्या को सभी धनों में प्रमुख धन सिद्ध करना।
- ❖ विद्यार्थियों को 'विद्या' के गुणों से परिचित कराना।

21.4 विषय सामग्री

**अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति ।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात् ॥**

'विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्' इति यदुक्तं तत्सत्यमेव । विद्याधनस्येदं वैशिष्ट्यं वर्तते यत् सर्वं धनं व्ययात् क्षयमायाति परं विद्याधनं व्यायाद् वृद्धिं गच्छति, सञ्चयाद् नाशमायाति कुवेरस्यापि असीमः कोशो व्ययात् केषुचित् दिनेषु निश्चितमेव रिक्तो भविष्यति, परमहो विद्याधनस्य वैचित्र्यं यदिदं मुहुर्मुहुर्व्यादापि न क्षयं गच्छति ।

विद्ययैव मानवः सर्वत्र प्रतिष्ठां लभते । नृपतयोऽपि विदुषः परस्तात् नतशिरसोभवन्ति । विद्या मानवस्य दिक्षु कीर्तिं विस्तारयति । विद्ययैव रवीन्द्रवेङ्कटेशरमणप्रभृतयः जगत्प्रसिद्धाः जाताः । विद्ययैव च कालिदास-भवभूति-बाणा-हर्षप्रभृतयः कवयः जगति ख्यातिं गताः ।

विद्या मानवस्य सदा बन्धुवत् साहाय्यं करोति । विविधेन प्रकारेण सास्य उपकारं कुरुते । मातेव रक्षति, पितेव हितकार्ये नियोजयति । राजसभायां विद्वानेव गौरवं कीर्तिं च लभते । विद्याधनमेव जगति श्रेष्ठं धनम् । न हि कश्चित् विद्यां चोरयितुं समर्थः, न कश्चित् वण्टयितुं शक्तः । विद्या कुरूपस्य रूपम् । सा निम्नपदस्थमपि पुरुषम् उच्चपदे स्थापयति ।

**विद्या ददाति विनयम्, विनयात् याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥**

चतुर्वर्गफलप्राप्तिरपि विद्ययैव संभवति । विद्यया विनयो जायते । विनयेन योग्यतां गच्छति, योग्यता धनं प्राप्नोति, धनेन दानं ददाति, दानेन पुण्यमर्जयति, पुण्येन धर्मं संचिनोति । धनेन इच्छा पूर्यते । धनेन लिहं प्रासादं निर्माति, स्वादूनि भक्ष्याणि भुङ्क्ते, बहुमूल्यानि वस्त्राणि धत्ते । एवं कामान् अर्जयति । आत्मपरमात्मयः नोरैक्यञ्च पश्यति-ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति । अनेन विधिना स्वजीवनस्य चतुर्वर्गात्मकं समग्रं फलं लभते । अत एवोक्तम् -

**मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते,
कान्तेव चाभिरमयत्पनीय खेदम् ।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥**

22.5 सारांश

उपर्युक्त निबन्ध में यह स्पष्ट किया गया है कि 'विद्या' सभी धनों में श्रेष्ठ है। यह माता-पिता की तरह हमारी रक्षा करती है तथा हमारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह विद्या सभी भोग्य पदार्थों को देने वाली है तथा मान-सम्मान की वृद्धि करती है। विदेश जाने पर बन्धु की तरह यह हमारी सहायता करती है। यह 'विद्या' गुरुओं की भी गुरु है तथा देवताओं से बढ़कर है। राजा लोग भी विद्वान् व्यक्ति की पूजा करते हैं, धनी व्यक्ति की नहीं। सम्भवतः इसलिए कहा गया है – 'विद्या विहीनः पशुभिः समानः।'

21.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम्' विषय पर संस्कृत में निबन्ध लिखिए।
2. 'विद्यायाः महत्त्वम्' विषय पर संस्कृत भाषा में निबन्ध लिखिए।
3. 'विद्या विहीनः पशुभिः समानाः' विषय पर संस्कृत में लघु निबन्ध लिखिए।

21.7 सहायक ग्रन्थ

1. प्रस्तावरत्नाकर – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
2. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका – डॉ० कपिल देव द्विवेदी
3. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका – डॉ० चक्रधर नौटियाल
4. संस्कृत निबन्ध शतकम् – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी



श्रीमद्भगवद्गीतायः महत्त्वम् / मम प्रिय पुस्तकम्

- 22.1 शीर्षक
- 22.2 प्रस्तावना
- 22.3 उद्देश्य
- 22.4 विषय सामग्री
- 22.5 सारांश
- 22.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 22.7 सहायक ग्रन्थ

22.1 शीर्षक**श्रीमद्भगवद्गीतायः महत्त्वम् / मम प्रिय पुस्तकम्****22.2 प्रस्तावना**

‘श्री मद्भगवद्गीता’ में समस्त शास्त्रों का सार है इसका ज्ञान स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निःसृत हुआ है। इसका भलि-भाँति मनन-चिन्तन करने के बाद अन्य शास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रहती। प्रस्तुत पाठ में गीता की सार्वभौमिक, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक उपयोगिता सिद्ध की गई है।

22.3 उद्देश्य

- ❖ विद्यार्थियों को सरल संस्कृत लेखन में सक्षम बनाना।
- ❖ ‘गीता’ के प्रति पाठकों में अभिरूचि जागृत करना।
- ❖ पाठकों को ‘गीता’ के उपदशों से परिचित करवाना।

❖ दैनिक जीवन में गीता की उपयोगिता सिद्ध करना।

22.4 विषय सामग्री

श्रीमद्भावद्गीता मम सर्वप्रियं पुस्तकम् अस्ति । अद्ययावत् मया अनेकानि पुस्तकानि पठितानि सन्ति । विविधासु कक्षासु मया पंचतन्त्रय हितोपदेशस्य कश्चित् उपदेशप्रदाः कथाः पठिताः आसन् । प्रसिद्धानां नाटकानाम् गीतिकाव्यनाम् महाकाव्यानाम् च केचित् अंशाः अपि मया पाठ्यक्रमे पठिताः आसन्, परमेषु कोऽपि अंशः मह्यम् तथा न अरोचत यथा श्रीमद्भगवद्गीता । पाठ्यक्रमे तु केवलं द्वितीयः अध्यायः एव निर्धारितः आसीत्, अतः सर्वप्रथमम् मया सः एव अंशः अधीतः । परमस्य अध्यायस्य ममोपरि एतावान् प्रभावः अभवत् यदहं समस्ताम् भगवद्गीताम् पठितवान् । अधुना अहम् गीतायाः नियमितरूपेण पाठं करोमि ।

गीता सर्वशास्त्रमयी वर्तते । भगवत्ता वेदव्यासेन सर्वेषां पूर्ववर्तिनां धर्मग्रन्थानाम् आलोडनं कृत्वा गीता प्रणीता आसीत् । अत एव सर्वेषाम् धर्मग्रन्थानाम् उदात्ताः सिद्धान्ताः अस्याम् एकत्रोपलभ्यन्ते । अतएव कथ्यते –

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।

या स्वयं पदमनाभस्य मुखपपदमाद्विनीसृता ॥

अस्मिन् गीताशस्त्रे मानवमात्रस्य अधिकारः अस्ति । वर्णस्य, जात्याः, सम्प्रदायस्य अत्र विचारो न अस्ति । एतस्मिन् ग्रन्थे कर्मयोगस्य, ज्ञानयोगस्य, भक्तियोगस्य च त्रिवेणी प्रवहति । गीता निराशानां मनसि आशा-संचारं करोति । एषा पलायनवादं निरस्य उद्योगम् आश्रयितुम् मानवं वारं-वारं प्रेरयति । गीतायाः अग्रलिखितां पंक्तिम् प्रत्येकः भारतीयः जानाति –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

गीतायाः अयम् महान् उपदेशः अस्ति यत् मानवः आसक्तिं स्वार्थं च विहाय कर्म कुर्यात् । एतादृशं कर्म एव वास्तविकीम् शान्तिं प्रयच्छति । गीतानुसारेण मानवस्य शरीरम् नश्वरम् अस्ति परम् आत्मा अजरः अमरः च अस्ति । अतः शरीरस्य विनाशं विलोक्य मानवेन शोकः न कर्त्तव्यः । कर्त्तव्य-परिपालने मानवेन प्राणदाने अपि संकोचः न कर्त्तव्यः-

क्लैव्यं मा स्मः गमः पार्थ नैतत्त्वयुपपद्यते ।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥

22.5 सारांश

‘श्री मद्भगवद्गीता’ समस्त शास्त्रों का सार है। इस पर मानव मात्र का अधिकार है। किसी वर्ण, जाति या सम्प्रदाय विशेष की बात इसमें नहीं कही गयी है। इसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग की ‘त्रिवेणी’ बहती है। यह

निराश लोगों के मन में आशा का संचार करती है और मनुष्यों को निष्काम कर्म योग का उपदेश देती है। अतः गीता का पठन-पाठन प्रत्येक व्यक्ति के लिए परमावश्यक है।

22.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'श्री मद्भगवद्गीतायाः महत्त्वम्' विषय पर संस्कृत में लघु निबन्ध लिखें।
2. 'मम प्रिय पुस्तकम्-गीता' विषय पर संस्कृत में निबन्ध लिखिए।

22.7 सहायक ग्रन्थ

1. प्रस्तावरत्नाकर – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
2. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका – डॉ० कपिल देव द्विवेदी
3. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका – डॉ० चक्रधर नौटियाल
4. संस्कृत निबन्ध भातकम् – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी



‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता’।

- 23.1 शीर्षक
- 23.2 प्रस्तावना
- 23.3 उद्देश्य
- 23.4 विषय सामग्री
- 23.5 सारांश
- 23.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 23.7 सहायक ग्रन्थ

23.1 शीर्षक

‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता’।

23.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में ‘मनुस्मृति’ की उक्ति ‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता’ के आधार पर सामाजिक जीवन में नारी का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। आदिकाल से ही नारी पुरुष की सहधर्मिणी रही है। नारी के बिना सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः नारी को उचित मान-सम्मान की बात प्रस्तुत पाठ में कही गयी है।

23.3 उद्देश्य

- ❖ विद्यार्थियों को संस्कृत भाषा लेखन में ‘कुशल’ बनाना।
- ❖ दैनिक जीवन में नारी का महत्त्व प्रस्तुत करना।

- ❖ सृष्टि रचना में नारी का स्थान / महत्त्व स्पष्ट करना।
- ❖ पाठकों के हृदय में नारी के प्रति प्रेम एवं आदर की भावना जागृत करना।

23.4 विषय सामग्री

“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।” इति ब्रुवता महामानवेन मनुना विषयेऽस्मिन् अनल्पं जल्पितम् अमुना पद्यांशेन नारीणां यन्माहात्म्यमुद्गावितन्तत्सर्वथाऽवितथमेव । अत्र नारीणां पूजनस्य न तादृगभिप्रायः, यथा देवमूर्तयः प्रासादेषु देवागारेषु पंचोपचारैः षोडशोपचारैर्वा पूज्यन्ते, अपितु स्त्रीणां समाजे समादरः, समानाधिकारः एव तासां यथार्हा पूजा । पूरा युगे समादृतः, सभाजिताः प्राप्तसमानाधिकाराश्च स्त्रियः कलासु, विद्यासु युद्धादिकौशलेषु च ख्यातिमुपजग्मुः, इति न कस्यापि तिरोहितम् । तथापि उदाहरणस्वरूपेण किमप्युपस्थाप्यते—राज्ञो जनकस्य सभायां गार्गीतः शास्त्रार्थप्रसङ्गे याज्ञवल्क्यो महर्षिः पराभवं प्राप, जगद्गुरुशङ्कारचार्यमण्डनमिश्रयोः शास्त्रार्थे सर्वशास्त्रश्रेमुषीशालिनीमण्डनमिश्रस्य पत्नी निर्णयं ददौ । विदुषी विद्योत्तमा निरक्षरं स्वं पतिं गृहान्निर्वासयामास । स्मरता चित्रलेखां यया स्वचित्रकलया एव उषापतिप्रद्युम्नः परिचाय्य तद्गृहादानाय्य उषायै समर्पितः । नारीणां युद्धकौशलमपि पुरुषाणामपेक्षया न क्वापि ईषदपि न्यूनताङ्गतम् । यदा महिषाद्यसुरैः पराजिता देवा ब्रह्माणं पुरस्कृत्य भगवतो विष्णोः शरणं प्रपन्नाः, तदा सर्वशक्तिमयी भगवती दुर्गा प्रादुर्भूता तया सर्वेऽपि दानवा युद्धभूमौ हताः । अनेनैव निर्णीतम्भवति या च पराशक्तिर्विद्यते सा नारीरूपेणैवावस्थिता वर्तते । भरतस्य मातुः कैकेय्याः रणकौशलं सर्वे जानन्त्येव तथा महाराज्ञी लक्ष्मीबाईप्रभृतयो नार्यः स्वमपूर्वपुरुषातिशायिरणकौशलं प्रकटयाम्बभूवुः । यथा एतासां विद्यादिक्षेत्रेषु पाटवं समुपवर्णितम्, तथैवैताः स्नेह—दया—दाक्षिण्य—वत्सलता—ममता—पवित्रता—श्रद्धादिक्षेत्रेषु न केनापि सह तुलनामर्हन्ति ।

सृष्टेराम्भत एव नारीणां योगदानमविस्मरणीयतमं विद्यते । यतः स्त्रीपुरुषयोः संयोगादेव पुत्रकन्यारूपप्रजोत्पत्तिः सम्भवति । स्त्रियमन्तरा ब्रह्मणः सृष्टे क्रमस्य एवापायः सुनिश्चितः । श्रद्धाविग्रहवतीनाम् एतासां जननीरूपमेव प्रशस्यतम् । अतएव सुभाषितमिदमुदाह्रियते पाठकानाम्पुरस्तात् —

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहयोषितः ।

स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु विशेषोऽस्ति कश्चन ॥

अयम्भावः पद्यस्यास्य राम—कृष्ण—युधिष्ठिर—गौतम—बुद्ध—गान्धि—प्रभृतीन् भगवतः अवतारस्वरूपान् या जनयन्ति ताः स्त्रियः गृहस्य देशस्याऽपि शोभासमृद्धये पूज्याः अत एव ताः श्रीस्वरूपा अपि कथ्यन्ते । यथा भूमाता अस्माकं सर्व कृत्यजातं सहते, तथैव माता बालकाय कदाचिदपि न क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, च । अतएवोक्तं भगवताशंकराचार्येण—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।

एतदर्थमेव सा पूज्यतमा कथ्यते । सूक्तिसमुच्चयेषु स्त्रीणां महत्त्वं बहुत्र वर्णितं विद्यते तेषु अन्यतमं पद्यमिह पुरस्क्रियते —

वृक्षमूलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति तद् गृहम् ।
 प्रासादोऽपि तथा हीनः महारण्यसमः स्मृतः ॥
 अपरमपि पंचतन्त्रोक्तं पद्यं सुभाषितमेतदनुकरोति—

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।
 गृहन्तु गृहिणीहीनं कान्तारादतिरिच्यते ॥

इत्थं गार्हस्थ्यजीवने नारी महत्त्वं सूपवर्णितं मिलति । यथार्थबुद्ध्या यदि वयं विवेचयामः तर्हि गृहस्थजीवनस्य आधारभूता शिला नारी एवास्ति । गृहस्थ एव समस्तप्राणिनामुपकाराय पूर्वाचार्यैः परिकल्प्यः इति अस्माकं मनीषा । अन्यथा ब्रह्मचर्यं वानप्रस्थ—सन्यासाद्याश्रमस्थाः स्वस्यापि भरणपोषणे परमुखापेक्षिणो भवन्ति, कथं ते परेषां साहाय्यं विधास्यन्ति । अतएव कालिदासः स्वकीये रघुवंशमहाकाव्ये कथितवान् रघुमुखेन कौत्सम्प्रति 'सर्वोपकारक्षममाश्रमन्ते' । नूनं गार्हस्थ्यजीवनं सर्वोपकारायैव कल्पते, यस्य मूलभित्तिः सुशीला नारी वर्तते । अतोऽत्र पुष्कलं नारीमाहात्म्यवर्णनोपेतं पद्यमेकं प्रस्तूयते—

साध्वी शीलवती दयावसुमती दाक्षिण्यलज्जावतो
 तन्वी व्याजपराङ्मुखी स्मितमुखी मुग्धा प्रियालापना ।
 देव—ब्राह्मण—बन्धु—सज्जनहिता यस्यास्ति भार्या गृहे
 तस्याऽर्थागममोक्षभोगफलदा सैकेव पुण्या लता ॥

उपर्युक्ते पद्ये रूपकमुखेन प्रशस्तायाः स्त्रियः समस्तलक्षणानि सङ्क्षेपेण वर्णितानि विलसन्ति । अतएव मनुरपि स्वकीयायां स्मृतो नारीमहत्त्वमुपवर्णयन्, निर्दिशति । तद्यथा—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
 यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया ॥
 तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
 भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥

सन्ति अपराण्यपि कानिचिद् वाक्यानि यैः ताः सर्वथा परतन्त्रतापांशे संयताः । यतः ताः स्वतन्त्रा भूत्वा न किमपि कर्तुं पारयन्ति । आधुनिकयुगे स्त्रियः अपि समानाधिकारप्राप्तयर्थं प्रयतन्ते । यदि ताः प्राचीनादर्शान् निर्वहेयुः तदा नूनं राष्ट्रं नवीनां दिशं, गर्ति, मतिं च प्राप्य संसारस्य समक्षे नूतनं कीर्तिस्तम्भं स्थापयिष्यतीति आशास्महे ।

23.5 सारांश

उपर्युक्त पाठ में यह स्पष्ट किया गया है कि आदिकाल से ही नारी और पुरुष का सम्बन्ध अटूट है । नारी

के बिना पुरुष और पुरुष के बिना नारी अधूरी है। जिस प्रकार एक पहिये पर रथ का चलना असम्भव है, उसी प्रकार नारी के बिना पुरुष का जीवन व्यर्थ है। सृष्टि-रचना से लेकर सामाजिक, धार्मिक सभी कार्यों में नारी का सहयोग अपेक्षित है। अतः नारी को उचित मान-सम्मान मिलना परमावश्यक है। इसके बिना एक सभ्य समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिस स्थान पर नारी को पूर्ण सम्मान नहीं मिलता वहाँ सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं, और जहाँ नारी को मान-सम्मान मिलता है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं।

23.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' विषय पर संस्कृत में लघु निबन्ध लिखें।
2. 'मानव जीवने नारीणां महत्त्वम्' विषय पर संस्कृत में निबन्ध लिखें।

23.7 सहायक ग्रन्थ

1. प्रस्तावरत्नाकर – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
2. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका – डॉ० कपिल देव द्विवेदी
3. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका – डॉ० चक्रधर नौटियाल
4. संस्कृत निबन्ध शतकम् – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी



परोपकाराय सतां विभूतयः

- 24.1 शीर्षक
- 24.2 प्रस्तावना
- 24.3 उद्देश्य
- 24.4 विषय सामग्री
- 24.5 सारांश
- 24.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 24.7 सहायक ग्रन्थ

24.1 शीर्षक

परोपकाराय सतां विभूतयः

24.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में यह स्पष्ट किया है कि सज्जन लोग 'परोपकार' अर्थात् दूसरों के उपकार के लिए ही शरीर धारण करते हैं। हमें भी उनके जीवन से प्रेरणा लेकर परोपकार को अपने जीवन में स्थान देना चाहिये। परोपकार करने से व्यक्ति का मन प्रसन्न रहता है और आत्मसन्तुष्टि का आभास होता है।

24.3 उद्देश्य

- ❖ छात्रों में संस्कृत भाषा के प्रति अभिरुचि जागृत करना।
- ❖ पाठकों को परोपकार का महत्त्व स्पष्ट करना।
- ❖ परोपकारी सज्जनों के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करना।

❖ छात्रों को प्रकृति से भी परोपकार की शिक्षा लेने के लिए प्रेरित करना।

24.4 विषय सामग्री

परोपकारः – परोपकार, तदर्थं सतां सज्जनानां विभूतयः भवन्ति इति शीर्षकस्यास्य आशयः । ता एव विभूतयः अणिमादिभिरष्टभिर्नामभिः सुप्रसिद्धाः संसारे । तद्वक्ष्यन्ते –

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।

प्राप्तिः प्राकाम्यममीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः ॥

अलं पल्लवितेन, स्वार्थभावनां विहाय यत् किमपि परार्थं क्रियते प्राणिमात्रेण स एव परोपकारपदवाच्यतां याति । 'परोपकाराय सतां विभूतयः' इति यदुच्यते तत्र सतां स्वरूपं कीदृशम् ? येषां विभूतयः परोपकाराय भवन्ति, तत्समाधीयते—

किमत्र चित्रं यत्सन्तः परानुग्रहतत्पराः ।

नहि स्वदेहशैत्याय जायन्ते चन्दनद्रुमाः ॥

पद्येनानेन व्यज्यते यत् जडेष्वपि परोपकारभावो भवति किम्पुनः सचेतनेषु सज्जनेषु। यथा चन्दनानां शैत्यस्य प्रयोगः परेभ्यो भवति नात्मने । इत्यनेन सतां जीवनमेव अन्येषां कृते भवतीति सम्पिण्डितोऽर्थः। अयं हि परोपकार न केवलं सज्जनेषु एव प्रयुज्यते सद्भिः अपितु यस्मिन् कस्मिन्नपि पुरुषे । यथोक्तम्—

उपकारिषु यः साधु साधुत्वे तस्य को गुणः ।

अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥

इत्थं पद्यद्वयेन सतां स्वरूपसमुपस्थापना सङ्क्षेपेणात्र विहिता । एतादृग्गुणगणैर्जुष्टाः सन्तः परहितसाधनव्रतं सम्यग्रूपेण निर्वहन्ति । यदि वयं चराचररूप जगतः सर्वेक्षण सूक्ष्मेक्षिकया कुर्मः तदा स्पष्टतया इदमभिव्यज्यते तत् न केवलं मानवा एव अपितु पशवः, वृक्षाः, पर्वताः, सरितः अपि निरन्तरं परोपकारकर्म निर्व्याजं समाचरन्ति । तद्यथा—

रविश्चन्द्रो धना वृक्षा नद्यो गावश्च सज्जनाः ।

एते परोपकाराय युगे दैवेन निर्मिताः ॥

24.5 सारांश

दूसरों का 'उपकार' करना 'परोपकार' कहलाता है। 'परोपकार' सज्जनों के जीवन का उद्देश्य है। सज्जन लोग स्वयं के लिए शरीर धारण नहीं करते, उनके जीवन का प्रत्येक कार्य परोपकार से सम्बद्ध होता है। हमें उनके जीवन का अनुसरण करना चाहिये। प्रकृति से भी हमें परोपकार की शिक्षा मिलती है। नदियाँ बहती हैं परोपकार के लिए, सूर्य तपता है परोपकार के लिए, वृक्ष फल देते हैं परोपकार के लिए और वायु चलती है परोपकार के लिए। अतः हमें भी प्रकृति से शिक्षा पा कर परोपकार को अपने जीवन में प्राथमिकता देनी चाहिये।

24.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'परोपकाराय सतां विभूतयः' विषय पर संस्कृत में लघु निबन्ध लिखिए।
2. 'परोपकाराय सतां विभूतयः' उक्ति को संस्कृत में सिद्ध कीजिए।

24.7 सहायक ग्रन्थ

1. प्रस्तावरत्नाकर – चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
2. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका – डॉ० कपिल देव द्विवेदी
3. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका – डॉ० चक्रधर नौटियाल
4. संस्कृत निबन्ध शतकम् – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी



संगणकः क्रान्ति

अद्यत्वे सर्वस्मिन् जगति संगणकः कम्प्यूटरो वा सर्वकार्यं सिद्धये उपयुज्यते प्रयुज्यते च। संस्कृत भाषा कम्प्यूटरस्य उपयोगेन कथं प्रचारं प्रसारं च लभेत। संस्कृतभाषा कथं प्रचारं प्रसारं च लभेत। संस्कृतभाषा कथं कम्प्यूटरस्य कृत उपयुक्ता प्रयुक्ता च भवेत्। कथं संस्कृतभाषा लेखने पठने पाठने शिक्षण-कार्ये च प्रयोगः संगणक-माध्यमेन सिध्यते। संस्कृते संगणके च संबन्धः स्थापितः स्यात्। यथा – शोधकार्यादिकं संगणक-माध्यमेन प्रवर्तितं स्यात्। इत्येतदेववात्र समासतो विचिच्यते विप्रियते च।

संगणकार्थम् आवश्यका गुणाः

1. इति तु विदितमेवास्ति यत् संगणको यन्त्रभाषा, यन्त्राधीना कूटभाषा वाष्स्ति। स सर्वमपि कार्यं यन्त्रेणैव करोति। तत्र च परिमिता एव शब्दाः कूटशब्दा वा सन्ति। न ततोष्धिकं कार्यं कर्तुंक्षमः।
2. संगणको नियम-सुबद्धमेव कार्यं स्वीकरोति, नान्यत्।
3. संगणकस्य कूटशब्दाः एकर्थकाः सन्ति। अनेकार्थानां शब्दानां कृते विभिन्न-कूट-शब्दौ अपेक्ष्यन्ते। कम्प्यूटर-विज्ञानविदां कर्तव्यमेतद यत्ते उपयुक्तान् कूटशब्दान् रचयेयुः, यथा जनभाषायां प्रयुक्ताः शब्दा अपि तत्र संगृहीता भवेयुः। नियमाः कूटशब्दाश्रिता भवेयुः, तदर्थं च वैजित्तम यन्त्राणि निर्मितानि स्युः।
4. संगणकस्य कृते सर्वाश्चपि सामग्री सर्वथा सुनियोजिता स्याद्, यथा तत् कार्यं साधु संपद्येत।

संगणकस्य कार्यविधौ चत्वारि कार्याणि मुख्यतो भवन्ति।

1. सामग्री-निक्षेप : तत्र सर्वाश्चपि संबद्धसामग्री सुसंबद्धरूपेण संगणके निक्षिप्यते। एतत् कार्यं संपाद्यं वर्तते।
2. कार्यक्रम-निर्देश : एतत् सर्वं कार्यम् अनेन विधिना निष्पादनीयम् इति निर्देशः।
3. कार्य-विधि-निष्पादनम् एतत् सर्वं कार्यं कम्प्यूटर यन्त्राणि कुर्वन्ति। निर्गमः, निष्कर्षः निक्षिप्तस्य कार्यस्य परिणाम-प्राप्तिः।

संगणक-दृष्ट्या संस्कृतभाषायां विशिष्टा गुणाः

संगणक-दृष्ट्या संस्कृत भाषायाम् एते विशिष्टा गुणाः सन्ति । ये संस्कृतस्य कम्प्यूटरोपयोगित्वं साधयन्ति । न कस्यामपि भाषायां संगणक दृष्ट्याश्षेक्षिता उपलभ्यन्ते ।

1. संस्कृत-भाषा कम्प्यूटरस्य कृते सर्वोत्तमा वर्तते ।
2. संस्कृतस्य वर्णमालाः, स्वर-व्यंजन-वर्गीकरणम्, सन्धि-नियमाः, शब्द-रूप-निर्माण-विधिः, धातुरूप-निर्माण-विधिः, समास-तद्धित-कृत्-प्रत्ययादयः, सर्वोश्चपि क्रिया-कलापः पूर्णतया नियम-सुसंबद्धो वैज्ञानिकं च वर्तते ।
3. संस्कृते पाणिनीयं व्याकरणं गौरवभूतम् । नहीदृशं व्याकरणं संसारे कस्या अपि भाषाया वर्तते । एतत् सर्वथा वैज्ञानिकं कम्प्यूटरोपयोगि च । अत्र सर्वमपि विषयजातं नियमबद्धं वर्तते ।
4. तत्र कूटशब्दानां पारिभाषिक-शब्दानां वा बाहुल्यं वर्तते । कूटशब्द-निर्माणेश्चपि संस्कृतस्य अव्याहता गतिः ।
5. संस्कृते समृद्धं साहित्यं वर्तते ।
6. तत्र सर्वेश्चपि विज्ञान-संबद्धा-ग्रन्था-उपलभ्यन्ते । यथा - व्याकरणम्, काव्यम्, आयुर्वेदः, ज्योतिषम्, भाषाविज्ञान-संबद्धा विषयाः-ध्वनिविज्ञानम्, ध्वनिग्रामविज्ञानम्, पदविज्ञानम्, संधिनियमाः, वाक्यविज्ञानम्, अर्थविज्ञानम् प्रभृतयः ।
7. नव-शब्द-निर्माण-विधौ संस्कृतम् अतीव उपयोगी । आवश्यकतानुसारम् एकस्य धातोः शतशः शब्दानां निर्माणे क्षमता वर्तते ।
8. संस्कृतभाषा, सर्वासां भारतीयानां भाषाणाम् आधारभूता वर्तते । दाक्षिणात्म भाषास्वपि संस्कृत-शब्दानां बाहुल्यं वर्तते । यदि संस्कृतभाषा कम्प्यूटरस्य कृते उपयुक्ता कृता स्यात्, तर्हि सर्वासामपि भातीयानां भाषाणाम् उद्धारो भविष्यति । त एव कूटशब्दास्तत्रपि कार्यकरणे समर्था भविष्यन्ति ।
9. संस्कृत कम्प्यूटरोपयोगी कर्तुम् एतानि कार्याणि सन्ति ।
 - (क) संस्कृत-पदकोषनिर्माणम्
 - (ख) पाणिनय-नियमानां विविधं-वर्ग-विभक्तं कम्प्यूटरीकरणम् । यथा - कारक-नियमाः, सन्धि-नियमाः, शब्द-रूप-निर्माण-विधिः, धातुरूप-निर्माण-विधिः, समास-नियमाः, कृत्-तद्धित-प्रत्यय नियमाः इत्यादयः ।



वस्तु निष्ठ प्रश्न

- 26.1 शीर्षक
- 26.2 प्रस्तावना
- 26.3 उद्देश्य
- 26.4 विशय सामग्री
- 26.5 सारांश
- 26.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 26.7 सहायक ग्रन्थ
- 26.1 शीर्षक

बहुविकल्पीय प्रश्न (Objective Type Question)

26.2. प्रस्तावना –

प्रस्तुत पाठ में जम्मू विश्वविद्यालय द्वारा संस्कृत विषय के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम से सम्बद्ध बहुविकल्पीय प्रश्न एवं उनके उत्तर दिये गये हैं। इस पाठ के अन्तर्गत पाठ्यक्रम में निर्धारित पाठ्यपुस्तकों से सम्बन्धित प्रश्न हैं। यहाँ प्रत्येक प्रश्न के आगे चार-चार विकल्प दिये गये हैं, जिनमें एक सही एवं तीन गलत हैं। सही उत्तर के अन्त में 'उत्तरमाला' में दिये गये हैं। विद्यार्थी को दिये गये विकल्पों में से सही उत्तर छाँटकर (✓) चिन्ह द्वारा अपनी पुस्तिका में चिन्हित करना है।

26.3. उद्देश्य –

- ❖ प्रस्तुत पाठ द्वारा विद्यार्थी को पाठ्यक्रम में निर्धारित वेदाङ्गों का ज्ञान देना।
- ❖ वैदिक भाषा एवं संस्कृति के मुख्य बिन्दुओं से विद्यार्थियों को अवगत कराना।

❖ विद्यार्थियों को चारों वेदों के स्वरूप को जानने के साथ-साथ वेद के छः अंगों की जानकारी देना।

26.4. विषय सामग्री-

1. वेद कितने हैं ?
(क) 1 (ख) 2
(ग) 5 (घ) 4
2. वेदाङ्ग कितने हैं ?
(क) 2 (ख) 4
(ग) 6 (घ) 8
3. शिक्षा को वेद पुरुष का क्या माना जाता है ?
(क) घ्राण (ख) जिह्वा
(ग) बाहु (घ) कर्ण
4. शिक्षा के कितने अङ्ग हैं ?
(क) 6 (ख) 5
(ग) 4 (घ) 3
5. कल्प को वेदपुरुष का क्या कहा जाता है ?
(क) हाथ (ख) मुख
(ग) नासिका (घ) बाहु
6. कल्पसूत्रों को कितनी श्रेणियों में विभक्त किया गया है ?
(क) 5 (ख) 4
(ग) 10 (घ) 3
7. शुल्ब का अर्थ होता है ।
(क) कर्म (ख) रस्सी
(ग) व्यवहार (घ) ऊह

8. ऋग्वेद में शब्दशास्त्र को किस रूप में स्वीकार किया गया है।
- (क) गाय (ख) वृषभ
(ग) आगम (घ) लघु
9. व्याकरण वेदरूपी पुरुष का स्वीकार किया गया है ?
- (क) मुख (ख) घ्राण
(ग) जिह्वा (घ) बाहु
10. निरुक्त किस पर लिखी गई टीका है ?
- (क) निघण्टु (ख) नैघण्टुक
(ग) गालव (घ) वैटीकि
11. महापर्व शन्तिपर्व के अनुसार निघण्टु के प्रणेता कौन है ?
- (क) प्रजापति कश्यप (ख) महर्षि कण्व
(ग) लाघव (घ) पाणिनि
12. निरुक्त के रचयिता है।
- (क) यास्क (ख) पतञ्जलि
(ग) विश्वामित्र (घ) कालिदास
13. यास्क ने वैदिक देवताओं को कितने वर्गों में रखा है ?
- (क) 2 (ख) 3
(ग) 4 (घ) 5
14. छन्द को वेदपुरुष का माना गया है।
- (क) पाद (ख) मुख
(ग) हस्त (घ) घ्राण
15. वैदिक छन्दों के मुख्यतया भेद है।
- (क) 1 (ख) 2
(ग) 3 (घ) 4

16. वेदों में प्रयुक्त कुल छन्द है।
 (क) 20 (ख) 21
 (ग) 22 (घ) 23
17. प्रथम सप्तक में कुल कितने छन्द हैं।
 (क) 2 (ख) 4
 (ग) 7 (घ) 8
18. ऋग्वेद का सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द है ?
 (क) त्रिष्टुप (ख) गायत्री
 (ग) जगती (घ) त्रिष्टुप
19. ज्योतिष को वेदपुरुष का स्वीकार किया गया है ?
 (क) नेत्र (ख) हस्त
 (ग) पाद (घ) बाहु
20. नक्षत्रों की संख्या है।
 (क) 27 (ख) 28
 (ग) 29 (घ) 30
21. वैदिक मैथमेटिक के प्रणेता हैं।
 (क) शङ्कराचार्य भारती (ख) श्री निवास
 (ग) संमत भद्र (घ) रामानुज
22. ज्योतिष विषयक 18 टीका ग्रन्थों के लेखक।
 (क) विश्वनाथ (ख) विनयविजयगणि
 (ग) माधवाचार्य (घ) सिन्धु
23. ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के द्रष्टा ऋषि।
 (क) अगस्त्य (ख) वशिष्ठ
 (ग) वस्तुपाल (घ) वामन

24. बृहत्संहिता का विषय।
 (क) ज्योतिषशास्त्र (ख) भविष्यकथन
 (ग) काशी (घ) वनमाली मिश्र
25. वेदाङ्गज्योतिष के प्रणेता आचार्य।
 (क) वेंकट (ख) लगध
 (ग) लक्ष्मी (घ) लक्ष्मणसूरि
26. निरुक्त नामक वेदाङ्ग के प्रसिद्ध आचार्य।
 (क) शूद्रक (ख) यास्क
 (ग) अवन्तिसुन्दरी (घ) कोई भी नहीं
27. भोजप्रबन्ध के लेखक।
 (क) वल्लाल सेन (ख) अकबर
 (ग) राघव (घ) मुकुलभट्ट
28. ज्योतिष-रत्नाकर का मुख्य विषय।
 (क) फलित ज्योतिष (ख) ग्रहगणित
 (ग) परीक्षामुख (घ) कोई भी नहीं
29. गणितसार संग्रह के लेखक।
 (क) महावीराचार्य (ख) महेश ठाकुर
 (ग) माधव (घ) महीधर
30. माध्यन्दिन संहिता का अपरनाम।
 (क) शुक्लयजुर्वेद (ख) छन्दशास्त्र
 (ग) ऋग्वेद (घ) आयुर्वेद
31. 'सरस्वती कण्ठाभरण' के रचनाकार
 (क) भोजराज (ख) भूगु
 (ग) जैन (घ) मय

32. पाणिनि व्याकरण के आधारभूत सूत्र।
 (क) कथा (ख) माहेश्वर
 (ग) श्रुतियाँ (घ) वेद
33. 'गोसूक्त' सम्बंध वेद।
 (क) ऋग्वेद (ख) यजुर्वेद
 (ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद
34. प्रमुख वैदिक स्वर।
 (क) उदात्त अनुदात्त स्वरित (ख) ज्योतिष
 (ग) गणित (घ) छन्द
35. गान्धर्ववेद का आधार
 (क) सामवेद (ख) यजुर्वेद
 (ग) आयुर्वेद (घ) ज्योतिष
36. भास्कराचार्य से सम्बद्ध विषय-विशेष।
 (क) ज्योतिष (ख) सामवेद
 (ग) शृंगार (घ) सूत्र
37. पंचदशी के लेखक
 (क) विद्यारण्य (ख) गोस्वामी
 (ग) हर्षवर्द्धन (घ) शिवराज
38. ऋग्वेद मण्डलों की संख्या है -
 (क) 10 (ख) 12
 (ग) 20 (घ) 24
39. ऋग्वेद के सूक्तों की संख्या है।
 (क) 1025 (ख) 1026
 (ग) 1029 (घ) 1040

40. ऋग्वेद के मन्त्रों की संख्या है।
 (क) 10580 (ख) 10512
 (ग) 18528 (घ) 26600
41. तीनपदों वाला वैदिक छन्द।
 (क) गायत्री (ख) अनष्टुप
 (ग) त्रिष्टुप (घ) मालनी
42. 6 मास में कितने अयन होते हैं।
 (क) 1 (ख) 2
 (ग) 3 (घ) 4
43. 18 निमेष में कितने काष्ठ।
 (क) 1 काष्ठ (ख) 20 काष्ठ
 (ग) 15 (घ) 12
44. 'पारिषद्' उपाधि वाला शिक्षा ग्रन्थ है।
 (क) ऋक्प्रातिशख्य (ख) तैत्तिरीय
 (ग) सामप्रति (घ) अथर्वप्रातिशख्य
45. शिक्षाग्रन्थों में वेदों की किन विधियों के निरुपक हैं।
 (क) निर्वचन (ख) व्याकरण
 (ग) उच्चारण (घ) कालनिर्धारण
46. पुष्पसूत्र किस वेद का प्रातिषाख्य है।
 (क) सामवेद (ख) शुक्ल
 (ग) कृष्ण (घ) अथर्ववेद
47. श्रौतसूत्रों का वर्ण्यविशय है –
 (क) संस्कार (ख) आश्रम-कर्तव्य
 (ग) गूह्यसूत्र (घ) शुल्कसूत्र

48. निरुक्त में शब्दों की कौन-सी विधि स्वीकृत है।
- | | |
|-----------------|-------------|
| (क) सन्धि | (ख) समास |
| (ग) व्युत्पत्ति | (घ) निर्वचन |
49. 'षोडश संस्कार' किसके विषय है।
- | | |
|----------------|----------------|
| (क) धर्मसूत्र | (ख) श्रौतसूत्र |
| (ग) गूह्यसूत्र | (घ) शुल्ब |
50. निरुक्त में कुल कितने अध्याय हैं।
- | | |
|--------|--------|
| (क) 14 | (ख) 12 |
| (ग) 15 | (घ) 17 |
51. बृहती छन्द में अक्षरों की संख्या पायी जाती है -
- | | |
|--------|--------|
| (क) 28 | (ख) 36 |
| (ग) 40 | (घ) 44 |
52. यास्क के अनुसार 'आख्यात' का लक्षण है -
- | | |
|----------------|------------------|
| (क) भावप्रधान | (ख) सत्त्वप्रधान |
| (ग) शब्दप्रधान | (घ) धातुप्रधान |
53. 'नाम' का लक्षण है -
- | | |
|----------------|------------------|
| (क) भावप्रधान | (ख) सत्त्वप्रधान |
| (ग) धातुप्रधान | (घ) शब्दप्रधान |
54. वैदिक मन्त्र में उच्चारण के स्वर के मुख्य भेद हैं -
- | | |
|-------|-------|
| (क) 2 | (ख) 3 |
| (ग) 5 | (घ) 6 |
55. 'वैयाकरण ग्रन्थ संग्रह' के रचियता हैं -
- | | |
|-------------|------------|
| (क) यास्क | (ख) व्याडि |
| (ग) षाकटायन | (घ) गालव |

56. "अर्थावबोधे निरपे तथा पदजातं यत्र उक्तं तत निरुक्तम्" किसकी उक्ति है।
 (क) यास्क (ख) दुर्गाचार्य
 (ग) सायणाचार्य (घ) माधवाचार्य
57. जगती में कितने छन्द है।
 (क) 48 (ख) 42
 (ग) 40 (घ) 44
58. पङ्क्ति छन्दों में अक्षरों की संख्या है।
 (क) 40 (ख) 42
 (ग) 48 (घ) 44
59. 'ऋच' शब्द का अर्थ है।
 (क) प्रार्थना स्तुति (ख) नमस्कार
 (ग) धन्यवाद (घ) कोई नहीं
60. वेद शब्द में धातु है।
 (क) विद् (ख) विन्
 (ग) विम् (घ) विष्
61. 'यजुष' का अर्थ है।
 (क) मन्त्र (ख) वर्ग
 (ग) संहिता (घ) पूजा-अर्चना
62. वेदांग कितने है ?
 (क) 12 (ख) 6
 (ग) 4 (घ) 10
63. ऋग्वेद में कितने श्रौतसूत्र हैं।
 (क) 2 (ख) 4
 (ग) 3 (घ) 6

64. ऋग्वेद में शखाँ है -
- | | | | |
|-----|----|-----|----|
| (क) | 27 | (ख) | 29 |
| (ग) | 40 | (घ) | 5 |
65. यजुर्वेद के कितने भाग है ?
- | | | | |
|-----|---|-----|---|
| (क) | 2 | (ख) | 3 |
| (ग) | 4 | (घ) | 5 |
66. सामवेद में कितनी शखाँ है ?
- | | | | |
|-----|---|-----|---|
| (क) | 4 | (ख) | 5 |
| (ग) | 3 | (घ) | 6 |

5. उत्तरमाला

1	घ	2	ग
3	क	4	क
5	क	6	ख
7	ख	8	ख
9	क	10	क
11	क	12	क
13	ख	14	क
15	ख	16	ख
17	ग	18	घ
19	क	20	क
21	ख	22	क
23	ख	24	क
25	ख	26	ख
27	क	28	क
29	क	30	क
31	क	32	ख
33	क	34	क
35	क	36	क

37	क	38	क
39	क	40	क
41	क	42	क
43	क	44	क
45	ग	46	क
47	ग	48	घ
49	ग	50	क
51	घ	52	क
53	ख	54	ख
55	ख	56	ग
57	क	58	क
59	क	60	क
61	घ	62	ख
63	क	64	क
65	क	66	ग

26.6. सारांश –

उपर्युक्त पाठ के अन्तर्गत जिन प्रश्नों को समावेश किया गया है उनका प्रश्नपत्र में आना आवश्यक नहीं है। क्योंकि उन्हें एक नमून के तौर पर प्रस्तुत किया गया है। विद्यार्थी इन प्रश्नों को पढ़कर एवं उनसे प्रेरित होकर इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों को तैयार कर सकते हैं।

26.7. सहायक ग्रन्थ –

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला
2. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा – चन्द्रशेखर पाण्डेय
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ० ए०वी० कीथ
4. संस्कृत यू०जी०सी० (जूनियर रिसर्च फ़ैलोशिप तथा लैक्चरशिप)



(क) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Question)

1. भाषा-विज्ञान का अर्थ है –
 - क) भाषा का विज्ञान
 - ख) वनस्पति का विज्ञान
 - ग) पर्यावरण का विज्ञान
- 2) 'विज्ञान' का अर्थ है –
 - क) विशिष्ट ज्ञान
 - ख) सामान्य ज्ञान
 - ग) ज्ञान
- 3) भाषा-विज्ञान के अध्ययन के प्रकार हैं –
 - क) पाँच
 - ख) चार
 - ग) सात
- 4) जिसमें किसी एक भाषा का, उसके विभिन्न अङ्गों – ध्वनि, पदरचना आदि के क्रमिक विकास का अध्ययन किया जाता है, वह भाषाविज्ञान है –
 - क) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
 - ख) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
 - ग) तुलनात्मक भाषाविज्ञान

- 5) जिसमें किसी एक भाषा के, किसी एक ही काल के स्वरूप की व्याख्या या वर्णन रहता है, वह भाषाविज्ञान है –
- क) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
 ख) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
 ग) तुलनात्मक भाषाविज्ञान
6. जिसमें किन्हीं दो या दो से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, वह भाषाविज्ञान है –
- क) संरचनात्मक भाषाविज्ञान
 ख) प्रायोगिक भाषाविज्ञान
 ग) तुलनात्मक भाषाविज्ञान
7. जिसमें भाषा में प्रयुक्त सभी तत्त्वों का पारस्परिक विशिष्ट सन्दर्भ में क्रमशः अध्ययन किया जाता है –
- क) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
 ख) प्रायोगिक भाषाविज्ञान
 ग) संरचनात्मक भाषाविज्ञान
8. जिसमें देशी अथवा विदेशी भाषा को सिखलाने की पद्धति, उच्चारण सिखलाने की प्रक्रिया, एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने की शैली आदि व्यवहारिक ज्ञान कराया जाता है, वह है –
- क) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
 ख) संरचनात्मक भाषाविज्ञान
 ग) प्रायोगिक भाषाविज्ञान
9. “भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है, भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है, विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहलाएगा”। यह परिभाषा किसकी है –
- क) प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा ने
 ख) डॉ० श्यामसुन्दर दास ने
 ग) डॉ० बाबू राम सक्सेना ने

10. "भाषाविज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन कराना है।" यह परिभाषा दी है –
- क) डॉ० बाबू राम सक्सेना
ख) डॉ० श्यामसुन्दर दास
ग) प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा
11. 'भाषा' शब्द संस्कृत की कौन सी धातु से बना है –
- क) भाष् धातु
ख) वद् धातु
ग) वच् धातु
12. "जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।" यह परिभाषा है–
- क) आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की
ख) डॉ० बाबूराम सक्सेना की
ग) डॉ० भोलानाथ तिवारी की
13. "विभिन्न अर्थों में संकेतित शब्दसमूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।" यह परिभाषा दी है –
- क) डॉ० भोलानाथ तिवारी ने
ख) डॉ० बाबूराम सक्सेना ने
ग) आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने
14. भाषा के आधारों की संख्या हे –
- क) दो
ख) एक
ग) तीन

15. किसका क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत होता है –
- क) भाषा
 - ख) बोली
 - ग) केवल बोली
16. जिस भाषा में प्रचुर साहित्य की रचना होती है, वह भाषा कही जाती है –
- क) साहित्यिक भाषा
 - ख) कृत्रिम भाषा
 - ग) अन्तर्राष्ट्रीय भाषा
17. 'टकसाली भाषा' किसे कहते हैं –
- क) परिनिष्ठित भाषा
 - ख) उपबोली
 - ग) राजभाषा
18. राजकीय कार्यालयों, राजाज्ञाओं आदि में प्रयुक्त भाषा है –
- क) राष्ट्रभाषा
 - ख) परिनिष्ठित भाषा
 - ग) राजभाषा
19. सर्वसाधारण की भाषा को कहते हैं –
- क) बोली
 - ख) साहित्यिक भाषा
 - ग) दोनों में से एक भी नहीं ।
20. बोली, विभाषा, उपभाषा या प्रान्तीय भाषा को अंग्रेजी में कहते हैं –
- क) (Dialect) डायलेक्ट
 - ख) (Standard) स्टैंडरड
 - ग) (Language) लैंग्वेज

21. उच्चारण-अवयव, ध्वनियों की संख्या और उनका वर्गीकरण, ध्वनि विकार की दिशाएँ और कारण तथा ध्वनि-नियम आदि विषय हैं –
- क) पदविज्ञान
ख) ध्वनिविज्ञान
ग) वाक्यविज्ञान
22. पदरचना, उनके भेद; जैसे – संज्ञा, सर्वनाम आदि पद के अर्थसूचक तथा सम्बन्धसूचक अंश, जैसे – धातु, प्रत्यय आदि का विचार किया जाता है –
- क) वाक्यविज्ञान
ख) पदविज्ञान
ग) अर्थविज्ञान
23. वाक्य रचना किस प्रकार होती है; कितने प्रकार के वाक्य होते हैं आदि विषयों पर ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाता है–
- क) अर्थविज्ञान
ख) पदविज्ञान
ग) वाक्यविज्ञान
24. शब्दों का निश्चित अर्थों में निर्धारण, अर्थपरिवर्तन आदि विषय हैं –
- क) अर्थविज्ञान
ख) पदविज्ञान
ग) ध्वनिविज्ञान
25. शब्दों की व्युत्पत्ति, शब्दों के अर्थों का निर्धारण तथा कोशनिर्धारण की पद्धति आदि विषय हैं –
- क) कोशविज्ञान के
ख) भाषिक भूगोल के
ग) अर्थविज्ञान के

26. किसी प्रभाव से जब किसी भाषा का प्रयोग एक से अधिक राष्ट्रों में होने लगता है, तो उसे कौन-सी भाषा कहते हैं –
- क) अन्तर्राष्ट्रीय भाषा
 - ख) कृत्रिम भाषा
 - ग) राष्ट्र भाषा
27. किसी भी मनुष्य-समूह द्वारा अपने निजी या सीमित व्यवहार के लिए कुछ विशेष नियमों के आधार पर बनाई गयी भाषा को कहते हैं –
- क) साहित्यिक भाषा
 - ख) कृत्रिम भाषा
 - ग) परिनिष्ठित भाषा
28. बोली का क्षेत्र होता है –
- क) सीमित
 - ख) असीमित
 - ग) अधिक विस्तृत
- ख) पाठ वस्तुनिष्ठ प्रश्न (पाठ संख्या 6 से 9 तक)**
1. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं का काल-विभाजन है –
- क) 1500 ई० पू० से 500 ई० पू० तक
 - ख) 500 ई० पू० से 1000 ई० तक
 - ग) 1000 ई० सन् से अब तक
2. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं के दो भेद हैं –
- क) वैदिक और लौकिक
 - ख) पालि और प्राकृत
 - ग) अपभ्रंश और प्राकृत

3. वैदिक भाषा का प्राचीनतम ग्रन्थ –
- क) ऋग्वेद
 - ख) रामायण
 - ग) श्रीमद्भागवद्गीता
4. वैदिक भाषा की कुल ध्वनियों की संख्या है –
- क) 52
 - ख) 48
 - ग) 38
5. वैदिक भाषा में 'अराति' शब्द का अर्थ है –
- क) शत्रु
 - ख) शत्रुता
 - ग) ईश्वर
6. वैदिक भाषा में 'वध' शब्द का अर्थ है –
- क) भयंकर शस्त्र
 - ख) हत्या करना
 - ग) पृथ्वी
7. ऌ, ॡ ध्वनियाँ हैं –
- क) वैदिक भाषा में
 - ख) लौकिक भाषा में
 - ग) दोनों में
8. वैदिक भाषा में 'मृलीक' शब्द का अर्थ है –
- क) गृह
 - ख) कृपा
 - ग) हत्या करना

9. वैदिक भाषा में 'अरि' शब्द का अर्थ है –
- क) ईश्वर
ख) पृथ्वी
ग) शिव का एक नाम
10. इनमें से वैदिक शब्द हैं –
- क) दर्शत, दृशीक
ख) सुन्दर, चोट
ग) बुद्धिमान, दयालु
11. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं में वैदिक संस्कृत के अतिरिक्त दूसरा भेद है –
- क) पालि
ख) प्राकृत
ग) लौकिक संस्कृत
12. 'लौकिक संस्कृत' का दूसरा नाम है –
- क) संस्कृत
ख) वैदिक
ग) छान्दस्
13. लौकिक संस्कृत में कुल ध्वनियाँ की संख्या है –
- क) 52
ख) 50
ग) 48
14. लौकिक संस्कृत में निम्नलिखित ध्वनियाँ नहीं हैं –
- क) ऌ, ऍ उपध्मानीय और जिह्वामूलीय
ख) लृ, ऋ
ग) ओ, ऐ

15. लौकिक संस्कृत में लकारों की संख्या है –
क) 10
ख) 12
ग) 9
16. लौकिक संस्कृत में 'अरि' शब्द का अर्थ है –
क) शत्रु
ख) शत्रुता
ग) मित्रता
17. लौकिक संस्कृत में 'कालिदास' का प्रसिद्ध नाटक है –
क) अभिज्ञानशाकुन्तलम्
ख) उत्तररामचरितम्
ग) स्वप्नवासवदत्तम्
18. लौकिक संस्कृत में 'न' का अर्थ है –
क) नहीं
ख) हाँ
ग) पृथ्वी
19. लौकिक संस्कृत में 'वध' का अर्थ है –
क) भयङ्कर शस्त्र
ख) हत्या करना
ग) कृपा करना
20. लौकिक संस्कृत में 'अराति' शब्द का अर्थ –
क) शत्रु
ख) मित्र
ग) ईश्वर

21. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का काल-विभाजन –
- क) 1500 ई० पू० से 500 ई० पू० तक
 - ख) 500 ई० पू० से 1000 ई० तक
 - ग) 1000 ई० सन् से अब तक
22. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के तीन भाग हैं –
- क) प्रथम प्राकृत, द्वितीय प्राकृत और तृतीय प्राकृत
 - ख) वैदिक, लौकिक, आधुनिक भाषाएँ
 - ग) इनमें से कोई नहीं।
23. 'प्रथम प्राकृत' में निम्नलिखित भाषाएं आती हैं –
- क) पालि और शिलालेखी
 - ख) प्राकृत और पालि
 - ग) अपभ्रंश और प्राकृत
24. 'प्रथम प्राकृत' का काल है –
- क) 500 ई० पूर्व से लेकर ईस्वी सन् के आरम्भ तक
 - ख) ई० सन् के आरम्भ से 500 ई० तक
 - ग) 500 ई० से लेकर 1000 ई० तक
25. 'प्रथम प्राकृत' का दूसरा नाम –
- क) पालि
 - ख) अपभ्रंश
 - ग) वैदिक
26. पालि साहित्य के दो वर्ग हैं –
- क) पिटक और अनुपटिक
 - ख) नाटक और कविता
 - ग) दोनों में से एक भी नहीं।

27. भिक्षु जगदीश कश्यप के अनुसार 'पालि' शब्द का सम्बन्ध –
- क) 'पर्याय' शब्द से
 - ख) 'पाटलि' शब्द से
 - ग) 'प्रालेय' शब्द से
28. 'पालि' में वचनों की संख्या है –
- क) दो
 - ख) तीन
 - ग) एक
29. 'पालि' में कौन-सा लकार इनमें से नहीं है –
- क) 'लिट्' लकार
 - ख) लृट् लकार
 - ग) दोनों ही नहीं
30. शिलालेखी प्राकृत का दूसरा नाम है –
- क) अशोकी प्राकृत
 - ख) क्लासिकल संस्कृत
 - ग) वैदिकी
31. द्वितीय प्राकृत का काल है –
- क) 500 ई० पूर्व से लेकर ईस्वी सन् के आरम्भ तक
 - ख) ई० सन् के आरम्भ से 500 ई० तक
 - ग) 500 ई० से लेकर 1000 ई० तक
32. द्वितीय प्राकृत के अनतर्गत जो भाषा है –
- क) प्राकृत
 - ख) अपभ्रंश
 - ग) पालि

33. द्वितीय प्राकृत के 'धर्म' के अनुसार भेद हैं –
क) चार
ख) आठ
ग) बीस
34. साहित्य के आधार पर इसके भेद हैं –
क) चार
ख) छः
ग) आठ
35. 'भाषाविज्ञान' की दृष्टि से प्राकृत के भेद –
क) पाँच
ख) सात
ग) चार
36. द्वितीय प्राकृत का दूसरा नाम है –
क) प्राकृत
ख) अपभ्रंश
ग) पालि
37. 'प्राकृत' में 'य्' प्रायः क्या बनता है –
क) 'ज्'
ख) 'व्'
ग) 'द्'
38. 'प्राकृत' में 'न्' प्रायः क्या बनता है –
क) 'ण्'
ख) 'ङ्'
ग) 'ज्'

39. 'प्राकृत' में 'म्' का स्थान किसने लिया –
क) 'व्'
ख) 'ब्'
ग) 'न्'
40. 'प्राकृत' में कौन-से वचन का लोप हुआ –
क) एकवचन
ख) द्विवचन
ग) बहुवचन
41. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का काल-विभाजन है –
क) 1500 ई० पूर्व से 500 ई० पू० तक
ख) 500 ई० पू० से 1000 ई० तक
ग) 2000 ई० सन् से अब तक
42. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा इनमें से एक है –
क) बिहारी
ख) पालि
ग) वैदिक
43. 'बिहारी' उपभाषा कौन-से प्रदेश की है –
क) गुजरात
ख) महाराष्ट्र
ग) बिहार
44. 'उड़िया' कौन से प्रान्त की उपभाषा है –
क) उड़ीसा
ख) बिहार
ग) असम

45. 'छतीसगढ़ी' बोली किस भाषा के अन्तर्गत आती है –
क) पूर्वी-हिन्दी
ख) मराठी
ग) असमिया
46. 'कन्नौजी' बोली कौन-सी भाषा के अन्तर्गत आती है –
क) पश्चिमी हिन्दी
ख) पूर्वी हिन्दी
ग) दोनों में से एक भी नहीं
47. 'जयपुरी' बोली कौन-सी भाषा के अन्तर्गत आती है –
क) राजस्थानी
ख) गुजराती
ग) असमिया
48. 'ब्रजभाषा' बोली कौन सी भाषा के अन्तर्गत आती है –
क) पश्चिमी हिन्दी
ख) पञ्जाबी
ग) लहँदा
49. 'खड़ी बोली' कौन-सी भाषा के अन्तर्गत आती है –
क) पश्चिमी हिन्दी
ख) सिन्धी
ग) पञ्जाबी
50. 'गढ़वाली' बोली कौन-सी भाषा के अन्तर्गत आती है –
क) पहाड़ी
ख) लहँदा
ग) सिन्धी

उत्तरमाला (क)
(पाठ सं० 1 से पाँच तक के उत्तर)

- | | |
|---------|---------|
| 1. (क) | 15. (क) |
| 2. (क) | 16. (क) |
| 3. (क) | 17. (क) |
| 4. (ख) | 18. (ग) |
| 5. (क) | 19. (क) |
| 6. (ग) | 20. (क) |
| 7. (ग) | 21. (ख) |
| 8. (ख) | 22. (ख) |
| 9. (क) | 23. (ग) |
| 10. (क) | 24. (क) |
| 11. (क) | 25. (क) |
| 12. (ख) | 26. (क) |
| 13. (ग) | 27. (ख) |
| 14. (क) | 28. (क) |

उत्तरमाला (ख)
(पाठ सं० 6 से 9 तक के उत्तर)

- | | | |
|---------|---------|---------|
| 1. (क) | 18. (क) | 35. (क) |
| 2. (क) | 19. (ख) | 36. (क) |
| 3. (क) | 20. (क) | 37. (क) |
| 4. (क) | 21. (ख) | 38. (क) |
| 5. (ख) | 22. (क) | 39. (क) |
| 6. (क) | 23. (क) | 40. (ख) |
| 7. (क) | 24. (क) | 41. (ग) |
| 8. (ख) | 25. (क) | 42. (क) |
| 9. (क) | 26. (क) | 43. (ग) |
| 10. (क) | 27. (क) | 44. (क) |
| 11. (ग) | 28. (क) | 45. (क) |
| 12. (क) | 29. (क) | 46. (क) |
| 13. (ग) | 30. (क) | 47. (क) |
| 14. (क) | 31. (ख) | 48. (क) |
| 15. (क) | 32. (क) | 49. (क) |
| 16. (क) | 33. (क) | 50. (क) |
| 17. (क) | 34. (क) | |